वेद क्यों पढ़ना चाहिये ?

इसलिये कि—

(१) वेद हिन्दूधर्मको मूल पुस्तक है,

(२) वेद मनुष्यजातिकी सबसे प्राचीन पुस्तक है,

(३) सदाचार, वीरता, परोपकार, देश-सेवा, सत्य, त्याग आदि मनुष्य-जातिकी जितनी उच्चतम गुणावली है, सबका वेदमें बड़ा ही सुन्दर विवरण है।

(४) वेद हमारी जातिके प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर्म-प्रेम, समाज-व्यवस्था, राष्ट्र-धर्म, यज्ञ-रहस्य आदि आदिको दर्पणकी तरह दिखाता है।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर एक मुसलमान कुरानको, गाड और खुदाकी विमल वाणी जानकर, अपने पास रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश समझकर वेदको अपने पास रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य है।

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इंगलैंड आदिके विद्वानोंने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दीमें एकभी ऋग्वेदका सरल अनुवाद नहीं! इसी अभावकी पूर्तिके लिये हमने "वैदिकपुस्तकमाला" द्वारा सरस-सरल हिन्दीमें चारो वेदोंका अनुवाद कराना निश्चित किया है, जिसका तृतीय पुष्प (अष्टक) आपके सामने है। इसका मूल्य केवल लागत भर २) रुपया रखागया है; क्योंकि इसके प्रधान संरक्षक भारत-प्रसिद्ध बनैली-राज्यके अधीश्वर हैं।

॥) देकर "वैदिकपुस्तकमाला"के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको आगे कभी भी डाकखर्च नहीं देना होगा और पुस्तक निकलते ही, सूचना देकर, वी०पी० से, भेज दी जायगी।

मैनेजर, "वैदिकपुस्तकमाला", कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई०आई० आर०)

ऋग्वेद-संहिता

(सरल-हिन्दी-टीका-सहित)

तृतीय अष्टक

टीकाकार

पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

("दर्शनपरिचय", "हिन्दी-विष्णुपुराण", "राजर्षि प्रह्लाद", "महासती मदालसा" आदिके लेखक, 'सेनापति', "विश्वदूत" आदिके भूतपूर्व सम्पादक, "गीताप्रचारक-महामण्डल" (मोरिशस) के जन्मदाता, "दक्षिण अफ्रीकन सनातनधर्म-महामण्डल" (डरबन, नेटाल) के आजीवन सभापति, "गङ्गा"के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक),

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

(प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैली-राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर तथा "गङ्गा" और "वैदिकपुस्तकमाला"के (अन्यतम जन्मदाता एवम् अध्यक्ष)

—* और *—

साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र "मग"

("गङ्गा"के सहकारी सम्पादक)



प्रकाशक

पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

संचालक, "वैदिकपुस्तकमाला", कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)



मूल्य २) } अग्रहायण, १९९० विक्रमीय { प्रथम संस्करण ३०००

श्रीमिथिला प्रेस,
खलीफाबाग, भागलपुरमें मुद्रित

दो शब्द

जो आर्य नहीं हैं—मंगोल, सेमेटिक या हेमेटिक हैं, वे भी ऐतिहासिक दृष्टिसे वेदोंका बड़ा सम्मान करते हैं—उनका भी मत है कि, आर्यजातिका और तत्सम्पर्कीय अन्य जातियोंका मूल इतिहास जाननेके लिये वेदाध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अनेक उत्कट-ज्ञान-पिपासु यूरोपियनोंके विचारसे तो वेदोंका पढ़ना उतना ही आवश्यक है, जितना साक्षर होना। यही कारण है कि, इन लोगोंमेंसे कइयोंने वेदोंके पठन-पाठनमें अपना सारा जीवन ही लगा दिया है, वेदेतिहासके अन्वेषणमें सारी पृथिवीकी खाक छान डाली है और वेदोंके प्रकाशन तथा प्रचारमें लाखों रुपये, पानीकी तरह, बहा डाले हैं। जर्मनी, फ्रांस, हालैंड, चेकोस्लोवेकिया, अमेरिका, रूस और इंगलैंड आदिमें तो कितनी ही वेद-ज्ञान-प्रसारिणी संस्थाएँ तक खुल गयी हैं।

और, इधर, भारतमें तो वेदोंके ऊपर केवल ऐतिहासिक दृष्टि ही नहीं, धार्मिक दृष्टि भी है। हमारे यहाँ करोड़ों हिन्दू ऐसे हैं, जो वेदोंको मनुष्यजातिकी समस्त ज्ञान-राशिका सुदृढ़ आधार मानते हैं। इनके मतसे संसारमें जितने ज्ञान-विज्ञानोंका संचरण है, सबका प्रकाश-स्तम्भ वेद ही हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रमें ईश्वर न माननेवाला नास्तिक हो या न हो, परन्तु वेद न माननेवाला अवश्य नास्तिक है—"नास्तिको वेद-निन्दकः" (मनुस्मृति)। सांख्य और मीमांसा आदि ईश्वरको नहीं मानते; परन्तु वेदका नित्य, शाश्वत, अज और अप्रमेय मानते हैं। लो० तिलक जैसे युगान्तरकारी विद्वान्के मतसे तो वही हिन्दू है, जिसकी वेदोंपर अखण्ड श्रद्धा है, जो वेदोंको सर्वांशतः प्रमाण मानता है—"प्रामाण्य-बुद्धि-र्वेदेषु।" स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे सुधार-वादीके विचारसे "जो वेदमें नहीं है, वह संसारमें ही नहीं है, न हो सकता है।" प्राचीन आचार्योंका तो मत ही था कि, "प्रत्यक्ष और अनुमानसे भी जो बात नहीं जानी जा सकती, उसे वेद बताता है"—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं वदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥"

मनुस्मृतिके टीकाकार कुल्लूकभट्टकी दृष्टिसे वेदोंका कभी विनाश नहीं होता, वे प्रलय-कालमें भी परमात्मामें स्थित रहते हैं—"प्रलयकालेऽपि परमात्मनि वेदराशिः स्थितः।" इस तरह कोई वेदको ईश्वरका निःश्वास मानता है, कोई ईश्वरवत् अमर मानता है, कोई अनन्त-ज्ञान-राशि मानता है कोई विश्वकी उच्चतम संपद् मानता है। यही आर्य-परम्परा है और यह बहुत कुछ सार्थक तथा सयुक्तिक है।

यह सब कुछ है; परन्तु इन दिनों हम ऐसे बुद्धि-हीन, साधना-शून्य, अव्यवस्थित, दरिद्र और अज्ञानी हो गये हैं कि, वेदोंका महत्त्वतक समझना हमारे लिये असम्भवसी बात हो चली है। कोई वेदोंको "गड़रियोंके गीत" समझता है, कोई ब्राह्मणोंकी उदर-पूर्त्तिका साधन। हमारी मनोवृत्ति इतनी दासभावापन्न हो गयी है कि, वेदाध्यन तो दूर रहा, जीवन भरमें वेदोंकी पुस्तकोंका दर्शन भी नहीं करते—भले ही बी०

ए०, एम० ए० या बैरिस्टरी पास करके बाइबिल या कुरानकी तारीफ कर डालते हैं। हम देखते हैं कि, इनसे भी उच्चतर परीक्षाएँ पास करके अँग्रेज और मुसलमान अपने प्राण-प्रिय धर्म-ग्रन्थ बाइबिल और कुरानका घर-घर गौरव-प्रचार करनेके लिये जमीन और आसमान एक कर डालते हैं, अपनी संस्कृति और सभ्यताके प्रसारके लिये जीवनतक गँवा देनेको तैयार हो जाते हैं; और, हम अपने मूल धर्म-ग्रन्थ और आदिम इतिहास वेद, संस्कृति और सभ्यताको लातों ठुकरा देते हैं—हमें भली बातोंकी नकल आती ही नहीं ! क्लबों, मोटरोंमें लाखों रुपये उड़ानेको हमें मिल जाते हैं; परन्तु वैदिक ग्रन्थोंको खरीदनेके लिये एक पैसा भी नहीं मिलता। चरित्र-हीन करनेवाले "तोता-मैनाका किस्सा" और तिलिस्मी तथा जासूसी उपन्यास पढ़नेको हमारे प्राण तड़फड़ा उठते हैं; किन्तु वेदकी बात सूईसी चुभती है! इससे भी बढ़कर किसीका पतन होगा ?

वेदोंका प्रचार न होनेके कारण और भी हैं—वैदिक ग्रन्थोंकी महार्घता और राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें सरल अनुवादका अभाव। ऋग्वेदकी सटीक पुस्तक डेढ़ दो सौ रुपयोंमें मिलती है और सरल हिन्दी-अनुवादका तो एकदम ही अभाव है—अवश्य ही साम्प्रदायिक हिन्दी-अनुवाद है, जिसमें काफी खींचतान की गयी है। ऐसे ही अभावोंकी पूर्त्तिकी दिशामें हमारा वर्त्तमान प्रयत्न है। हमने सिर्फ १६) रु० में, (प्रत्येक अष्टक २) रु० में) सरल हिन्दी-अनुवादके साथ, सम्पूर्ण ऋग्वेद-संहिताका देना निश्चित किया है--यद्यपि इसमें हमें बहुत ही परिश्रम और द्रव्य व्यय करना पड़ रहा है। दो अष्टक निकल चुके हैं; आज तीसरा निकल रहा है। टाइप, छपाई आदिकी दृष्टिसे यह अष्टक उन दोनोंसे बढ़िया है। इस अष्टकमें कई ऐसी सूचियाँ दी गयी हैं, जिनसे इस अष्टककी सभी महत्त्व-पूर्ण बातें विदित हो जाती हैं। कई कारणोंसे इस ग्रन्थ-रत्नका प्रकाशन धीरे-धीरे हो रहा था; परन्तु अब ऐसा प्रबन्ध कर लिया गया है, जिससे अधिकसे अधिक चार महीनोंमें एक अष्टक अवश्य ही निकला करेगा। जिस "वेद-रहस्य"की चर्चा प्रथम और द्वितीय अष्टकोंकी भूमिकाओंमें की गयी है, उसके अनेक प्रकरण लिखे जा चुके हैं। इस रहस्यमें वेदोंके सम्बन्धकी अथसे इतितक सब बातें आ जायँगी।

एक बात और। इस अष्टकका प्रूफ देखने और अनुवाद करनेमें साहित्याचार्य पण्डित महेन्द्र मिश्र "मग"ने हमें बहुत सहायता दी है; इसलिये उनका नाम भी देना हमने उचित समझा।

अग्रहायणी अमावास्या, १९९०
कृष्णगढ़, सुलतानगंज

रामगोविन्द त्रिवेदी,
गौरीनाथ झा

सायणाचार्यके मतानुसार तृतीय अष्टकमें
पौराणिक कथाएँ

तृतीय अष्टकमें तृतीय मण्डलके ७ से ६२ सूक्त, चतुर्थ मण्डलके ५८ सूक्त और पञ्चम मण्डलके ८ सूक्त हैं। प्रत्येक कथाके आगे मण्डल, सूक्त और मन्त्रकी संख्या दी गयी है।

१ अग्नि द्वारा दासोंके नब्बे नगरोंका कम्पित होना ३।१३।६
२ उषाओंसे अग्निकी उत्पत्ति ३।१७।३
३ भरतपुत्रों द्वारा अग्निकी उत्पत्ति ३।२३।२
४ इलापुत्र अग्नि ३।२९।३
५ इन्द्र द्वारा वृत्रका हस्तहीन होना ३।३०।८
६ अङ्गिराओं द्वारा गौओंका अन्वेषण ३।३१।५
७ इन्द्र द्वारा जलकी उत्पत्ति ३।३१।१६
८ जन्म लेते ही इन्द्रने सोम पान किया ३।३२।९
९ विपाशा और शुतुद्री नदियोंका जन्म ३।३३।१
१० विश्वामित्रकी प्रार्थनामें विपाशा और शुतुद्रीका निम्नस्थ [पार होने योग्य] होना ३।३३।९-१०
११ सुपर्ण पक्षी द्वारा सोमका लाया जाना ३।४३।७
१२ पणियों द्वारा गौओंका अपहरण ३।४४।५
१३ अदितिने सूतिकागृहमें इन्द्रको स्तन्य दानके प्रथम सोमरस पिलाया ३।४८।२
१४ त्वष्टाको विनष्ट कर इन्द्रने चमसस्थित सोम चुराया ३।४८।४
१५ पिजवनपुत्र सुदासका यज्ञ ३।५३।९
१६ अनार्य जनपद कीकटमें दुग्धदायिनी गौएँ ३।५३।१४
१७ वसिष्ठके भृत्यों द्वारा विश्वामित्रका अपमान ३।५३।२३
१८ त्रिविक्रमावतार ३।५४।१४
१९ बिना रेतःसंयोगके ओषधियोंका गर्भवती होना ३।५५।५
२० ऋभुओं द्वारा चमस-निर्माण, मृतक गोशरीरमें चर्मयोजना और इन्द्रके अश्व-द्वयका निर्माण ३।६०।२,४।३३।८,४,१०,११
२१ अग्निपत्नी होत्रा और सूर्यपत्नी भारती ३।६२।३
२२ वरुणकृत जलोदररोग ४।१।५
२३ अग्नि अपने सेवकोंको धनवान् करते हैं ४।२।६–१०, ३।१८।४
२४ चक्षुर्हीन दीर्घतमाका शापोद्धार ४।४।१३
२५ देवदूत अग्नि ४।७।८
२६ सहदेवपुत्र सोमक राजाका अश्वदान ४।१५।७–८
२७ सरमाने गौओंको प्रकाशित किया ४।१६।८
२८ कुत्स और इन्द्रका रूपसाम्य ४।१६।१०
२९ इन्द्र द्वारा कुयव और शुष्ण असुरका वध ४।१६।१२
३० संग्राममें इन्द्र द्वारा सूर्यके रथचक्रका छिन्न होना ४।१६।१२,४।३०।४
३१ इन्द्र द्वारा पिप्रु और मृगय असुरोंका वध, विदथिपुत्र ऋजिश्वाका बन्दी होना एवम् पचास हजार कृष्णवर्ण असुरोंका मारा जाना और शम्बरके नगरोंका विनाश ४।१६।१३
३२ इन्द्र द्वारा वामदेवकी यज्ञरक्षा ४।१६।१८
३३ इन्द्र-एतश-युद्ध ४।१७।१४
३४ गर्भस्थ वामदेवका इन्द्र और अदितिसे संवाद ४।१८
५३ इन्द्रका ब्रह्महत्यापापसे उद्धार ४।१८।७

किस मन्त्रकी टिप्पणीमें क्या है ?

तृतीय अष्टककी जानने योग्य बातें

टंक-विकरण

वैदिक-पुस्तक—मालाकी नियमावली

(१) इस मालामें हिन्दी-अनुवाद-सहित चारो वेद और विशेषतः वैदिक ग्रन्थ ही गूँथे जायँगे।

(२) ॥) भेजकर मालाके स्थायी ग्राहक बननेवालों और गङ्गाके ग्राहकोंको किसी भी पुस्तकपर डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा।

(३) स्थायी ग्राहकोंको मालामें प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना पड़ेगा।

(४) मालामें प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर, वी० पी० से, भेजी जायँगी।

मैनेजर, वैदिक-पुस्तक-माला, कृष्णगढ़, सुलतानगंज (ई० आई० आर०)



"गङ्गा" के संरक्षक, सोनबरसा-राज्याधिपति—

राव बहादुर रुद्रप्रताप सिंहजी साहब एम० एल० सी०

समर्पण

जो हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिये अहोरात्र चिन्तित रहते हैं,
जो हिन्दू-जातिके अभ्युदयके लिये सर्वस्व त्याग
करनेको तैयार रहते हैं, जो हिन्दी-साहित्यके
उन्नयनके लिये पानीकी तरह रुपये बहाते
हैं, जो विद्वानों और ब्राह्मणोंके आश्रयस्थल
हैं, जो अध्ययन और मननमें ही अपना
अधिक समय व्यतीत करते हैं, जो
प्रजाकी भलाई करना ही अपना
पवित्र राज-धर्म समझते हैं
और जो बिहारकी सुप्रसिद्ध
पत्रिका 'गङ्गा'के
संरक्षक हैं उन

वीरव्याघ्र-कछवाहा-राजपूत-कुल-भूषण, सोनबरसा-राज्याधिपति

राव बहादुर रुद्रप्रताप सिंह एम० एल० सी०

— के —

कमनीय कर-कमलोंमें

सप्रेम समर्पित

रामगोविन्द त्रिवेदी
गौरीनाथ झा

ॐ तत्सत्

ऋग्वेद-संहिता

(हिन्दी-टीका-सहित)

३ अष्टक। ३ मण्डल। १ अध्याय। १ अनुवाक।

७ सूक्त

अग्नि देवता। तृतीय मण्डलके ऋषि विश्वामित्र और उनके वंशोद्भव हैं। यहाँसे १२ सूक्तकके ऋषि स्वयं विश्वामित्र हैं। त्रिष्टुप् छन्द है।

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्तवाणीः।
परिक्षिता पितरा सञ्चरेते प्रसर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १ ॥
दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरातस्थौ मधुमद्वहन्तीः।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥२॥

---

१ श्वेत पृष्ठवाले और सबके धारक अग्निकी जो किरणें उत्तमताके साथ उठती हैं, वे पितृ-मातृ-रूप द्यावापृथिवीकी चारों दिशाओंमें प्रविष्ट होती हैं, सात नदियोंमें भी प्रविष्ट होती हैं चारों ओर वर्त्तमान पितृ-मातृ-भूत द्यावापृथिवी भली भाँति फैली हैं और अच्छी तरह यज्ञ करनेके लिये अग्निको दीर्घ जीवन प्रदान करती हैं।

२ द्युलोकवासी धेनु ही अभीष्टवर्षी अग्निका अश्व है। मधुर-जल-वाहिनी और प्रकाशवती नदियोंमें अग्नि निवास करते हैं। अग्नि, तुम ऋत या सत्यके गृहमें रहना चाहते और अपनी ज्वाला देते हो। अग्नि, एक गौ या मध्यमिका वाक् तुम्हारी सेवा करती है।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनुव्रतं व्रतपा दीध्यानाः । ८ ।
वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि ॥९॥
पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः समहे दशस्य ॥१०॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

दैव्य-होतृ-द्वय-स्वरूप दो मुख्य अग्नियोंको मैं अलंकृत करता हूँ। सात जन होता सोम द्वारा प्रसन्न होते हैं। स्तोत्रकर्ता, यज्ञ-रक्षक और दीप्तिशाली होता लोग "अग्नि ही सत्य है", ऐसा कहते हैं।

९ हे देदीप्यमान और देवोंको बुलानेवाले अग्नि, तुम महान्, सबको अतिक्रम करके रहनेवाले, नाना वर्णोंवाले और अभीष्टवर्षक हो। तुम्हारे लिये प्रचुर, अतीव विस्तृत और सर्वत्र व्याप्त ज्वालायें वृषके समान आचरण करती हैं। तुम मादयिता और ज्ञानी हो। तुम पूज्य देवों और द्यावापृथिवीको इस कर्ममें बुलाते हो।

१० महान् गमनशील अग्नि, जिस उषाकालमें भली भाँति अन्न द्वारा यज्ञ प्रारम्भ किया जाता है, जो उषाकाल शोभन-वाक्य-युक्त तथा पक्षियों और मनुष्योंके शब्दोंसे सुचिन्हित है, वही सब उषाकाल तुम्हारे लिये धनयुक्त होकर प्रकाशित होते हैं। हे अग्नि, अपनी विशाल महिमाके कारण तुम यजमानके किये पापका नाश करते हो।

११ अग्नि, स्तोताको तुम अनेक कर्मोंकी कारणभूता और धेनुप्रदात्री भूमि अथवा गो-रूप देवता सदा प्रदान करो। हमें वंशविस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। अग्निदेव, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान्रयिविद्रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥
महि त्वाष्ट्रमुर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥
जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इड़ा येषां गण्या माहिना गीः ॥५॥
उतो पितृभ्यां प्रविदानुघोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परिधानमक्तोरनुस्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६ ॥
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्तविप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥

---

३ धनोंमें श्रेष्ठ धनके स्वामी, ज्ञानवान् और अधिपति अग्नि सुखसे संयमनीय बड़वाओंमें चढ़ गये। श्वेत पृष्ठवाले और चारो ओर प्रसृत अग्निने बड़वाओंको, सतत गमन करनेके लिये, छोड़ दिया।

४ बलकारिणी और प्रवहमाना नदियाँ अग्निको धारण करती हैं। वह महान, त्वष्टाके पुत्र, जरारहित और सारे संसारको धारण करनेके अभिलाषी हैं। जैसे पुरुष एक स्त्रीके पास जाता है, वैसे ही अग्नि जलके पास प्रदीप्त होकर द्यावापृथिवीमें वेश करते हैं।

५ लोग अभीष्टवर्षी और अहिंसक अग्निके आश्रय-जन्य सुखको जानते और महान् अग्निकी आज्ञामें रत रहते हैं। जिन मनुष्योंके श्रेष्ठ-स्तुति-रूप वाक्य गणनीय होते हैं, वे द्युलोकके दीप्तिकर्त्ता और शोभन दीप्ति-युक्त होकर देदीप्यमान होते हैं।

६ महानसे भी महान् पितृ-मातृ-स्थानीय द्यावापृथिवीके ज्ञानके पश्चात् ऊँचे स्वरमें की गयी स्तुतिसे उत्पन्न सुख अग्निके निकट आता है। जलसेचनकर्ता अग्नि रात्रिकी चारो ओर व्याप्त स्वकीय तेज स्तोताके पास भेजते हैं।

७ पाँच अध्वर्युओंके साथ सात होता गमनशील अग्निके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं। सोम पानके लिये पूर्वकी ओर आनेवाले अजर और सोम-रसवर्षी स्तोता लोग प्रसन्न होते हैं; क्योंकि देवता-लोग देव-तुल्य स्तोताओंके यज्ञमें आते हैं।

८ सूक्त

इस सूक्तके यूप देवता हैं। ११ वीं ऋचाके छिन्न यूपके मूलभूत स्थाणु देवता हैं। ८ म के विश्वदेव या यूप देवता हैं। छठी ऋचासे लेकर सारी ऋचाओंके विविध यूप देवता हैं। अवशिष्ट ऋचाओंके एक यूप देवता हैं। अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१॥
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥
उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३॥
युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥४॥
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥५॥

---

१ वनस्पतिदेव, देवोंके अभिलाषी अध्वर्यु लोग देव-सम्बन्धी मधु द्वारा तुम्हें सिक्त करते हैं। तुम चाहे उन्नत भावसे रहो अथवा मातृ-भूत पृथिवीकी गोदमें ही शयन करो, हमें धन दो।

२ यूप, तुम समिद्ध अथवा आहवनीय नामक अग्निकी पूर्व दिशामें रहकर अजर, सुन्दर और अपत्ययुक्त अन्न देते हुए तथा हमारे पापको दूर करते हुए महती सम्पत्तिके लिये उन्नत होओ।

३ वनस्पति, तुम पृथिवीके उत्तम यज्ञ-प्रदेशमें उन्नत होओ। तुम सुन्दर परिमाणसे युक्त हो। यज्ञ-निर्वाहकको अन्न दान करो।

४ दृढाङ्ग, सुन्दर जिह्वावाले तथा जिह्वासे परिवेष्टित यूप आता है। वह यूप ही, समस्त वनस्पतियोंकी अपेक्षा, उत्तम रूपसे उत्पन्न है। ज्ञानी मेधावी लोग हृदयसे देवोंकी इच्छा करके, सुन्दर ध्यानके साथ, उसे उन्नत करते हैं।

५ पृथिवीपर वृक्षरूपसे उत्पन्न यूप मनुष्योंके साथ यज्ञमें सुशोभित होकर दिनोंको सुदिन करता है। कर्मनिष्ठ और विद्वान् अध्वर्यु लोग यथाबुद्धि उसी यूपको प्रक्षालन द्वारा शुद्ध करते हैं। देवोंके याजक और मेधावी होता वाक्य या मन्त्रका उच्चारण करते हैं।

यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥६॥
ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥७॥
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथाः द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥८॥
हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपियन्ति पाथः ॥९॥
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सन्ददृशे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्यन्नम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०॥

---

६ यूपो, देवाभिलाषी और कर्मोंके नायक अध्वर्यु आदिने तुम्हें गड्ढेमें फेंक दिया है। वनस्पति, कुठारने तुम्हें काटा है। तुम दीप्तिमान् और काष्ठ-खण्डवाले हो। हमें अपत्यके साथ उत्तम धन दो।

७ जो फरसेसे भूमिपर काटे जाते हैं, जो ऋत्विकों द्वारा गड्ढेमें फेंके जाते हैं और जो यज्ञके साधक हैं, वे ही सब यूप देवोंके पास हमारा हव्य ले जाँय।

८ सुन्दर नायक आदित्य, रुद्र, वसु, द्यावापृथिवी और विस्तीर्ण अन्तरीक्ष, ये सब मिलकर यज्ञकी रक्षा करें और यज्ञकी ध्वजा यूपको उन्नत करें।

९ दीप्त वस्त्रसे आच्छादित, हंसकी तरह श्रेणीपूर्वक गमन करनेवाले और खण्ड-युक्त यूप हमारे पास आवें। मेधावी अध्वर्यु आदिके द्वारा यज्ञकी पूर्व दिशामें उन्नीयमान तथा दीप्तिशाली सारे यूप देवोंका मार्ग प्राप्त करते हैं।

१० स्वरुवाले और मुक्तकण्टक यूप पृथिवीके शृङ्गी पशुओंकी सींगकी तरह भली भाँति दिखाई देते हैं। यज्ञमें ऋत्विकोंकी स्तुतियाँ सुननेवाले यूप युद्धमें हमारी रक्षा करें।

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और बृहती छन्द ।

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदीतिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥१॥
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥२॥
अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥३॥
ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥४॥

---

११ हे छिन्नमूल स्थाणु, इस तीखी धारवाले फरसेने तुम्हें महान् सौभाग्य प्रदान किया है। तुम हजार शाखाओंवाले होकर भली भाँति उत्पन्न होओ। हम भी हजार शाखाओंवाले होकर भली भाँति प्रादुर्भूत हों।

---

१ अग्नि, तुम जलके नप्ता, सुन्दर धनवाले, दीप्तिमान, निरुपद्रवी और संसारके प्राप्तव्य हो हम तुम्हारे मित्रभूत मनुष्य हैं। अपनी रक्षाके लिये तुम्हें हम वरण करते हैं।

२ अग्नि, तुम सारे वनोंकी रक्षा करते हो। तुम मातृ-रूप जलमें पड़कर शान्त होओ। तुम्हारा शान्त भाव सदा नहीं सहा जाता, इसलिये तुम दूरमें रहकर भी हमारे काठके बीच उत्पन्न होते हो।

३ अग्नि, स्तोताकी अभिलाषाको तुम विशेषरूपसे वहन करनेकी इच्छा करते हो। तुम सन्तुष्ट रहते हो। तुम जिन १६ ऋत्विकोंके साथ मित्रताके साथ रहते हो, उनमेंसे कुछ विशेष-रूपसे होम करनेके लिये आते हैं, अवशिष्ट मनुष्य चारो ओर बैठते हैं।

४ गुहा-स्थित सिंहकी तरह जलमें छिपे हुए तथा शत्रुओं और बहु सेनाओंको हरानेवाले अग्निको द्रोह-रहित और चिरन्तन विश्वदेवोंने प्राप्त किया था।

ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।
एनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥५॥
तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥६॥
तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपि शर्वरे ॥७॥
आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥८॥
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥९॥

---

५ जैसे स्वच्छन्दगामी पुत्रको पिता खींच ले आता है, वैसे ही मातरिश्वा स्वेच्छासे छिपे हुए और मन्थन द्वारा प्राप्त अग्निको देवोंके लिये लाये थे।

६ मनुष्योंके हितैषी और सदा तरुण अग्निदेव, अपनी महिमासे तुम सारे यज्ञका विशेष रूपसे पालन करते हो। इसलिये हे हव्यवाहन, मनुष्योंने तुम्हें देवोंके लिये ग्रहण किया है।

७ अग्नि, चूँकि सायंकालमें तुम्हारे समिद्ध होनेपर तुम्हारे पास सारे पशु बैठते हैं ; इसलिये तुम्हारा यह सुन्दर कर्म बालककी तरह अज्ञको भी फलप्रदान करके सन्तुष्ट करता है।

८ पवित्र दीप्तिवाले, काष्ठादिके बीच सोये हुए और सुकर्मा अग्निका होम करो। बहुव्याप्त, दूतस्वरूप, शीघ्रगामी, पुरातन, स्तुतियोग्य और दीप्तिमान् अग्निकी शीघ्र पूजा करो।

९ तीन हजार तीन सौ उनतालीस देवोंने अग्निकी पूजा की है, घृत द्वारा उन्हें सिक्त किया है और उनके लिये कुश विस्तृत किया है। पश्चात् उन्होंने अग्निको होता मानकर कुशोंके ऊपर बैठाया है। *

---

* सायणाचार्यके मतसे देवता केवल ३३ ही हैं; परन्तु देवोंकी विशाल महिमा बतानेके विचारसे इस मन्त्रमें ३३३९ देवोंका उल्लेख किया गया है।

१० सूक्त

अग्नि देवता । उष्णिक् छन्द ।

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनां । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥१॥

त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥२॥

सघायस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे । सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥३॥

स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरागमत् । अञ्जानः सप्तहोतृभिर्हविष्मते ॥४॥

प्रहोत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वधसे ॥५॥

अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥६॥

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज । होता मन्द्रो विराजस्यति स्रिधः ॥७॥

स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् । भवास्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८॥

---

१ अग्निदेव, तुम प्रजाओंके अधिपति और दीप्तिमान् हो। तुम्हें बुद्धिमान् मनुष्य उद्दीप्त करते हैं।

२ अग्नि, तुम होता और ऋत्विक् हो। यज्ञमें अध्वर्यु तुम्हारी स्तुति करते हैं। यज्ञके रक्षक होकर अपने गृह (यज्ञशाला)में दीप्त होओ।

३ अग्निदेव, तुम जातवेदा (प्राप्त-बुद्धि) हो। तुम्हें जो यजमान समिन्धनकारी हव्य दान करते हैं, वह सुवीर्य पुत्र प्राप्त करते और पशु, पुत्र आदिके द्वारा समिद्ध होते हैं।

४ यज्ञके प्रज्ञापक वही अग्नि सात होताओं द्वारा सिक्त होकर, यजमानके लिये, देवोंके साथ आवें।

५ ऋत्विको, मेधावी व्यक्तियोंका तेज धारण करनेवाले, संसारके विधाता और देवोंको बुलानेवाले अग्निको लक्ष्य करके तुम लोग महान् और प्राचीन वाक्यका सम्पादन करो।

६ महान् अन्न और धनके लिये अग्नि दर्शनीय हैं। जिस वाक्यके द्वारा अग्नि प्रशंसनीय होते हैं, हमारा वही स्तुति-रूप वाक्य उन्हें वर्द्धित करे।

७ अग्नि, तुम यज्ञ-कर्त्ताओंमें श्रेष्ठ हो। यज्ञमें यजमानोंके लिये देवोंका याग करो। अग्नि, तुम होता और यजमानोंके हर्षदाता हो। तुम शत्रुओंको हराकर शोभा पा रहे हो।

८ पावक, तुम हमें कान्तिवाला और शोभन शक्तिवाला धन दो। स्तोताओंके कल्याणके लिये उनके पास आओ।

त्वं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥६॥

११ सूक्त

अग्नि देवता । गायत्री छन्द ।

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥१॥
स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥२॥
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥३॥
अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥४॥
अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णीरथः सदा नवः ॥५॥
साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥६॥
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥७॥

६ अग्नि, हव्यवाहक, अमर और मथन-रूप बल द्वारा तुम वर्द्धमान हो। प्रबुद्ध मेधावी स्तोता लोग तुम्हें भली भाँति उद्दीप्त करते हैं।

---

१ अग्निदेव होता पुरोहित और यज्ञके विशेष द्रष्टा हैं। वह यज्ञको क्रमवद्ध जानते हैं।

२ हव्यवाहक, अमर, हव्याभिलाषी, देवोंके दूत और अन्नप्रिय अग्नि प्रज्ञावान् हो रहे हैं।

३ यज्ञके केतुस्वरूप और प्राचीन अग्नि, प्रज्ञाके बलसे, सब कुछ जानते हैं। इन अग्निका तेज अन्धकारका विनाश करता है।

४ बलके पुत्र, सनातन कहकर प्रसिद्ध तथा जातवेदा अग्निको देवोंने हव्यवाहक किया है।

५ मनुष्योंके नेता, शीघ्रकारी, रथके समान और सदा नवीन अग्निकी कोई हिंसा नहीं कर सकता।

६ सारी शत्रु-सेनाके विजेता, शत्रुओं द्वारा अवध्य और देवोंके पोषणकर्त्ता अग्नि, यथेष्ट मात्रामें, विविध अन्नोंसे युक्त हैं।

७ हव्यदाता मनुष्य हव्यवाहक अग्नि द्वारा सारे अन्न प्राप्त करता है। ऐसा मनुष्य पवित्र करनेवाले और दीप्ति-विशिष्ट अग्निके पाससे गृह प्राप्त करता है।

परि विश्वानि सुधिताऽग्नेरश्याम मन्मभिः। विप्रासो जातवेदसः ॥८॥

अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे। त्वे देवास एरिरे ॥९॥

१२ सूक्त

इन्द्र और अग्नि देवता। गायत्री छन्द।

इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता ॥१॥

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः। अया पातमिमं सुतम् ॥२॥

इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे। ता सोमस्येह तृपताम् ॥३॥

तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता। इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४॥

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः। इन्द्राग्नी इष आवृणे ॥५॥

---

८ हम मेधावी और ज्ञानवेत्ता अग्निके स्तोत्रों द्वारा समस्त अभिलषित धन प्राप्त कर सकें।

९ अग्नि, हम सारे अभिलषणीय धन प्राप्त कर सकें। देवता लोग तुम्हारे ही भीतर प्रविष्ट हुए हैं।

---

१ हे इन्द्र और अग्नि, स्तुति द्वारा आहूत होकर तुम लोग स्वर्गसे तैयार किया हुआ और वरणीय इस सोमको लक्ष्य कर आओ। हमारी भक्तिके कारण आकर इस सोमका पान करो।

२ इन्द्र और अग्नि, स्तोताका सहायक, यज्ञका साधक और इन्द्रियोंका हर्ष-वर्द्धक सोम जाता है। इस अभिषुत सोमका पान करो।

३ यज्ञके साधक सोम द्वारा प्रेरित होकर स्तोताओंके सुखदाता इन्द्र और अग्निकी मैं सेवा करता हूँ। वे इस यज्ञमें सोमपान करके तृप्त हों

४ मैं शत्रु-नाशक, वृत्रहन्ता, विजयी, अपराजित और प्रचुर परिमाणमें अन्न देनेवाले इन्द्र और अग्निको बुलाता हूँ।

५ हे इन्द्र और अग्नि, मन्त्र-शाली होकर लोग तुम्हारी पूजा करते हैं। स्तोत्र-ज्ञाता स्तोता लोग तुम्हारी अर्चना करते हैं। अन्न-प्राप्तिके लिये मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ।

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्। साकमेकेन कर्मणा ॥६॥

इन्द्राग्नी अपसस्पर्युपप्रयन्ति धीतयः। ऋतस्य पथ्या अनु ॥७॥

इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च। युवोरप्तूर्यं हितम् ॥८॥

इन्द्राग्नि रोचना दिवः परिवाजेषु भूषथः। तद्वां चेति प्रवीर्यम् ॥९॥

---

२ अनुवाक। १३ सूक्त

अग्नि देवता। १३—१४ सूक्तके विश्वामित्रके पुत्र ऋषभ ऋषि हैं। अनुष्टुप् छन्द।

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै।

गमद्देवेभिरासनो यजिष्ठो बर्हिरासदत् ॥१॥

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः।

हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोवसे ॥२॥

---

६ इन्द्र और अग्नि, तुम लोगोंने एक ही बारकी चेष्टासे दासोंके नब्बे नगरोंको, एक साथ, कम्पित किया था।

७ इन्द्र और अग्नि, स्तोता लोग यज्ञके मार्गका लक्ष्य करके हमारे कर्मके चारों ओर आते हैं।

८ इन्द्र और अग्नि, तुम्हारा बल और अन्न तुम दोनोंके बीचमें, एक साथ ही, है। वृष्टि-प्रेरण—कार्य तुम्हीं दोनोंके बीच निहित है।

९ इन्द्र और अग्नि, तुम स्वर्गके प्रकाशक हो। तुम युद्धमें सर्वत्र विभूषित होओ। तुम्हारी सामर्थ्य उस युद्ध-विजयको भली भाँति विदित करती है।

---

१ अध्वर्युओ, अग्निदेवको लक्ष्य करके यथेष्ट स्तुति करो। देवोंके साथ वह हमारे पास आवें। याजक-श्रेष्ठ अग्नि कुशपर बैठें।

२ जिनके वशमें द्यावा-पृथिवी हैं, जिनके बलकी सेवा देवता लोग करते हैं, उनका संकल्प व्यर्थ नहीं होता।

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३॥
स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४॥
दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५॥
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६॥
नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत् पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥७॥



---

३ वही मेधावी अग्नि इन यजमानोंके प्रवर्त्तक हैं। वह यज्ञके प्रवर्त्तक हैं। वह सबके प्रवर्त्तक हैं। अग्नि कर्मफल और धनके दाता हैं। तुम उन अग्निकी सेवा करो।

४ वही अग्नि हमारे भोगके लिये अतीव सुखकर गृह प्रदान करें। समृद्धि-युक्त पृथिवी आकाश और स्वर्ग लोकका धन अग्निके पाससे हमारे पास आवे।

५ स्तोत लोग दीप्तिमान्, प्रतिक्षण नवीन, देवोंके आह्वानकारी और प्रजाओंके पालक अग्निको श्रेष्ठ स्तुति द्वारा, उद्दीपित करते हैं।

६ अग्निदेव, स्तोत्र-समयमें हमारी रक्षा करो। तुम देवोंके प्रधान आह्वानकर्त्ता हो। मन्त्रोच्चारण-कालमें हमारी रक्षा करो। तुम हजार धनोंके दाता हो। मरुत् लोग तुम्हें वर्द्धित करते हैं। तुम हमारे सुखकी वृद्धि करो।

७ अग्नि, तुम हमें पुत्र-युक्त, पुष्टिकारक, दीप्तिमान्, सामर्थ्यशाली, अत्यधिक और अक्षय सहस्रसंख्यक धन दो।

१४ सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१॥
अयामि ते नम उक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आवक्षि विदुषो निषत्सि मध्य आबर्हिरूतये यजत्र ॥२॥
द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत् सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा बन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥३॥
मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभिक्षितीः प्रथयन्त सूर्यो नॄन् ॥४॥

---

१ देवोंको बुलानेवाले, स्तोताओंके आनन्दवर्द्धक, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञकारी, अतीव मेधावी और संसारके विधाता अग्नि हमारे यज्ञमें अवस्थान करते हैं। उनका रथ द्युतिमान् है। उनकी शिखा उनका केश है। वह बलके पुत्र हैं। वह पृथिवीपर प्रभाको प्रकट करते हैं।

२ यज्ञवान् अग्नि, तुम्हें लक्ष्य करके नमस्कार करता हूं। तुम बलवान् और कर्मज्ञापक हो। तुम्हें लक्ष्य करके नमस्कार किया जाता है, उसे ग्रहण करो। हे यजनीय, तुम विद्वान् हो, विद्वानोंको ले आओ। हमें आश्रय देनेके लिये कुशपर बैठो।

३ अन्न-सम्पादक उषा और रात्रि तुम्हें लक्ष्य करके आते हैं। अग्नि, वायु-मार्गसे तुम उनके सम्मुख आओ, क्योंकि ऋत्विक् लोग हव्य द्वारा पुरातन अग्निको भली भाँति सिक्त करते हैं। युगद्वयकी तरह परस्पर संसक्त उषा और रात्रि हमारे घरमें बार-बार आकर रहें।

४ बलवान् अग्नि, मित्र, वरुण और सारे देवता तुम्हें लक्ष्य करके स्तोत्र करते हैं, क्योंकि हे बलके पुत्र अग्नि, तुम्हीं सूर्य या स्वामी हो। मनुष्योंकी पथ-प्रदर्शक किरणोंको फैलाकर प्रभामें समास्थित हो।

वयं ते अस्य ररिमाहि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षिदेवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥५॥
त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यतयो विवाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥६॥
तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥

१५ सूक्त

अग्नि देवता । १५ और १६ सूक्तोंके कतगोत्रोत्पन्न उत्कील ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

विपाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१॥

---

५ अग्नि, आज हाथ उठाकर हम तुम्हें शोभन हव्य प्रदान करेंगे। तुम मेधावी हो। नमस्कारसे प्रसन्न होकर तुम अपने मनमें यज्ञाभिलाष करते हुए प्रभूत स्तोत्रों द्वारा देवोंकी पूजा करो।

६ बलके पुत्र अग्नि, तुम्हारे पाससे होकर यजमानके पास प्रभूत रक्षण आता है, अन्न भी आता है। प्रिय वचन द्वारा तुम हमें अचल और सहस्र-सङ्ख्यक धन दो।

७ हे समर्थ, सर्वज्ञ और दीप्तिमान् अग्निदेव, हम मनुष्य हैं। हम तुम्हें उद्देश्य करके यज्ञमें यह जो हव्य देते हैं, हे अमर, वह सब हव्य तुम आस्वादित करो और सारे यजमानोंकी रक्षा करनेके लिये जागरित होओ।

---

१ अग्निदेव, विस्तीर्ण तेजके द्वारा तुम अतीव प्रकाशमान हो। तुम शत्रुओं और रोग-रहित राक्षसोंका विनाश करो। अग्निदेव उत्कृष्ट, सुखदाता, महान् और उत्तम आह्वानवाले हैं। मैं उनके ही रक्षणमें रहूँगा।

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं म अग्ने तन्वा सुजात ॥२॥
त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो विभाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३॥
अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वा सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४॥
अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छादीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभिवक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥ ५ ॥
प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परिष्ठात् ॥६॥

---

२ अग्निदेव, तुम उषाके प्रकट होने और सूर्यके उदित होनेपर हमारी रक्षाके लिये जागरित होओ। अग्निदेव, तुम स्वयम्भू हो। जैसे पिता पुत्रको ग्रहण करता है, वैसे ही तुम हमारे स्तोमको ग्रहण करो।

३ अभीष्ट-वर्षक अग्नि, तुम मनुष्योंके दर्शक हो। तुम अँधेरी रातमें अधिक दीप्तिमान् होते हो। तुम बहुत ज्वाला विस्तृत करते हो। हे निवास पिता, हमें कर्मफल प्रदान करो। हमारे पापका निवारण करो। युवक अग्नि तुम हमें धनाभिलाषी करो।

४ अग्नि, शत्रु लोग तुम्हें परास्त नहीं कर सकते। तुम अभीष्टवर्षक हो। तुम सारी शत्रु-पुरी और धन जीत करके प्रदीप्त होओ। हे सुप्रणीत और जातवेदा अग्नि, तुम महान्, आश्रयदाता और प्रथम यज्ञके निर्वाहक होओ।

५ हे अभज्जीर्णकर्त्ता अग्निदेव, तुम सुमेधा और दीप्तिमान् हो। देवोंके लिये तुम सारे कर्मोंको छिद्र-रहित करो। अग्निदेव, तुम यहीं ठहरकर रथकी तरह देवोंको लक्ष्य करके हमारा हव्य वहन करो। तुम द्यावापृथिवीको उत्तम रूपसे युक्त करो।

६ अभीष्टवर्षक अग्नि, तुम हमें वर्द्धित करो। हमें अन्न प्रदान करो। हे देव, सुन्दर दीप्ति द्वारा तुम सुशोभित होकर देवोंके साथ हमारी द्यावापृथिवीको दोहनके योग्य बनाओ। मनुष्योंकी दुर्बुद्धि हमारे पास न आवे।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७॥

१६ सूक्त

अग्नि देवता। बृहती छन्द।

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१॥
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥२॥
स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोनमीवस्य शुष्मिणः ॥३॥
चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।
आ देवेषु यतत आसुवीर्य आशंस उत नृणाम् ॥४॥

---

७ अग्निदेव, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंकी कारणीभूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमें वंश-वर्द्धक और सन्तति-जनक एक पुत्र प्राप्त हो। अग्निदेव, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

---

१ अग्निदेव उत्तम सामर्थ्यवाले, महासौभाग्यके स्वामी, गौ आदिसे युक्त, अपत्यवाले धनके अधिपति और वृत्रहन्ताओंके ईश्वर हैं।

२ नेता मरुतो, सौभाग्यवर्द्धक अग्निमें मिलो। अग्निमें सुखवर्द्धक धन है। मरुद्गण सेनावाले संग्राममें शत्रुओंको परास्त करते हैं। वह सदा ही शत्रुओंकी हिंसा करते हैं।

३ बहुधनशाली और अभीष्टवर्षक अग्नि, हमें तुम प्रभूत, प्रजायुक्त एवं आरोग्य, बल और सामर्थ्य वाला धन देकर तीक्ष्ण करो।

४ जो अग्नि संसारके कर्त्ता हैं, वह सारे संसारमें अनुप्रविष्ट होते हैं। भारको सहन करके अग्नि देवोंके पास हव्य ले जाते हैं। अग्नि स्तोताओंके सामने आते हैं, यज्ञनेताओंके स्तोत्रमें आते हैं और मनुष्योंके युद्धमें आते हैं।

मा नो अग्ने मतये मावीरतायै रीरधः ।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेप द्वेषांस्याकृधिः ॥५॥
शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥६॥

१७ सूक्त

अग्नि देवता । १७—१८ सूक्तोंके विश्वामित्रके अपत्य कत ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१॥
यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्रतिरेममद्य ॥२॥
त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥३॥

---

५ बलके पुत्र अग्नि, तुम हमें शत्रुग्रस्त, वीर-शून्य, पशुहीन अथवा निन्दनीय नहीं करना। हमारे प्रति द्वेष मत करो।

६ सुभग अग्नि, तुम यज्ञमें प्रभूत और अपत्यशाली अन्नके अधीश्वर हो । हे महाधन, तुम हमें प्रभूत, सुखकर और यशोवर्द्धक धन दो ।

---

१ अग्नि धर्मधारक, ज्वालावाले केशसे संयुक्त, सबके स्वीकरणीय दीप्ति-रूप, पवित्र और सुक्रतु हैं। वह यज्ञके आरम्भमें क्रमशः प्रज्वलित होकर देवोंके यज्ञके लिये घृतादि द्वारा सिक्त होते हैं।

२ अग्निदेव, तुमने जैसे पृथिवीको हव्य दिया था; हे जातवेदा, तुम सर्वज्ञ हो; द्युलोकको जैसे हव्य प्रदान किया था, वैसे ही हमारे हव्यके द्वारा देवोंका यज्ञ करो । मनुके यज्ञकी तरह हमारे इस यज्ञको पूर्ण करो ।

३ हे जातवेदा, तुम्हारा अन्न आज्य, औषधि और सोमके रूपसे तीन प्रकारका है । हे अग्नि, एकाह, अहीन और समगत नामक तीन उषा देवताएँ तुम्हारी माताएँ हैं । तुम उनके साथ देवोंको हव्य प्रदान करो । तुम विद्वान् हो । तुम यजमानके सुख और कल्याणके कारण बनो ।

अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥४॥
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।
तस्यानु धर्म प्रयजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५॥

१८ सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥१॥
तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२॥
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

---

४ जातवेदा, तुम दीप्तिशाली, सुदर्श और स्तुति-योग्य हो। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। देवोंने तुम्हें आसक्ति-शून्य और हव्य-वाहक दूत और अमृतकी नाभि बनाया है।

५ अग्निदेव, तुमसे प्रथम और विशेष-रूपसे होता उत्तर और मध्यम नामक दो स्थानोंपर, स्वधाके साथ, बैठकर सुखी हुए थे, हे सर्वज्ञ अग्नि, उनके धर्मोंका लक्ष्य करके विशेष रूपसे यज्ञ करो। अनन्तर हे अग्नि, देवोंकी प्रसन्नताके लिये हमारे इस यज्ञको धारण करो।

१ अग्निदेव, जैसे मित्र मित्रके प्रति और माता-पिता पुत्रके प्रति हितैषी होते हैं, वैसे ही हमारे सामने आनेमें प्रसन्न होकर हितैषी बनो। मनुष्योंके द्रोही मनुष्य हैं; इसलिये तुम विरुद्धाचारी शत्रुओंको भस्मसात् करो।

२ अग्निदेव, अभिभवकर्ता शत्रुओंको भली भाँति बाधा दो। जो सब शत्रु हव्य दान नहीं करते, उनकी अभिलाषा व्यर्थ कर दो। निवास-दाता और सर्वज्ञ अग्नि, तुम चञ्चल-चित्त मनुष्योंको सन्तप्त करो। इसीलिये तुम्हारी किरणें अजर और बाधा-शून्य हों।

३ अग्नि, मैं धनाभिलाषी होकर तुम्हारे वेग और बलके लिये समिधा और घृतके साथ हव्य प्रदान करता हूँ। स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करके मैं जबतक रहूँ, तबतक मुझे धन दो। इस स्तुतिको अपरिमित धनदानके लिये दीप्त करो।

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं भूरिकृत्वः ॥४॥
कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥५॥

१६ सूक्त

अग्नि देवता । १६—२२ सूक्तोंके ऋषि कुशिकके अपत्य गाथी हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्निं होतारं प्रवृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥१॥
प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥२॥
स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥३॥

४ बलके पुत्र अग्नि, तुम अपनी दीप्तिसे दीप्तिमान् होओ। स्तुत होकर तुम प्रशंसक विश्वामित्रके वंशधरोंको धन-युक्त करो, प्रभूत अन्नदान करो तथा आरोग्य और अभय प्रदान करो। कर्मकारक अग्नि, हम लोग बार-बार तुम्हारे शरीरका परिमार्जन करेंगे।

५ दाता अग्नि, धनोंमें श्रेष्ठ धन प्रदान करो। जिस समय तुम समिद्ध होओ, उसी समय वैसा धन दो। भाग्यवान् स्तोताके गृहकी ओर अपनी कल्याणी दानी भुजाओंको, धन देनेके लिये, पसारो।

---

१ देवोंके स्तोता, मेधावी सर्वज्ञ और अमूढ़ अग्निको हम इस यज्ञमें होतृ-रूपसे स्वीकार करते हैं। वह अग्नि सर्वापेक्षा यज्ञ-परायण होकर हमारे लिये देवोंका यज्ञ करें। धन और अन्नके लिये वह हमारे हव्यका ग्रहण करें।

२ अग्नि, मैं हव्य-युक्त, तेजस्वी, हव्यदाता और घृतसमन्वित जुहूको तुम्हारे सामने प्रदान करता हूं। देवोंके बहुमान कर्ता अग्नि हमारे दातव्य धनके साथ प्रदक्षिणा करके यज्ञमें सम्मिलित हों।

३ अग्नि, जिसकी तुम रक्षा करते हो, उसका मन अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है। उसे उत्तम अपत्य-वाला धन प्रदान करो। फलदानेच्छुक अग्नि, तुम अतीव धनदाता हो। हम तुम्हारी महिमासे रक्षित होंगे तथा तुम्हारी स्तुति करते हुए धनाधिपति होंगे।

भूरीणि हि त्वे दधिरेअनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आवह देवतातिं यविष्ठ शर्द्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥४॥
यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेवितेहवोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५॥

२० सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृणवन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१॥
अग्न त्रींते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२॥
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्ठबन्धो ॥३॥

---

४ द्युतिमान् अग्निदेव, यज्ञ-कर्त्ताओंने तुममें प्रभूत दीप्ति प्रदान की है। युवतम अग्नि, चूँकि तुम यज्ञमें स्वर्गीय तेजकी पूजा करते हो; इसलिये देवोंको बुलाओ।

५ अग्निदेव, चूँकि यज्ञके लिये बैठे हुए दीप्तिशाली ऋत्विक् लोग यज्ञमें तुम्हें होता कहकर सिक्त कहते हैं; इसलिये तुम हमारी रक्षाके लिये जागो। हमारे पुत्रोंको अधिक अन्न दो।

१ हव्यवाहक उषाके अधिकार दूर करते समय अग्निदेव उषा, अश्विनीकुमारों और दधिक्रा (अश्वरूपी अग्नि) नामक देवताको ऋचाके द्वारा बुलाते हैं। सुन्दर द्युतिमान् और परस्पर मिलित देवता लोग हमारे यज्ञकी अभिलाषा करके उस ऋचाको सुनें।

२ अग्निदेव, तुम्हारा अन्न तीन प्रकारका है; तुम्हारा स्थान तीन प्रकारका है। यज्ञ-सम्पादक अग्नि, देवोंकी उदर-पूर्ति करनेवाली तुम्हारी तीन जिह्वाएँ हैं। तुम्हारे तीन प्रकारके शरीर देवोंके द्वारा अभिलषित हैं। अप्रमत्त होकर तुम उन्हीं तीनों शरीरोंके द्वारा हमारी स्तुतिकी रक्षा करो।

३ हे द्युतिमान्, जातवेदा, मरण-शून्य और अन्नवान् अग्नि, देवोंने तुम्हें अनेक प्रकारके तेज दिये हैं। हे संसारके तृप्तिकर्त्ता और प्रार्थित फलदाता अग्नि, मायावियोंकी जिन मायाओंको देवोंने तुम्हें प्रदान किया है, वह सब तुममें ही हैं।

अग्निर्नेता भगइव क्षितीनां दैवीनां देवऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥४॥
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५॥

२१ सूक्त

अग्नि देवता । त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और बृहती छन्द ।

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाश्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥२॥
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३॥

---

४ ऋतुकर्त्ता सूर्यकी तरह जो अग्नि देवों और मनुष्योंके नियन्ता हैं, जो अग्नि सत्यकारी, वृत्रहन्ता, सनातन, सर्वज्ञ और द्युतिमान् हैं, वह स्तोताको, सारे पापोंको लँघाकर, पार ले जावें।

५ मैं दधिक्रा, अग्नि, देवी उषा, बृहस्पति, द्युतिमान् सविता, अश्विद्वय, भग, वसु, रुद्र और आदित्योंको इस यज्ञमें बुलाता हूँ।

---

१ जातवेदा अग्नि, हमारे इस यज्ञको देवोंके पास समर्पित करो। हमारे हव्यका सेवन करो। हे होता, बैठकर सबसे पहले मेद और घृतके बिन्दुओंको भली भाँति खाओ।

२ पावक, इस साङ्ग यज्ञमें घृतसे युक्त सबमें दो बिन्दु तुम्हारे और देवोंके पीनेके लिये गिर रहे हैं। इसलिये हमें श्रेष्ठ और वरणीय धन दो।

३ भजनीय अग्निदेव, तुम मेधावी हो। घृतस्रावी सब बिन्दु तुम्हारे लिये हैं। तुम ऋषि और श्रेष्ठ हो। तुम प्रज्वलित होते हो। यज्ञ-पालक बनो।

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।

कविशस्तो बृहता भानुनागाहव्या जुषस्व मेधिर ॥४॥

ओजिष्ठं ते मध्यते मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।

श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५॥

२२ सूक्त

अग्नि देवता । अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

अयंसो अग्निर्यस्मिन् सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।

सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्तसन्तन् स्तूयसे जातवेदः ॥१॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।

येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२॥

४ हे सततगमनशील और शक्तिमान् अग्नि, तुम्हारे लिये मेदो-रूप हव्यके सब बिन्दु क्षरित होते हैं। कवि लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। महान् तेजके साथ आओ। हे मेधावी, हमारे हव्यका सेवन करो।

५ अग्निदेव, हम अतीव सार-युक्त मेद, पशुके मध्य भागसे, उठाकर तुम्हें देंगे। निवासप्रद अग्नि, चमड़ेके ऊपर जो सब बिन्दु तुम्हारे लिये गिरते हैं, वह देवोंमें से प्रत्येकको विभाग करके दो।

१ सोमाभिलाषी इन्द्रने जिन अग्निमें अभिषुत सोमको अपने उदरमें रखा था, यह वही अग्नि हैं। हे सर्वज्ञ अग्नि, जो हव्य नाना-रूपवाला और अश्वकी तरह वेगशाली है, उसकी तुम सेवा करो। संसार तुम्हारी स्तुति करता है।

२ यजनीय अग्नि, तुम्हारा जो तेज द्युलोक, पृथ्वी, ओषधियों और जलमें है, जिसके द्वारा तुमने अन्तरीक्षको व्याप्त किया है, वह तेज उज्ज्वल, समुद्रके समान विशाल और मनुष्योंके लिये दर्शनीय है। *

* द्युलोकमें सूर्य, भूलोकमें आहवनीय, ओषधिमें निगूढ़ तेज, समुद्र (जल)में वड़वानल और अन्तरीक्षमें वायु-रूप अग्नि वर्तमान हैं। अग्निका ऐसा तेज, समुद्रके समान विशाल और व्यापक है ही।

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छादेवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३॥
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोनमीवा इषो महीः ॥४॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥

२३ सूक्त

अग्नि देवता । भरतके पुत्र देवश्रवा और देववात ऋषि हैं। बृहती और त्रिष्टुप् छन्द ।

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥१॥
अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनुद्यून् ॥२॥

३ अग्नि, तुम द्युलोकके जलके सामने जा रहे हो, प्राणात्मक देवोंको एकत्र करते हो। सूर्यके ऊपर अवस्थित रोचन नामके लोकमें और सूर्यके नीचे जो जल है, उन दोनोंको तुम्हीं प्रेरित करते हो।

४ सिकता-संमिश्रित अग्नि, खोदाई करनेवाले हथियारोंमें मिलकर इस यज्ञका सेवन करें। द्रोह-रहित, रोगादिशून्य और महान् अन्न हमें दान करें।

५ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंकी कारणभूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा दो। हमारे वंशका विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो । अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो।

---

१ जो अग्नि मन्थन द्वारा उत्पन्न, यजमानके घरमें स्थापित, युवा, सर्वज्ञ, यज्ञके प्रणेता, जातवेदा और महारण्यका विनाश करके भी स्वयं अजर हैं वही अग्नि इस यज्ञमें अमृत धारण करते हैं।

२ भरतके पुत्र देवश्रवा और देववात सुदक्ष और धनवान् अग्निको मन्थन द्वारा उत्पन्न करते हैं। अग्निदेव, तुम बहुत धनके साथ हमारी ओर देखो और प्रतिदिन हमारा अन्न ले आओ।

दशक्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन् सुजातं मातृषु प्रियम् ।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३॥
नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥



२४ सूक्त ।

अग्नि देवता । २४–२५ विश्वामित्र ऋषि । अनुष्टुप् और गायत्री छन्द ।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य ।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धायज्ञवाहसे ॥१॥
अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सूनो अध्वरम् ॥२॥

---

३ दस अंगुलियोंने इन पुरातन और कमनीय अग्निको उत्पन्न किया है। हे देवश्रवा, अरणिरूप माताओंके बीच सुजात और प्रिय तथा देववात द्वारा उत्पादित अग्निकी स्तुति करो। वही अग्नि लोगोंके वशवर्ती होते हैं।

४ अग्नि, सुदिन (प्रधान-देव-पूजा-दिन) की प्राप्तिके लिये गो-रूपिणी पृथिवीके उत्कृष्ट स्थानमें तुम्हें हम स्थापित करते हैं। अग्निदेव, तुम दृषद्वती (राजपूतानेकी सिकतामें विनष्ट घग्घर नदी), आपया (कुरुक्षेत्रस्थ नदी) और सरस्वती (कुरुक्षेत्रीय सरस्वती नदी) के तटोंपर रहनेवाले मनुष्योंके गृहमें धन-युक्त होकर दीप्त होओ।

५ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके कारण और धेनुप्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो। हमें वंश-विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो। अग्नि, हमारे ऊपर तुम्हारा अनुग्रह हो।

१ अग्नि, तुम शत्रु-सेनाको पराभूत करो। विघ्न-कर्त्ताओंको दूर कर दो। तुम्हें कोई जीत नहीं सकता। तुम शत्रुओंको जीत कर यजमानको अन्न दो।

२ अग्नि, तुम यज्ञमें प्रीतमान और अमर हो। तुम्हें उत्तर वेदीपर प्रज्वलित किया जाता है। तुम हमारे यज्ञकी भली भाँति सेवा करो।

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥३॥

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उचायवः ॥४॥

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥५॥

२५ सूक्त

चतुर्थ ऋचाके इन्द्र और अग्नि देवता हैं; शेषके अग्नि हैं । विराट् छन्द ।

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥१॥

अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एहवहा पुरुक्षो ॥२॥

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आभाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३॥

३ अग्नि, तुम अपने तेजसे सदा जागरित हो। तुम बलके पुत्र हो। मैं तुम्हें बुलाता हूँ। मेरे इस कुशपर बैठो।

४ अग्नि, जो तुम्हारे पूजक हैं, उनके यज्ञमें समस्त तेजस्वी अग्नियोंके साथ स्तुतिकी मर्यादाकी रक्षा करो।

५ अग्नि, तुम हव्यदाताको वीर्ययुक्त और प्रभूत धन दो। हम पुत्र-पौत्रवाले हैं। हमें तीक्ष्ण करो।

---

१ अग्निदेव, तुम सर्वज्ञ, चित्रवान, द्युदेवताके पुत्र और पृथिवीके तनय हो। चेतनावान् अग्नि, तुम देवोंके इस यज्ञमें पृथक्-पृथक् यज्ञ करो।

२ विद्वान् अग्नि सामर्थ्य प्रदान करते हैं। अग्नि अपनेको विभूषित करके देवोंको अन्न प्रदान करते हैं। हे बहुविध अन्नवाले अग्नि, हमारे लिये देवोंको इस यज्ञमें ले आओ।

३ सर्वज्ञ, जगत्पति, बहुदीप्ति-युक्त, बल और अन्नवाले अग्नि संसारकी माता, द्युतिमती और मरण-शून्या द्यावा-पृथिवीको प्रकाशित करते हैं।



अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोपयातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४॥

अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती ॥५॥



२६ सूक्त

१–३ के वैश्वानर, ४–६ के मरुद्गण, ७–८ के ब्रह्म (वैश्वानर अग्नि) और ६ के विश्वामित्रके उपाध्याय देवता हैं। विश्वामित्र ऋषि। ७ वीं ऋचाके ऋषि अग्नि वा ब्रह्म हैं। जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भीरण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥

---

४ अग्नि, तुम और इन्द्र यज्ञकी हिंसा न करके अभिषव-प्रदाता इस गृहमें, सोमपानके लिये, आओ।

५ बलके पुत्र, नित्य और सर्वज्ञ अग्नि, आश्रय दान-द्वारा तुम जीवलोकोंको अलंकृत करते हुए जलके स्थान अन्तरीक्षमें सुशोभित होते हो।

---

१ हम कुशिक-गोत्रोद्भूत हैं। धनकी अभिलाषासे हव्यको संग्रह करते हुए भीतर ही भीतर वैश्वानर अग्निको जानकर स्तुति द्वारा उन्हें बुलाते हैं। वे सत्यके द्वारा अनुगत हैं; स्वर्गका विषय जानते हैं; यज्ञका फल देते हैं; उनके पास रथ है; वह यज्ञमें आते हैं।

२ आश्रय-प्राप्ति और यजमानके यज्ञके लिये उन शुभ्र, वैश्वानर, मातरिश्वा (विद्युद्रूप) ऋचा-योग्य, यज्ञपति, मेधावी, श्रोता, अतिथि और क्षिप्रगामी अग्निको हम बुलाते हैं।

अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगे युगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३॥
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४॥
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आत्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५॥
व्रातं व्रातं गणं गणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६॥
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥
त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८॥

३ हिनहिनानेवाला घोड़ेका बच्चा जैसे अपनी माताके द्वारा वर्द्धित होता है, वैसे ही प्रतिदिन वैश्वानर अग्नि कौशिकोंके द्वारा वर्द्धित होते हैं। देवोंमें जागरूक अग्नि हमें उत्तम अश्व, उत्तम वीर्य और उत्तम धन प्रदान करें।

४ अग्नि-रूप अश्वगण गमन करें; बली मरुतोंके साथ मिलकर पृषती (वाड्व) वाहनोंको संयुक्त करें। सर्वज्ञ और अहिंसनीय मरुद्गण अधिक जलशाली और पर्वतसदृश मेघको कम्पित करते हैं।

५ मरुद्गण अग्निके आश्रित और संसारके आकर्षक हैं। उन्हीं मरुतोंके दीप्त और उग्र आश्रयके लिये हम भली भाँति याचना करते हैं। वर्षण-रूप-धारी, ह्वेषा (हिनहिनाना)-शब्द-कारी और सिंहके समान गरजनेवाले मरुद्गण विशेषरूपसे जल देते हैं।

६ दलके दल और झुण्डके झुण्ड स्तुतिमंत्रों द्वारा अग्निके तेज और मरुत्के बलकी हम याचना करते हैं। बिन्दु-चिह्नित अश्व (पृषती) वाले और अक्षय धन-संयुक्त तथा धीर मरुद्गण हव्यके उद्देश्यसे यज्ञमें आते हैं।

७ मैं अग्नि या परब्रह्म जन्मसे ही जातवेदा या परतत्त्व-रूप हूँ। घृत या प्रकाश ही मेरा नेत्र है। मेरे मुखमें अमृत है। मेरे प्राण त्रिविध (वायु-सूर्य-दीप्ति) हैं। मैं अन्तरीक्षको मापनेवाला हूँ। मैं अक्षय उत्ताप हूँ। मैं हव्य-रूप हूँ।

८ अन्तःकरण द्वारा मनोहर ज्योतिको भली भाँति जानकर अग्निने अग्नि-वायु-सूर्य-रूप तीन पवित्र स्वरूपोंसे पूजनीय आत्माको शुद्ध किया है। अग्निने अपने रूपों द्वारा अपनेको अतीव रमणीय किया था तथा दूसरे ही क्षण द्यावा-पृथिवीको देखा था।

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेलिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥६॥

२७ सूक्त

अग्नि देवता। प्रथम ऋचाके देवता ऋतु या अग्नि। यहाँसे ३२ सूक्ततकके ऋषि विश्वामित्र हैं। गायत्री छन्द।

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या। देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥१॥
ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम्। श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥२॥
अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनम्। अति द्वेषांसि तरेम ॥३॥
समिध्यमानो अध्वरेऽग्निः पावक ईड्यः। शोचिष्केशस्तमीमहे ॥४॥
पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः। अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥५॥
तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः। आ चक्रुरग्निमूतये ॥६॥

६ शत धारवाले स्रोतकी तरह अविच्छिन्न प्रवाहवाले, विद्वान्, पालक, वाक्योंका मेल करानेवाले, माता-पिताकी गोदमें प्रसन्न और सत्यवादी (विश्वामित्रके उपाध्याय वा अग्नि) को, हे द्यावा-पृथिवी, तुम पूर्ण करो।

---

१ ऋतुओं, स्रुक् और हविवाले देवता, पशु, मास, अर्द्ध मास आदि तुम्हारे यजमानके लिये सुखकी इच्छा करते हैं और यजमान देवोंको प्राप्त करता है।

२ मेधावी, यज्ञ-निर्वाहक, वेगवान् और धनवान् अग्निकी, स्तुति-वचनोंके द्वारा, मैं पूजा करता हूँ।

३ दीप्तिमान अग्निदेव, हव्य तैयार करके तुम्हें हम यहीं रख सकेंगे और पापसे उत्तीर्ण होंगे।

४ यज्ञके समय प्रज्वलित, ज्वालावाले केशसे संयुक्त, पावक तथा पूजनीय अग्निके पास हम अभिलषित फलकी याचना करते हैं।

५ प्रभूत तेजवाले, मरण-शून्य, घृतशोधन-कर्त्ता और सम्यक् पूजित अग्नि यज्ञका हव्य ले जायँ।

६ यज्ञ-विघ्न-नाशक और हव्ययुक्त ऋत्विकोंने स्रुकको संयत करके, आश्रय-प्राप्तिके लिये, एवं प्रकार स्तुतिके द्वारा उन अग्निको अपने अभिमुख किया था।

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। विदथानि प्रचोदयन् ॥७॥
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते। विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८॥
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमादधे। दक्षस्य पितरं तना ॥९॥
नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येला सहस्कृत। अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१०॥
अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः। विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११॥
ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुपद्यवि। अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥ १२ ॥
ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यते वृषा ॥ १३ ॥
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईळते ॥१४॥
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि। अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५॥

---

७ होम-निष्पादक, अमर और द्युतिमान् अग्नि यज्ञ-कार्यमें लोगोंको उत्तेजित करके यज्ञ-कार्यकी अभिज्ञताके सहयोगसे अग्रगन्ता होते हैं।

८ बलवान् अग्नि युद्धमें आगे स्थापित किये जाते हैं। यज्ञ-कालमें वह यथास्थान निक्षिप्त होते हैं। वह मेधावी और यज्ञ-सम्पादक हैं।

९ जो अग्नि कर्म द्वारा वरणीय हैं, भूतोंके गर्भ-रूपसे अवस्थित हैं, पितृ-स्वरूप हैं, उन्हीं अग्निको दक्षकी पुत्री (यज्ञ-भूमि) धारण करती हैं।

१० बल-सम्पादित अग्नि, तुम उत्कृष्ट दीप्तिसे युक्त, हव्याभिलाषी और वरणीय हो। तुम्हें दक्षकी तनया इला (वेदी-रूपा भूमि) धारण करती हैं।

११ मेधावी भक्त लोग संसारके नियामक और जलके प्रेरक अग्निको, यज्ञके सम्पादनके लिये, अन्न द्वारा, भली भाँति, उद्दीप्त करते हैं।

१२ अन्नके नप्ता, अन्तरीक्षके पास दीप्तिमान् और सर्वज्ञ अग्निकी यज्ञकी मैं स्तुति करता हूँ।

१३ पूजनीय, नमस्कार-योग्य, दर्शनीय और अभीष्टवर्षी अन्धकारको दूर करते हुए प्रज्वलित होते हैं।

१४ अभीष्टवर्षी और अश्वकी तरह देवोंके हव्यवाहक अग्नि प्रज्वलित होते हैं। हविष्मान् अग्निकी मैं पूजा करता हूँ।

१५ अभीष्टवर्षी अग्नि, हम घृत आदिका सेचन करते हैं, तुम जलका सेचन करते हो। हम तुम्हें दीप्त करते हैं। तुम दीप्तिमान् और बृहत् हो।

२८ सूक्त

अग्नि देवता । गायत्री, उष्णिक्, त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोडाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥१॥

पुरोला अग्ने पचतस्तुभ्यं वाघ परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥२॥

अग्ने वीहि पुरोलाशमाहुतं तिरो अह्न्यम् । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥३॥

माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोलाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्रमिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥

अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोलाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५ ॥

अग्ने वृधान आहुतिं पुरोलाशं जातवेदः । जुषस्व तिरो अह्न्यम् ॥६॥

---

१ जातवेदा अग्नि, तुम्हारा स्तोत्र ही धन-प्रदायक है । प्रातःसवनमें तुम हमारे पुरोडाश और हव्यकी सेवा करो ।

२ युवतम अग्नि, तुम्हारे लिये पुरोडाशका पाक किया गया है; उसे संस्कृत किया गया है । तुम उसका सेवन करो ।

३ अग्नि, दिनान्तमें सम्यक् प्रदत्त पुरोडाशका भक्षण करो । तुम बलके पुत्र हो, यज्ञमें निहित होओ ।

४ हे जातवेदा और मेधावी अग्नि, माध्यन्दिन सवनमें पुरोडाशका सेवन करो । धीर अध्वर्यु लोग यज्ञमें तुम्हारा भाग नष्ट नहीं करते । तुम महान् हो ।

५ बलके पुत्र अग्नि, तृतीय सवनमें दिये गये पुरोडाशकी तुम अभिलाषा करो । अनन्तर अविनाशी, रत्नवान् और जागरण-कारी सोमको, स्तुतिके साथ, अमर देवोंके पास, स्थापित करो ।

६ जातवेदा अग्नि, दिनके अन्तमें तुम पुरोडाश-रूप आहुतिका सेवन करो ।

२९ सूक्त

अग्नि देवता। अनुष्टुप्, जगती और त्रिष्टुप् छन्द।

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम्।
एतां विश्पत्नीमाभराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥१॥
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥२॥
उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥३॥
इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥४॥
मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम्।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥

---

१ यही अग्नि मन्थन और उत्पत्तिके साधन हैं। संसार-रक्षक अरणिको ले आओ। पहलेकी तरह हम अग्निका मन्थन करेंगे।

२ गर्भिणीके गर्भकी तरह जातवेदा अग्नि काष्ठ (अरणि)-द्वयमें निहित हैं। अपने कर्ममें जागरूक और हविसे युक्त अग्नि मनुष्योंके, प्रतिदिन, पूजनीय हैं।

३ हे ज्ञानवान् अध्वर्यु, ऊर्ध्वमुख अरणिपर अधोमुख अरणि रखो। तुरत गर्भयुक्त अरणिने अभीष्टवर्षी अग्निको उत्पन्न किया। उसमें अग्निका दाहकत्व था। उज्ज्वल तेजसे युक्त इळाके पुत्र अग्नि अरणिमें उत्पन्न हुए।

४ जातवेदा अग्नि, हम तुम्हें पृथिवीके ऊपर, उत्तर वेदीके नाभि-स्थलमें, हव्य वहन करनेके लिये स्थापित करते हैं।

५ नेता अध्वर्युगण, कवि, द्वैध-शून्य, प्रकृष्ट ज्ञानवान्, अमर, सुन्दर शरीरवाले अग्निको मन्थन द्वारा उत्पन्न करो। नेता अध्वर्युगण, यज्ञके सूचक, प्रथम और सुखदाता अग्निको कर्मके प्रारम्भमें उत्पन्न करो।

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्विरोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परिवृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६॥
जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥
सीद होतः स्वउलोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयोधाः ॥ ८ ॥
कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥ ९ ॥
अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आसीदाथा नो वर्द्धया गिरः ॥ १० ॥

---

६ जिस समय हाथोंसे मन्थन किया जाता है, उस समय काष्ठसे अग्नि, अश्वकी तरह, सुशोभित होकर तथा द्रुतगामी अश्विद्वयके विचित्र रथकी तरह शीघ्र गन्ता होकर शोभा धारण करते हैं। कोई भी अग्निका मार्ग नहीं रोक सकता । अग्निने तृण और उपलको भस्म कर उस स्थानको छोड़ दिया।

७ उत्पन्न अग्नि भी सर्वज्ञ, अप्रतिहतगमन और कर्म-कुशल हैं; इसलिये मेधावी लोग उनकी स्तुति करते हैं। वह कर्म-फल प्रदान करके शोभा प्राप्त करते हैं। देवता लोगोंने पूजनीय और सर्वज्ञ अग्निको यज्ञमें हव्यवाहक किया था।

८ होम-निष्पादक अग्नि, अपने स्थानपर बैठो। तुम सर्वज्ञ हो। यजमानको पुण्य लोकमें स्थापित करो। तुम देवोंके रक्षक हो। हव्यके द्वारा देवोंकी पूजा करो। मैं यज्ञ करता हूँ, मुझे यथेष्ट अन्न प्रदान करो।

९ अध्वर्युगण, अभीष्टवर्षी धूम उत्पन्न करो । तुम सबल होकर युद्धके सामने जाओ। यह अग्नि वीर-प्रधान और सेना-विजेता हैं। इन्हींकी सहायतासे देवोंने असुरोंको परास्त किया था।

१० अग्नि, ऋतु-काष्ठ-(पलाश-अश्वत्थादि)-वान् यह अरणि तुम्हारा उत्पत्ति-स्थान है। इससे उत्पन्न होकर तुम शोभा प्राप्त करो। उसे जानकर तुम बैठ जाओ। इससे उत्पन्न होकर तुम शोभा प्राप्त करो। तुम यह जानकर उपवेशन करो। हमारी स्तुतिको वर्द्धित करो।

तनूनपाधुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि ॥११॥
सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥१२॥
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दशस्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभिसंरभन्ते ॥१३॥
प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न निमिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥
अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५॥

११ गर्भस्थ अग्निको तनूनपात् कहा जाता है। जिस समय अग्नि प्रत्यक्ष होते हैं, उस समय वह आसुर (असुर-हन्ता अथवा अरणि-रूप-काष्ठ-पुत्र) नराशंस (अग्नि-नाम) होते हैं। जिस समय अन्तरीक्षमें तेजका विकाश करते हैं, उस समय मातरिश्वा (अग्नि-नाम) होते हैं। अग्निके प्रसूत होनेपर वायुकी उत्पत्ति होती है।

१२ अग्नि, तुम मेधावी और मन्थनके द्वारा उत्पन्न हो। तुम्हें अत्युत्तम स्थानमें स्थापित किया गया है। हमारा यज्ञ निर्विघ्न करो और देवाभिलाषीके लिये देवोंकी पूजा करो।

१३ मर्त्य ऋत्विक् लोगोंने अमर, अक्षय, दृढ़-दन्त-विशिष्ट और पाप-तारक अग्निको उत्पन्न किया है। पुत्र-सन्तानकी तरह उत्पन्न अग्निको लक्ष्य कर भगिनी-स्वरूप दस अँगुलियाँ, परस्पर मिलकर, आनन्द-सूचक शब्द करती हैं।

१४ अग्नि सनातन हैं। जिस समय सात मनुष्य उनका हवन करते हैं, उस समय वह शोभा पाते हैं। जिस समय वह माताके स्तन और क्रोड़पर शोभा पाते हैं, उस समय देखनेमें वह सुन्दर मालूम पड़ते हैं। वह प्रतिदिन सजग रहते हैं; क्योंकि वह असुरके जठरसे उत्पन्न हुए हैं।

१५ मरुतोंके समान शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाले और ब्रह्मासे प्रथम उत्पन्न कुशिक-गोत्रोत्पन्न ऋषि लोग निश्चय ही सारा संसार जानते हैं। अग्निको लक्ष्य करके हव्य-युक्त स्तोत्रका पाठ करते हैं। वे लोग अपने-अपने गृहमें अग्निको दीप्त करते हैं।

यद्द्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वोवृणीमही ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उपयाहि सोमम् ॥१६॥



१६ होम-निष्पादक, विद्वान् और सर्वज्ञ अग्नि, इस प्रवर्तित यज्ञमें तुम्हें हम वरण करते हैं; इसलिये तुम इस यज्ञमें देवोंको हव्य प्रदान करो। नित्य स्तव करो। सोमकी बातको जानकर उसके पास आओ।

प्रथम अध्याय समाप्त



द्वितीय अध्याय



३० सूक्त

३ अनुवाक। इन्द्र देवता। त्रिष्टुप् छन्द।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१॥
न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्रयाहि हरिवो हरिभ्याम्।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥२॥
इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्म्मिर्ऋघावान्।
यदुग्रोधा बाधितो मर्त्येषु क्व त्या वृषभ वीर्याणि ॥३॥
त्वं हि स्म च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः।
तव द्यावापृथिवीपर्वतासोनुव्रताय निमितेव तस्थुः ॥४॥

१ इन्द्र, सोमार्ह ऋत्विक् लोग तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं। सखा लोग तुम्हारे लिये सोमका अभिषवण करते हैं; कुछ हव्य धारण करते हैं; शत्रुओंकी हिंसाको सहते हैं। तुम्हारी अपेक्षा संसारमें कौन प्रसिद्ध है ?

२ हे हरिवर्ण अश्ववाले इन्द्र, दूरस्थ स्थान भी तुम्हारे लिये दूर नहीं हैं। हरिवर्ण अश्वसे युक्त होकर शीघ्र आओ। तुम दृढ़चित्त और अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे ही लिये यह सब सवन किया गया है। अग्निके समिद्ध होनेपर, सोमाभिषवके लिये, प्रस्तर-खण्ड प्रयुक्त हुए हैं।

३ अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम परम ऐश्वर्यवाले हो। तुम्हारा शिप्र (शिरस्त्राण) सुन्दर है। तुम धनवान्, विजेता, महान् मरुद्गणवाले, संग्राममें नानाविध कर्म करनेवाले, शत्रुहिंसक और भयङ्कर हो। संग्राममें बाधा प्राप्त करके मनुष्योंके प्रति तुमने जो वीर्य धारण किया है, तुम्हारा वह वीर्य कहाँ है ?

४ इन्द्र, अकेले ही तुमने दृढ़मूल राक्षसोंको उनके स्थानोंसे गिराया है। वृत्रादिको मारा है। तुम्हारी आज्ञासे द्यावापृथिवी और पर्वत अचल हैं।

उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृह्ळमवदो वृत्रहा सन्।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन् काशिरित्ते ॥५॥
प्र सू त इन्द्र वृत्रहा हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६॥
यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं स।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७॥
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक्कुणारुम्।
अभिवृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥८॥
नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ।
अस्तभ्नाद्द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥९॥

५ इन्द्र, तुम बहुत लोगोंके द्वारा आहूत और वीर्ययुक्त हो। अकेले ही तुमने वृत्रका बध करके देवोंको जो अभय वाक्य प्रदान किया था, वह ठीक है। मघवन्, तुम अपार द्यावापृथिवीको संयोजित करते हो। तुम्हारी ऐसी महिमा प्रख्यात है।

६ इन्द्र, तुम्हारा अश्ववाला रथ शत्रुको लक्ष्य करके निम्न मार्गसे शीघ्र आगमन करे। शत्रुका बध करते-करते तुम्हारा वज्र आवे। अपने सामने आनेवाले शत्रुओंका विनाश करो। भागनेवाले शत्रुओंका बध करो। संसारको यज्ञ-युक्त करो। तुम्हारे अन्दर ऐसी सामर्थ्य निविष्ट हो।

७ इन्द्र, तुम निरन्तर ऐश्वर्यको धारण करते हो। तुम जिस मनुष्यको दान करते हो, वह पहले अप्राप्त गृह-सम्बन्धीय पशु, सुवर्ण आदि धन प्राप्त करता है। अनेक लोकोंसे आहूत, घृत, हव्य आदिसे युक्त तुम्हारा अनुग्रह कल्याणवाही होता है। तुम्हारी धन देनेकी शक्ति असीम है।

८ अनेक लोकोंसे आहूत इन्द्र, तुम दानवोंके साथ वर्त्तमान हो। बाधक और गर्जनशील वृत्रको हस्तहीन करके चूर्ण-विचूर्ण कर डालते हो। इन्द्र, वर्द्धमान और हिंस्र वृत्रको पाद-हीन करके तुमने बलसे विनष्ट किया था।

९ इन्द्र, तुमने महती, अनन्ता और चला पृथिवीको समभावापन्न करके उसके स्थानमें निविष्ट किया था। अभीष्टवर्षक इन्द्रने, द्युलोक और अन्तरिक्ष जैसे पतित न हो, इस प्रकार धारण किया है। इन्द्र, तुम्हारा प्रेरित जल पृथिवीपर आवे।

अत्रातृणो बल इन्द्र व्रजो गोः पुराहन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१०॥
एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुतद्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीकइषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११॥
दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानड्ध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२॥
दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥
महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामापक्वँ चरति विभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्त्रियायां यत् सीमिन्द्रो अदधाद् भोजनाय ॥१४॥

१० इन्द्र, अतीव हिंसक बल नामका गोव्रज अथवा गोष्ठभूत मेघ वज्र-प्रहारके पहले ही डरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया था । गौके निकलनेके लिये इन्द्रने मार्ग सुगम कर दिया था । रमणीय शब्दायमान जल अनेक लोकोंसे आहूत इन्द्रके सम्मुख आया था ।

११ अकेले इन्द्रने ही पृथिवी और द्युलोकको परस्पर संगत और धनयुक्त करके परिपूर्ण किया है । शूर, तुम रथवाले हो । हमारे पास रहनेके अभिलाषी होकर योजित अश्वोंको अन्तरीक्षसे हमारे सामने प्रेरित करो ।

१२ सूर्य इन्द्र द्वारा प्रेरित हैं । वह अपने गमनके लिये प्रकाशित दिशाओंका प्रतिदिन अनुसरण करते हैं । जिस समय वह अश्वके द्वारा अपना मार्ग-गमन समाप्त कर देते हैं, तब हमें छोड़ देते हैं— यह भी इन्द्रके ही लिये ।

१३ गमनशील रात्रिके पश्चात् उषाके गत होनेपर सब लोग महान् तथा चित्र सूर्य-तेजका दर्शन करनेकी इच्छा करते हैं । जिस समय उषाकाल विगत हो जाता है, उस समय सब अग्निहोत्र आदि कर्मको कर्त्तव्य समझने लगते हैं । इन्द्रके कितने ही सत्कार्य हैं ।

१४ इन्द्रने नदियोंमें महान तेजवाला जल स्थापित किया है । इन्द्रने जलसे स्वादुतर दधि, घृत, क्षीर आदि, भोजनके लिये गौमें सस्थापित किया है । नवप्रसूता गौ दुग्ध धारण करके विचरण करती है ।

इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥
सङ्घोष शृण्वेवमैरमित्रैर्जहीन्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद्विरुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्रन्धयस्व ॥१६॥
उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥१७॥
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः संयन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८॥
आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९॥
इमं कामं मन्दयागोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥

१५ इन्द्र तुम दृढ़ बनो। शत्रुओंने मार्ग बन्द किया है । यज्ञ और स्तुति करनेवाले तथा सखा लोगोंको अभीष्ट फल प्रदान करो। शत्रुओंका बध करना उचित है। वे धीरे-धीरे जाते और हथियार फेंकते हैं। वे हत्यारे और तूणीरवाले हैं।

१६ इन्द्र, हम समीपस्थ शत्रुओं द्वारा छोड़ा हुआ वज्र-नाद सुनते हैं। अतीव सन्ताप देनेवाली इन सब अशनियोंको इन सब शत्रुओंके सामने ही रखकर इनका विनाश करो; समूल छेदन करो; विशेष रूपसे बाधा दो; अभिभूत करो । इन्द्र, राक्षसोंका बध करो; पीछे यज्ञ सम्पन्न करो ।

१७ इन्द्र, राक्षस-कुलका समूल उन्मूलन करो। उनका मध्यभाग छेदो; अग्रभाग विनष्ट करो। गमनशील राक्षसको दूर करो। यज्ञ-विद्वेषी (ब्राह्मण-शत्रु) के प्रति सन्तापप्रद अस्त्र फेंको।

१८ संसारके निर्वाहक इन्द्र, हमें अश्वसे युक्त करो। हमें अविनाशी करो। तुम जब हमारे निकट रहोगे, तब हम महान् अन्न और प्रभूत धनका भोग करके बड़े हो सकेंगे । हमें पुत्र, पौत्र आदिसे युक्त धन प्राप्त हो।

१९ इन्द्र, हमारे लिये दीप्तिसे युक्त धन ले आओ। तुम दानशील हो और हम तुम्हारे दानके पात्र हैं। हमारी अभिलाषा बड़वानलकी तरह बढ़ी हुई है। धनपति, हमारी अभिलाषा पूर्ण करो।

२० हमारी इस अभिलाषाको गौ, अश्व और दीप्तिवाले धनके द्वारा पूर्ण करो तथा उसके द्वारा हमें विख्यात करो। इन्द्र, स्वर्गादि सुखाभिलाषी और कर्मकुशल कुशिकनन्दनोंने मन्त्र द्वारा तुम्हारा स्तोत्र किया है।

आ नो गोत्रादर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥२१॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तम् वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥

३१ सूक्त ।

इन्द्र देवता । इषीरथके अपत्य कुशिक अथवा विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन् सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥१॥
न जामये तान्वो रिक्थमारैक् चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२॥

२१ स्वर्गाधिपति इन्द्र, मेघको विदीर्ण करके हमें जल दो । उपभोगके योग्य अन्न हमारे पास आवे । अभीष्टवर्षक, तुम द्युलोकको व्याप्त करके स्थित हो । सत्यबल मघवन्, हमें गौ दो ।

२२ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो । तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यवाले, नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, उग्र, युद्धमें शत्रु-विनाशी और धन-विजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

---

१ पुत्रहीन पिता रेतोधा जामाताको सम्मानयुक्त करते हुए शास्त्रके अनुशासनके अनुसार पुत्रीसे उत्पन्न पौत्र (दौहित्र) के पास गया । अपुत्र पिता, पुत्रीको गर्भ रहेगा, ऐसा विश्वास करके शरीर धारण करता है ।

२ औरस पुत्र पुत्रीको नहीं धन देता । वह पुत्रीको उसके भर्त्ता (पति) के रेतःसेचनका आधार बनाता है । यदि पिता-माता पुत्र और कन्या, दोनोंका ही उत्पादन करते हैं, तब उनमेंसे एक (पुत्र) उत्कृष्ट क्रिया-कर्मका अधिकारी होता है और दूसरा (पुत्री) सम्मान-युक्त होता है ।

अग्निर्यज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥३॥
अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥४॥
वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन् प्राचाहिन्वन् मनसा सप्त विप्राः ।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥५॥
विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥६॥
अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥७॥

---

३ इन्द्र, तुम दीप्ति-युक्त हो। तुम्हारे यज्ञके लिये ज्वाला द्वारा कम्पमान अग्निने यथेष्ट-पुत्ररूप रश्मियोंको उत्पन्न किया है। इन रश्मियोंका जल-रूप गर्भ महान् है; ओषधि-रूप जन्म महान् है। हे हर्यश्व, तुम्हारी सोमाहुति द्वारा प्रयुक्त इन रश्मियोंकी प्रवृत्ति महती है।

४ विजेता मरुद्गण वृत्रके साथ युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ सङ्गत हुए थे। सूर्य-संज्ञक महान् तेज तमोरूप वृत्रसे निर्गत होता है, इस बातको मरुतोंने जाना था। उषाएँ, इन्द्रको सूर्य समझ करके, उनके सामने गयी थीं। अकेले इन्द्र सारी रश्मियोंके पति हुए थे।

५ धीमान् और मेधावी सात अङ्गिरा लोगोंने सुदृढ़ पर्वतपर रोकी हुई गायोंको खोज निकाला था। वे, पर्वतपर गायें हैं, ऐसा निश्चय करके जिस मार्गसे वहाँ गये थे, उसी मार्गसे लौट आये। उन्होंने यज्ञ-मार्गमें सारी गायोंको प्राप्त किया था। यह सब जानकर इन्द्र, नमस्कार द्वारा, अङ्गिरा लोगोंकी सम्भावना करके पर्वतपर गये थे।

६ जिस समय सरमा पर्वतके टूटे हुए द्वारपर पहुँची, उस समय इन्द्रने अपने कहे हुए यथेष्ट अन्नको, अन्यान्य सामग्रियोंके साथ, उसे दिया। अच्छे पैरोंवाली सरमा शब्द पहचान कर सामने जाते हुए, अक्षय गायोंके पास, पहुँच गयी। *

७ अतीव मेधावी इन्द्र अङ्गिरा लोगोंकी मित्रताकी इच्छासे गये थे। पर्वतने महायोद्धाके लिये अपने गर्भस्थ गोधनको बाहर कर दिया। शत्रु-हन्ता इन्द्रने तरुण मरुतोंके साथ उन्हें प्राप्त किया। अङ्गि-राने तुरत उनकी पूजा की।

---

* १।६।५ की टिप्पनी देखिये।

सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वावेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्रणो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥८॥
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥९॥
संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥
स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधुस्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥११॥
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो विहिख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥१२॥

८ जो इन्द्र उत्तम पदार्थके प्रतिनिधि हैं, जो समर-भूमिमें अग्रगामी हैं, जो सब उत्पन्न पदार्थोंको जानते हैं, जिन्होंने शुष्णका बध किया था, वही दूरदर्शी और गोधनके अभिलाषी इन्द्र, द्युलोकसे सम्मान करते हुए, हमें पापसे बचावें ।

९ भीतर ही भीतर गोधनकी प्राप्तिकी इच्छा करके, स्तोत्रके द्वारा अमरता प्राप्त करनेकी युक्ति करते हुए यज्ञ-कार्यमें लगे थे । इनके इस यज्ञमें यथेष्ट उपवेशन हैं । इन्होंने इस सत्यभूत यज्ञके द्वारा महीनोंको अलग करनेकी इच्छा की थी ।

१० आङ्गिरा लोगों अपने गोधनको लक्ष्य करके, देखते हुए, पहलेके उत्पन्न पुत्रकी रक्षाके लिये दूध दूहकर हृष्ट हुए थे । उनकी आनन्दध्वनि द्यावापृथिवीमें व्याप्त हुई थी । पहलेकी ही तरह वह संसारमें अवस्थित हुए थे । गायोंकी रक्षाके लिये वीर पुरुषको नियुक्त किया था ।

११ सहायताके लिये, मरुतोंके साथ, इन्द्रने वृत्रका बध किया था । वे ही पूजनीय और होम-योग्य हैं । मरुतोंके साथ गायोंका, यज्ञके लिये, दान किया था । घृत-युक्त-हव्य-धारिणी, प्रभूत-हव्य-दात्री और प्रशस्ता गौने इनके लिये स्वादुतर क्षीर आदि दिया था ।

१२ अङ्गिरा लोगोंने पालक इन्द्रके लिये महान् और दीप्तिमान् स्थान-संस्कार किया था । सुकर्म-शाली अङ्गिरा लोगोंने इन्द्रके उपयुक्त इस स्थानको विशेष रूपसे दिखा दिया था । यज्ञमें बैठकर उन लोगोंने जनयित्री द्यावापृथिवीको स्तम्भ-रूप अन्तरिक्ष द्वारा रोककर वेगवान् इन्द्रको द्युलोकमें संस्थापित किया था ।

मही यदि धिषणा शिश्नथे धात् सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३॥
मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४॥
महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वानादित् सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥
अपश्चिदेष विभ्वोदमूनाः प्रसध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७॥

---

१३ द्यावापृथिवीके परस्पर विश्लिष्ट होनेपर यदि महान् स्तुति इन्द्रदेवको तत्क्षणात् वृद्धि-प्राप्त और धारण-क्षम करे, तो इन्द्रके प्रति दोष-रहित स्तुति सङ्गत हो। फलतः इन्द्रका सारा बल स्वभाव-सिद्ध है।

१४ इन्द्र, मैं तुम्हारी, महती मित्रताके लिये, प्रार्थना करता हूँ। तुम्हारी शक्तिके लिये प्रार्थना करता हूँ। तुम वृत्र-हन्ता हो। तुम्हारे पास अनेक अश्व, वहन करनेके लिये, आते हैं। तुम विद्वान् हो। हम तुम्हें महत् सख्य, स्तोत्र और हव्य प्रदान करेंगे। इन्द्र, तुम हमारे रक्षक हो, ऐसा जानना।

१५ भली भाँति समझकर इन्द्रने मित्रोंको महान् क्षेत्र और यथेष्ट हिरण्य दान किया है। इसके अनन्तर उन्होंने उन लोगोंको गौ आदि भी दान किया है। वह दीप्तिमान् हैं। उन्होंने नेता मरुद्गणके साथ सूर्य, उषा, पृथिवी और अग्निको उत्पन्न किया है।

१६ शान्तमना इन इन्द्रने विस्तीर्ण, परस्पर सङ्गत और संसारके आनन्ददायक जलको उत्पन्न किया है। वह माधुर्य-युक्त सोम-समूहको पवित्र (जल-परिष्कारक) अथवा अग्नि, सूर्य और वायुके द्वारा शोधित करके और सारे संसारको प्रसन्न करके दिन-रात संसारको अपने व्यापारमें प्रेरित करता है।

१७ सूर्यकी महिमासे सारे पदार्थोंके धारण-कर्त्ता और यजनार्ह दिन-रात क्रमानुसार घूम रहे हैं। ऋजुगति, मित्र-भूत और कमनीय मरुद्गण शत्रुको परास्त करनेके लिये तुम्हारी शक्तिका अनुसरण करने योग्य होते हैं।

पतिर्भव वृत्रहन् सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८॥
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन् सातये धाः ॥१९॥
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन् स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षू मक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२०॥
अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृताः दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥



१८ वृत्रहन्ता इन्द्र, तुम अविनाशी, अभीष्टवर्षी और अन्नदाता हो। हमारी प्रियतम स्तुतिके स्वामी बनो। तुम महान् हो। यज्ञमें तुम जानेके अभिलाषी हो। महान् आश्रय और कल्याण-वाहिनी मैत्रीके लिये हमारे सामने आओ।

१९ इन्द्र, तुम पुरातन हो। अङ्गिरा लोगोंकी तरह मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। मैं तुम्हारी स्तुति करनेके लिये अभिनवता लाता हूँ। तुम देवरहित द्रोहियोंको मार डालते हो। इन्द्र, हमें उपभोगके योग्य धन दो।

२० इन्द्र, पवित्र जल चारों ओर फैला है। हमारे लिये अविनाशी जल-समूहके तीरको जलसे पूर्ण करो। तुम रथवाले हो। हमें शत्रुसे बचाओ। हमें शीघ्र गायोंके विजेता करो।

२१ वृत्रहन्ता और गायोंके स्वामी इन्द्र हमें गौ दान करें। कृष्णों अथवा यज्ञ-विघातक असुरोंको दीप्ति-युक्त तेजके द्वारा विनष्ट करें। उन्होंने सत्य-वचनसे अङ्गिरा लोगोंको प्रियतम गायें दान करके सारे द्वारोंको बन्द कर दिया था।

२२ इन्द्र, तुम अन्न-लाभ-कर्त्ता, युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत-ऐश्वर्य-युक्त, नेतृ-श्रेष्ठ स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, उग्र, संग्राममें शत्रु-विनाशकारी और धन-जेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाता हूँ।

३२ सूक्त

इन्द्रदेवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते ।
प्र प्रुथ्याशिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१॥
गव्या शिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥
ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३॥
त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदाममर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥४॥

१ सोमपति इन्द्र, इस माध्यन्दिन सवनके अवसरपर तुम सोम पान करो; क्योंकि यह तुम्हारा प्रिय है। हे धनवान् और ऋजीष (सिट्ठी) सोमसे युक्त इन्द्र, दोनों घोड़ोंको रथसे खोलकर और उनके जबड़ोंको घाससे पूर्ण करके इस यज्ञमें उन्हें प्रसन्न करो।

२ इन्द्र, गव्यसंयुक्त और मन्थन-सम्पन्न नूतन सोमका पान करो। तुम्हारे हर्षके लिये हम उसे दान करते हैं। स्तोता मरुतों और रुद्रोंके साथ जबतक तृप्ति न हो, तबतक सोम पान करो।

३ इन्द्र, जो मरुद्गण तुम्हारे शत्रु-शोषक तेजको बढ़ाते हैं, वही मरुद्गण तुम्हारा बल वर्द्धित करते हैं; वही मरुद्गण स्तुति करके तुम्हारी युद्ध-शक्तिको बढ़ाते हैं। वज्रहस्त, शोभन-शिरस्त्राण-युक्त इन्द्र, माध्यन्दिन सवनमें रुद्रोंके साथ सोम पान करो।

४ मरुद् लोग इन्द्रके बल हुए थे, वृत्र समझता था कि, मेरा रहस्य कोई नहीं जानता। परन्तु मरुतोंके द्वारा प्रेरित होकर इन्द्रने वृत्रका रहस्य जाना था। ये ही मरुद्गण तुम्हारे लिये शीघ्र माधुर्य युक्त उत्साह-वाक्य बोले थे।

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥६॥

यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥७॥

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥८॥

अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥९॥

५ इन्द्र, मनुके यज्ञकी तरह तुम मेरे इस यज्ञका सेवन करते हुए शाश्वत बलके लिये सोम पान करो। हर्यश्व, यज्ञ-योग्य मरुतोंके साथ तुम आओ। गमनशील मरुतोंके साथ अन्तरीक्षसे जल प्रेरित करो।

६ इन्द्र, चूंकि तुम दीप्तिमान जलके आवरणकर्त्ता हो, दीप्ति शून्य और सोये हुए वृत्रको, युद्धमें, निहत किया है; इसलिये तुमने युद्ध-समयमें अश्वकी तरह जलको छोड़ दिया है।

७ फलतः हम हव्य द्वारा प्रवृद्ध और महान्, अजर और नित्यतरुण स्तोतव्य इन्द्रकी पूजा करते हैं। परिमाणशून्य, द्यावापृथिवी यज्ञार्ह इन्द्रकी महिमाको परिमित नहीं कर सकती।

८ सारे देवगण इन्द्रके कर्म—सुकृत और बहुतर यज्ञादि—की हिंसा नहीं कर सकते। इन्द्रदेव भूलोक, द्युलोक और अन्तरीक्षलोकको धारण किये हुए हैं। उनका कर्म रमणीय है। उन्होंने सूर्य और उषाको उत्पन्न किया है।

९ दौरात्म्य-शून्य इन्द्र, तुम्हारी महिमा ही वास्तविक महिमा है; क्योंकि तुम उत्पन्न होकर ही सोम पान करते हो। तुम बलवान् हो। स्वर्गादि लोक तुम्हारे तेजका निवारण नहीं कर सकते; दिन, मास और वर्ष भी नहीं निवारण कर सकते।

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०॥
अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः ॥११॥
यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२॥
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३॥
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४॥

---

१० इन्द्र, उत्पन्न होनेके साथ ही तुमने सर्वोच्च स्वर्गप्रदेशमें रहकर तुरत आनन्द-प्राप्तिके लिये सोम पान किया था। जिस समय तुम द्यावापृथिवीमें अनुप्रविष्ट हुए हो, उसी समय तुम प्राचीन-सृष्टिके विधाता हुए हो।

११ इन्द्र, तुमसे अनेक उत्पन्न हुए हैं। जो अहि अपनेको बलवान् समझकर जलको परिवेष्टित करते हुए अवस्थिति करता था, उसी अहिको प्रवृद्ध होकर तुमने विनष्ट किया है। परन्तु जिस समय तुम पृथिवीको एक कटिमें छिपाकर अवस्थान करते हो, उस समय स्वर्ग तुम्हारी महिमाकी सीमा नहीं कर सकता।

१२ इन्द्र, हमारा यज्ञ तुम्हारी वृद्धि करता है। जिस कार्यमें सोम अभिषुत होता है, वह तुम्हारा प्रिय है। हे यज्ञ-योग्य, यज्ञके लिये अपने यजमानकी तुम रक्षा करो। अहिका विनाश करनेके लिये यह यज्ञ तुम्हारे वज्रको दृढ़ करे।

१३ पुरातन, मध्यतन और अधुनातन स्तोत्र द्वारा जो इन्द्र वर्द्धित होते हैं, उन्हीं इन्द्रको यजमान, रक्षक यज्ञके द्वारा, अपने सामने ले आता है; नये धनके लिये उन्हें आवर्त्तित करता है।

१४ जभी मैं मन-ही-मन इन्द्रकी स्तुति करनेकी इच्छा करता हूँ, तभी स्तुति करता हूँ। मैं दूरवर्ती अशुभ दिनके पहले ही इनकी स्तुति करता हूँ। इन्द्र हमें दुःखके पार ले जायँ। इसीलिये दोनों तटोंके रहनेवाले लोग जैसे नौकारोहीको पुकारते हैं, वैसे ही हमारे मातृ-पितृ-कुलोंके लोग इन्द्रको पुकारते हैं।

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥
न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परिषन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृह्ळं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१७॥

३३ सूक्त

४,६,८ और १० मन्त्रोंके नदी ऋषि है, अवशिष्टके विश्वामित्र हैं ।

अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१॥

१५ इन्द्रका कलस पूर्ण हुआ है; पानार्थ स्वाहा शब्दका उच्चारण हुआ है । जैसे जल-सेक्ता जल-पात्रमें जल-सेक करता है, वैसे ही मैं सोमका सेचन करता हूँ । सुस्वादु सोम, प्रदक्षिण करता हुआ, इन्द्रके सम्मुख, उनकी प्रसन्नताके लिये, गमन करता है ।

१६ बहुलोकाहूत इन्द्र, गम्भीर सिन्धु तुम्हारा निवारण नहीं कर सकता । उसके चारो ओर वर्त्त-मान उपसागर तुम्हारा निवारण नहीं कर सकता; क्योंकि, बन्धुओं द्वारा इस प्रकार प्रार्थित होकर तुमने अति प्रबल गव्य उर्व (बड़वानल या अवरोधक वृत्र) का निवारण कर डाला है ।

१७ इन्द्र, तुम अन्न-प्रापक, युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुति-श्रवणकर्त्ता, उग्र, संग्राममें शत्रु-विनाशी और धनजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

---

१ जलप्रवाहवती विपाशा [व्यास] औ शुतुद्री [सतलज] नामकी दो नदियां पर्वतकी गोदसे सागरसङ्गमाभिलाषिणी होकर घोड़सालसे विमुक्त घोड़ियोंकी तरह स्पर्द्धा करती हुई, दो गायोंके समान सुशोभित होकर वत्सलेहाभिलाषिणी हो, गायोंकी तरह वेगसे समुद्रकी तरफ जाती हैं ।

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे उर्मिभिः पिन्वमाने अन्यावामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२॥
अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३॥
एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४॥
रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥
इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवो नयत् सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

---

२ नदीद्वय, तुम्हें इन्द्र प्रेरित करते हैं। तुम उनकी प्रार्थना सुनती हो। दो रथियोंकी तरह समुद्रकी ओर जाती हो। तुम एक साथ प्रवाहित होकर, तरङ्ग द्वारा वर्द्धित होकर, परस्पर आस-पास जाती हुई सुशोभित हो रही हो।

३ मातृ-तुल्य शुतुद्री नदीके पास उपस्थित हुआ हूँ, परम सौभाग्यवती विपाशाके पास उपस्थित हुआ हूँ। ये दोनों वत्सको चाटनेकी इच्छावाली गायोंकी तरह एक स्थानकी ओर जाती हैं।

४ हम (दोनों नदियाँ) इस जलसे धुल कर देवकृत स्थानके सामने जाती है। हमारे गमनका उद्योग बन्द होनेवाला नहीं है। किस लिये यह वत्स हम दोनों नदियोंको पुकारता है।

५ जलवती नदियो, मेरे (विश्वामित्रके) सोम-सम्पादक वचनके लिये एक क्षणके लिये, गमनसे विरत होओ। मैं कुशिकका पुत्र हूँ; प्रसन्नताके लिये महती स्तुतिके द्वारा नदियोंको, अपने उद्देशकी सिद्धिके लिये बुलाता हूँ।

६ नदियोंके परिवेरक वृत्रको मारकर वज्रबाहु इन्द्रने हम दोनों नदियोंको खोदा है। जगत्प्रेरक, सुहस्त और द्युतिमान् इन्द्रने हमें प्रेरित किया है। इन्द्रकी आज्ञासे हम प्रभूत होकर जाती हैं।

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥७॥
एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥
ओषु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
निषू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९॥
आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥
यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

---

७ इन्द्रने जिस अहि (वृत्र)का विदारण किया था, उनके उस वीर कार्यका सदा कीर्तन करना चाहिये। इन्द्रने चारों ओर आसीन अवरोधक लोगोंको वज्रसे विनष्ट किया था। गमनाभिलाषी जल आया था ।

८ हे स्तोता, तुम यह जो वाक्य-घोषणा करते हो, उसे नहीं भूलना। भविष्यत् यज्ञ-दिनमें मन्त्र-रचना करके तुम हमारी सेवा करो। हम (दोनों नदियाँ) तुम्हें नमस्कार करती हैं। हमें पुरुषकी तरह प्रगल्भ नहीं करना।

९ हे भगिनीभूत नदीद्वय, मैं (विश्वामित्र) स्तुति करता हूँ; सुनो। मैं दूर देशसे रथ और अश्व लेकर आता हूँ। तुम निम्नस्थ बनो, ताकि मैं पार हो जाऊँ। नदीद्वय, स्रोतवत् जलके साथ रथचक्रके अधोदेशमें गमन करो।

१० स्तोता, हमने (दो नदियोंने) तुम्हारी सारी बातें सुनीं । तुम दूरसे आये हो; इसलिये रथ और शकटके साथ गमन करो। जैसे पुत्रको स्तन-पान करानेके लिये माता और जैसे मनुष्यको आलिङ्गन करनेके लिये युवती स्त्री, अवनत होती हैं, वैसे ही हम भी तुम्हारे लिये अवनत होती हैं ।

११ नदीद्वय, चूँकि भरत-कुलोत्पन्न तुम्हें पार करेंगे, चूँकि पार जानेके इच्छुक भरतवंशीय लोग इन्द्र द्वारा प्रेरित और तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर पार होंगे, चूँकि वे लोग पार होनेकी चेष्टा करते हैं और तुम्हारी अनुमति पा चुके हैं; इसलिये मैं (विश्वामित्र) सर्वत्र तुम्हारी स्तुति करूँगा। तुम यज्ञार्ह हो।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्तविप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥
उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥



३४ सूक्त

इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥१॥

१२ गोधनाभिलाषी भरतवंशीय लोग पार हो गये; ब्राह्मण लोग नदियोंकी सुन्दर स्तुति करते हैं। तुम अन्न-कारिणी और धन-समन्विता होकर छोटी-छोटी नदियोंको तृप्त और परिपूर्ण करो तथा शीघ्र गमन करो।

१३ नदीद्वय, तुम्हारी तरङ्ग इस प्रकार प्रवाहित हो कि, युगकील + उसके ऊपर रहे; तुम लोग रज्जुको नहीं छूना। † पाप-शून्या, कल्याण-कारिणी और अनिनन्दनीया विपाशा और शुतुद्री इस समय न बढ़ें। *

---

१ पुरभेदी, महिमावाले और धनशाली इन्द्रने शत्रुओंको मारते हुए, तेजके द्वारा, दासको जीता है। स्तोत्र द्वारा आकृष्ट, वर्द्धित-शरीर और बहु-अन्नधारी इन्द्रने द्यावापृथिवीको परिपूर्ण किया है।

+ The pin of the yoke.—wilson.

† Leave the traces full.—wilson.

* पिजवान राजाके पुत्र सुदासके पुरोहित विश्वामित्र एक बार पौरोहित्य कर्मसे बहुतसा धन लेकर व्यास और सतलज या विपाशा और शुतुद्री नदियोंके संगमस्थलपर पहुँचे। अगाध-गम्भीर नदियोंकी, विश्वामित्रने, प्रथम तीन मंत्रोंसे, स्तुति की। पीछे नदियोंने विश्वामित्रको उत्तर दिया और अन्तको जल घटा कर उन्हें पार आनेको कहा।—सायण।

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥३॥
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आविवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥
महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान् संपिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥

२ इन्द्र, तुम पूजनीय और बलवान् हो। तुम्हें अलंकृत करके, अन्नके लिये, तुम्हारी प्रेरित स्तुतिका उच्चारण करता हूँ। तुम मनुष्यों और देवोंके अग्रगामी हो।

३ इन्द्र, तुम्हारा कर्म प्रसिद्ध है। तुमने वृत्रको रोका था। शत्रुओंके आक्रमण-निवारक इन्द्रने मायावियोंका, विशेष रूपसे, वध किया था। शत्रुवधाभिलाषी इन्द्रने वनमें छिपे स्कन्ध-हीन शत्रुका विनाश किया है। उन्होंने राम्यों या रात्रियोंकी गायोंको आविष्कृत किया है।

४ स्वर्गदाता इन्द्रने दिनको उत्पन्न करके युद्धाभिलाषी अङ्गिरा लोगोंके साथ परकीय सेनाका अभिभव करके पराहत किया है। मनुष्यके लिये दिनके पताका-स्वरूप सूर्यको प्रदीप्त किया था। महा-युद्धके लिये ज्योति प्रकट हुई।

५ बहुत धनका ग्रहण करके बाधादात्री और वर्द्धमाना शत्रु-सेनाके बीच इन्द्र पैठे। स्तोताके लिये, उन्होंने, उषाको चैतन्य प्रदान किया और उनके शुक्रवर्ण तेजको वर्द्धित किया।

६ इन्द्र महान् हैं। उपासक लोग उनके प्रभूत सत्कर्मोंकी प्रशंसा करते हैं। बल द्वारा वह बल-वानोंको चूर-चूर करते हैं। पराभवकर्त्तामें व्याप्तसम्पन्न इन्द्रने, माया द्वारा, दस्युओंको चूर्ण किया है।

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद बलं नुनुदे विवाचोथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

---

७ देवोंके पति और मानवोंके वर-प्रदाता इन्द्रने महायुद्धमें धन प्राप्त करके स्तोताओंको दान दिया। मेधावी स्तोता लोग यजमानके घरमें मन्त्र द्वारा इन्द्रकी कीर्तिकी प्रशंसा करते हैं।

८ स्तोता लोग सबके जेता, वरणीय, जलप्रद, स्वर्ग और स्वर्गीय जलके स्वामी इन्द्रके आनन्दमें आनन्दित होते हैं। इन्द्रने पृथिवी, अन्तरीक्ष और स्वर्गको दान कर दिया है।

९ इन्द्रने अश्वका दान किया है, सूर्यका दान किया है, अनेक लोगोंके उपभोगके योग्य गोधन दान किया है, सुवर्णमय धन दान किया है तथा दस्युओंका बध करके आर्यवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जातियों) की रक्षा की है।

१० इन्द्रने ओषधि प्रदान की है, दिन दिया है, वनस्पति और अन्तरीक्ष प्रदान किया है। उन्होंने मेघको भिन्न किया है, विरोधियोंका बध किया है, जो युद्ध करने सामने आये, उनका बध किया है।

११ इन्द्र, तुम अन्न-प्राप्त-कर्त्ता हो, युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध हो। तुम धनवान् हो, प्रभूत-वैभव-सम्पन्न हो, नेतृश्रेष्ठ हो, स्तुति-श्रोता हो, उग्र हो, संग्राममें अरि-मर्दन और धन-जेता हो। आश्रय प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

३५ सूक्त

इन्द्र-देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

तिष्ठा हरी रथ आयुज्यमाना याहि वायुर्णनियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥
उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद्यथा संभृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमावहात इन्द्रम् ॥२॥
उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमवत्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उपयाहि सोमम् ॥४॥

---

१ इन्द्र, हरि नामके दोनों अश्व रथमें योजित किये जाते हैं। जैसे वायु अपने नियुत नामक अश्वोंकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही तुम भी इन दोनोंकी कुछ क्षण प्रतीक्षा करके हमारे सामने आओ। हमारा दिया सोम पीओ। हम स्वाहा शब्दका उच्चारण करके, तुम्हारे आनन्दके लिये, सोम दान करते हैं।

२ अनेक लोकोंमें आहूत इन्द्रके शीघ्र गमनके लिये रथके अग्र भागमें द्रुतगामी अश्वद्वयको हम संयोजित करते हैं। विधिवत् अनुष्ठित इस यज्ञमें अश्वद्वय इन्द्रको ले आवें।

३ अभीष्टवर्षक और अन्नवान् इन्द्र, अपने वीर्यवान् और शत्रुभयत्राता अश्वद्वयको हमारे निकट ले आओ। तुम इस यजमानकी रक्षा करो। रक्तवर्ण हरि नामके अश्वद्वयको इस देव-यजन स्थानमें छोड़ दो। वे खावें। तुम समान रूपवाले उपयुक्त धान्य अथवा भूँजे हुए जौका भक्षण करो।

४ इन्द्र, मन्त्र द्वारा तुम्हारे अश्वद्वय योजित होते हैं तथा युद्धमें जिनकी समान प्रसिद्धि है, उन्हीं दोनों अश्वोंको मन्त्र द्वारा हम योजित करते हैं। इन्द्र, तुम विद्वान् हो। तुम समझकर सुदृढ़ और सुखकर रथपर आरोहण करके सोमके पास आओ।

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥
तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥६॥
स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृताधाना अत्तवे ते हरिभ्याम्।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥७॥
इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान् पथ्या अनु स्वाः ॥८॥
याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्द्धन्नभवन् गणस्ते।
तेभिरेतं सजोषा वावशानोऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९॥
इन्द्र पिब स्वधया चित् सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०॥

५ इन्द्र, दूसरे यजमान तुम्हारे वीर्यवान् और कमनीय पृष्ठोंवाले हरिद्वयको आनन्दित करें हम अभिषुत सोमके द्वारा, यथेष्ट रीतिसे, तुम्हारी तृप्ति करेंगे। तुम अनेक यजमानोंको अतिक्रम करके शीघ्र आओ।

६ यह सोम तुम्हारा है। इसके सामने आओ। प्रसन्न-वदन होकर इस प्रभूत सोमका पान करो। इन्द्र, इस यज्ञमें कुशके ऊपर बैठकर इस सोमको जठरमें रखो।

७ इन्द्र, तुम्हारे लिये कुश फैलाये गये हैं। सोम अभिषुत हुआ है तुम्हारे अश्वद्वयके भोजनके लिये धान्य तैयार है तुम्हारा आसन कुश है; अनेक लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम अभीष्टवर्षी हो; तुम्हारे पास मरुत्सेना है। तुम्हारे लिये हव्य विस्तृत है।

८ इन्द्र, तुम्हारे लिये अभ्रगण, प्रस्तर और जलने इस सोम-दुग्धको मधुररस-विशिष्ट किया है। दर्शनीय और विद्वान् इन्द्र, प्रसन्न वदनसे अपनी हितकर स्तुतिको जान करके सोम पान करो।

९ इन्द्र, सोम-पान-समयमें जिन मरुतोंको तुम सम्मानान्वित करते हो, युद्धमें जो तुम्हें वर्द्धित करते और तुम्हारे सहायक होते हैं, उन्हीं सब मरुतोंके साथ सोमपानाभिलाषी होकर अग्निकी जिह्वा द्वारा सोम पान करो।

१० यजनीय इन्द्र, स्वधा अथवा अग्निकी जिह्वा द्वारा अभिषुत सोम पान करो। शक्र, अध्वर्युके हाथसे प्रदत्त सोम अथवा होताके भजनीय हव्यका सेवन करो।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

३६ सूक्त

इन्द्र देवता । केवल १० म ऋचाके अंगिराके वंशज घोर ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

इमामूषु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्द्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतोभूत् ॥१॥
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान् प्रतिषू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥२॥
पिबा वर्द्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
याथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३॥

११ इन्द्र, तुम अन्न-प्रापक युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध हो । तुम धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रोता, उग्र, संग्राममें शत्रु-हन्ता और धनजेता हो । आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

---

१ इन्द्र, धन-दानके लिये मरुतोंके साथ सदा आकर विशेष रूपसे प्रस्तुत सोमको धारण करो । जो इन्द्र विशाल कर्मके कारण प्रसिद्ध हैं, वे प्रत्येक सोमाभिषवमें पुष्टिकर हव्य द्वारा वर्द्धित हुए हैं ।

२ पूर्व समयमें इन्द्रको लक्ष्य करके सोम दिया गया था, जिससे इन्द्र कालात्मक, दीप्त और महान् हुए हैं । इन्द्र, तुम इस प्रदत्त सोमको ग्रहण करो । स्वर्गादि फल देनेवाले और प्रस्तर द्वारा अभिषुत सोमका पान करो ।

३ इन्द्र, पान करो और परिपुष्ट बनो । तुम्हारे लिये प्राचीन और नवीन सोम अभिषुत हुआ है । इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो । जैसे तुमने प्राचीन सोमका पान किया था, वैसे ही इस समयमें नूतन सोमका पान करो ।

महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत् सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥४॥
महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्रजायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५॥
प्रयत् सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान् यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६॥
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥
ह्रदाइव कुक्षयः सोमधाना समी विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥८॥
आ तू भर माकिरेतत् परिष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिम् वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥९॥

४ जो इन्द्र अतीव शक्तिशाली हैं, जो समर-भूमिमें शत्रुओंके विजेता हैं, जो शत्रुओंके आह्वानकर्त्ता हैं, उन्हीं इन्द्रका उग्र बल और दुर्द्धर्ष तेज सर्वत्र विस्तृत हो रहा है। जिस समय हर्यश्व इन्द्रको सोमरस हृष्ट करता है, उस समय पृथिवी और स्वर्ग भी इन्द्रको धारण नहीं कर सकते।

५ बली, उग्र, अभीष्ट-वर्षक और दाता इन्द्र, वीर कीर्तिके लिये, प्रवृद्ध हुए हैं स्तोत्रके साथ मिल गये हैं। इन्द्रकी सब गायोंने दुग्धदायी होकर जन्म लिया है। इन्द्रका दान बहुत है।

६ जिस समय नदियाँ रथोंका अनुकरण करके दूरस्थ समुद्रकी ओर जाती हैं, उस समय रथोंकी भाँति जल भागता है। ठीक इसी भाँति वरणीय इन्द्र इस अन्तरीक्षसे अभिषुत लता-खण्ड-रूप अल्प सोम की ओर दौड़ते हैं।

७ समुद्र सङ्गमाभिलाषिणी नदियाँ जैसे समुद्रको पूर्ण करती हैं, वैसे ही अध्वर्यु लोग इन्द्रके लिये अभिषुत सोमका सम्पादन करते हुए हस्त द्वारा लताका दोहन करते और प्रस्तर द्वारा धारारूप मधुर सोमरसका शोधन करते हैं।

८ इन्द्रका उदर तालाबके समान सोमका आधार है। वह एक ही साथ अनेक यज्ञोंको व्याप्त करते है। इन्द्रने प्रथम भक्षणीय सोम आदिका भक्षण किया है; अनन्तर वृत्रका निहत करके देवोंको भाग दे दिया है।

९ इन्द्र, शीघ्र धन दो। तुम्हारे इस धनको कौन रोक सकता हैं। हम तुम्हे धनाधिपति जानते हैं। तुम्हारे पास जो पूजनीय धन है, उसे हमें दो।

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥



३७ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वावर्तयामसि ॥१॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥

१० इन्द्र, ऋजीषी (उच्छिष्ट) सोमवाले इन्द्र, तुम सबके वरणीय प्रभूत धन दो । जीनेके लिये हमें सौ वर्ष दो । सुन्दर जबड़ोंवाले इन्द्र, हमें बहु वीर पुत्र दो ।

११ इन्द्र, तुम अन्नप्रापक यज्ञमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध हो । तुम धनवान, प्रभूत वैभववाले, नेतृवर, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, प्रचण्ड, युद्धमें शत्रु-नाशक और धन-विजेता हो । आश्रय पानेके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं ।

---

१ इन्द्र, वृत्र-विनाशक बलकी प्राप्ति और शत्रु-सेनाके पराभवके लिये तुम्हें हम प्रवर्त्तित करते हैं ।

२ शतक्रतु इन्द्र, तुम्हारे मन और चक्षुको प्रसन्न करके स्तोता लोग हमारे सामने तुम्हें प्रेरित करें ।

३ शतक्रतु इन्द्र, अभिमानी शत्रुओंके पराभवकर्त्ता युद्धमें हम सारी स्तुतियोंसे तुम्हारा नाम-कीर्त्तन करेंगे ।

४ इन्द्र सबकी स्तुतिके योग्य, असीम तेजवाले और मनुष्योंके स्वामी हैं । हम उनकी स्तुति करते हैं ।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुपब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥५॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६॥

द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्रसोमं शतक्रतो ॥८॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आवृणे ॥९॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।

उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥१०॥

अर्वावतो न आगह्यथो शक्र परावतः ।

उलोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आगहि ॥११॥



५ इन्द्र, वृत्रका विनाश करने और युद्धमें धन-प्राप्तिके लिये बहुतों द्वारा आहूत इन्द्रका हम आह्वान करते हैं।

६ शतक्रतु इन्द्र, युद्धमें तुम शत्रुओंके पराभव-कर्त्ता हो। हम, वृत्रके विनाशके लिये, तुम्हारी प्रार्थना करते हैं।

७ इन्द्र, जो धन, युद्ध, वीर-निचय और बलमें हमारे अभिमानी शत्रु हैं, उन्हें पराजित करो।

८ शतक्रतु, हमारे आश्रय-लाभके लिये अत्यन्त बलवान्, दीप्तियुक्त और स्वप्न-निवारक सोम पान करो।

९ शतक्रतु, पञ्च जनोंमें जो सब इन्द्रियाँ है, उनको हम तुम्हारी ही समझते हैं।

१० इन्द्र, प्रभूत अन्न तुम्हारे निकट जाय। शत्रुओंका दुर्द्धर्ष अन्न हमें प्रदान करो। हम तुम्हारे उत्कृष्ट बलको वर्द्धित करेंगे।

११ शक्र इन्द्र, निकट अथवा दूर देशसे हमारे पास आओ। वज्रवान् इन्द्र, तुम्हारा जो उत्कृष्ट स्थान है, वहींसे इस यज्ञमें आओ।

३८ सूक्त

इन्द्र और इन्द्रावरुण देवता। विश्वामित्र-गोत्रीय प्रजापति अथवा वाच-गोत्रीय प्रजापति अथवा विश्वामित्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणि मर्मृशत पराणि कवीँरिच्छामि संदृशे सुमेधाः॥१॥
इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम्।
इमा उते प्रण्योवर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन्॥२॥
निषीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
संमात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः॥३॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ॥४॥

---

१ स्तोता, त्वष्टाकी तरह, इन्द्रकी स्तुतिको जागरित करो। उत्कृष्ट, भारवाही और द्रुतगामी अश्वकी तरह कर्ममें प्रवृत्त होकर तथा इन्द्रके प्रिय कर्मके विषयपर चिन्ता कर मैं, मेधावान् होते हुए, स्वर्गगत कवियोंको देखनेकी इच्छा करता हूँ।

२ इन्द्र, कवियोंके जन्मके सम्बन्धमें उन गुरुओंसे पूछो, जिन्होंने मनःसंयम और पुण्य कार्य द्वारा स्वर्गका निर्माण किया था। इस समय इस यज्ञमें तुम्हारे लिये प्रणीत स्तुतियाँ वृद्धिङ्गत होकर, मनकी तरह, वेगसे जाती हैं।

३ इस भूलोकमें, सर्वत्र, कवियोंने गूढ़ कर्मका निधान करके पृथिवी और स्वर्गको, बल-प्राप्तिके लिये, अललंकृत किया है। उन्होंने मात्राओं या मूलतत्त्वोंके द्वारा पृथिवी और स्वर्गका परिमाण किया है। उन्होंने परस्पर-मिलिता, विस्तीर्णा और महती द्यावापृथिवीको सङ्गत किया है और द्यावापृथिवीके बीचमें, धारणार्थ, अन्तरीक्षको स्थापित किया है।

४ सारे कवियोंने रथस्थित इन्द्रको विभूषित किया है। स्वभावतः दीप्तिमान् इन्द्र दीप्तिसे आच्छादित होकर स्थित हैं। अभीष्टवर्षी और असुर इन्द्रकी कीर्ति अद्भुत है। विश्वरूप धारण करके वह अमृतमें अवस्थित हैं।

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५॥
त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥६॥
तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७॥
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥
युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥

५ अभीष्टवर्षक, सनातन और सर्वश्रेष्ठ इन्द्रने जल-सृष्टि की है इस प्रभूत जलने उनकी पिपासाको रोका है। स्वर्गके पौत्र-स्वरूप और शोभायमान इन्द्र और वरुण द्युतिमान् यज्ञकर्त्ताकी स्तुतिसे लाभ योग्य धन, हमारे लिये, धारण करते हैं।

६ राजा इन्द्र और वरुण, व्यापक और सम्पूर्ण सवन-त्रयको इस यज्ञमें अलंकृत करो। इन्द्र, तुम यज्ञमें गये थे; क्योंकि मैंने इस यज्ञमें वायुकी तरह केश विशिष्ट गन्धर्वोंको देखा था।*

७ जो यजमान लोग अभीष्टदाता इन्द्रके लिये गौओंके भोग-योग्य हव्यको शीघ्र दुहते हैं, जिनके अनेक नाम हैं, उन्होंने नवीन असुर-बलको धारण करते हुए तथा मायाका विकाश करते हुए अपने-अपने रूपको, इन्द्रको, समर्पित किया था।

८ सूर्यकी स्वर्णमयी दीप्तिकी कोई सीमा नहीं कर सकता। इस दीप्तिके जो आश्रय हैं, वह उत्तम स्तुति द्वारा स्तुत होकर जैसे माता सन्तानका आलिङ्गन करती है, वैसे ही सर्व-व्यापक द्यावापृथिवीको आलिङ्गित करते हैं।

९ इन्द्र और वरुण, तुम दोनों प्राचीन स्तोताका कल्याण करो अर्थात उसको स्वर्गीय मङ्गल-रूप श्रेय दो। हमें चारों ओरसे बचाओ। इन्द्रकी जीभ सबको अभय प्रदान करती है। इन्द्र स्थिर हैं। सारे मायावी लोग उनकी नानाविध कीर्त्तियाँ देखते हैं।

* १।२२।१४में गन्धर्वोंका अन्तरीक्षमें निवास करना लिखा है। १।११२।३ में गन्धर्वोंका सोमरस प्रस्तुत करना लिखा है। गन्धर्वोंका ऐसा ही विवरण पुराणोंमें भी है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१०॥

३६ सूक्त

४ अनुवाक । इन्द्र देवता । ३५से ५३ सूक्ततकके विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रं मतिर्हृद आवच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१॥
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्याधीः ॥२॥
यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥३॥

१० इन्द्र, तुम अन्न लाभ कर्त्ता यज्ञमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्यसे युक्त नेतृश्रेष्ठ, स्तुति श्रवण-कर्त्ता, उग्र, युद्धमें शत्रु-संहारक और धन-विजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ इन्द्र, तुम विश्वपति हो। हृदयसे उच्चारित और स्तोताओं द्वारा सम्पादित स्तोत्र तुम्हारे सामने जाता है। तुम्हें जगाकर यज्ञमें जो स्तुति कही जाती है और जो मुझसे ही उत्पन्न है, उसे तुम जानो।

२ इन्द्र, सूर्यसे भी पहले उत्पन्न जो स्तुति यज्ञमें उच्चारित होकर तुम्हें जगाती है, वह स्तुति कल्याणकारी शुभ्र वस्त्र धारण करके हमारे पितरोंके पाससे ही आगत और सनातन है।

३ यमक-पुत्रों (अश्विनीकुमारों) की माताने इन्हें उत्पन्न किया। उनकी प्रशंसा करनेके लिये मेरी जीभका अगला भाग नाच रहा है। अन्धकार-नाशक दिनके आदिमें आगत मिथुन (जोड़ा) जन्मके साथ ही स्तुतिमें मिलता है।

नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥
सखाह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५॥
इन्द्रो मधुसम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहाहितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणो दक्षिणावान् ॥६॥
ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनुष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥८॥

४ इन्द्र, हमारे जिन पितरोंने, गोधनके लिये, युद्ध किया था, उनका पृथिवीपर, कोई भी निन्दक नहीं है। महिमा और कीर्तिवाले इन्द्रने अङ्गिरा लोगोंको समिद्ध गोवृन्द प्रदान किया था।

५ नवग्व (अङ्गिरा लोगों) के सखा इन्द्र जिस समय घुटनेके ऊपर जोर देकर गोधनकी खोजमें गये थे, उस समय अङ्गिरा लोगोंके साथ अन्धकारमें छिपे सूर्यको देख सके थे।

६ इन्द्रने प्रथम दुग्धदायी धेनुओंपर मधु सिञ्चित किया; पश्चात् चरण और खुरसे युक्त धन ले आये। उदारचेता इन्द्रने गुहामध्यस्थित, प्रच्छन्न और अन्तरीक्षमें छिपे मायावीको दाहिने हाथसे पकड़ा।

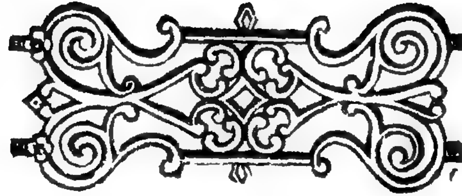
७ रात्रिसे ही उत्पन्न होकर इन्द्रने ज्योति धारण की। हम पापसे दूर भय-शून्य स्थानमें रहेंगे। हे सोमपा और सोम-पुष्ट इन्द्र, बहुस्तोम-विनाशक और स्तोत्रकारीकी इस स्तुतिका सेवन करो।

८ यज्ञके लिये सूर्य द्यावापृथिवीको प्रकाशित करें। हम प्रभूत पापसे दूर रहेंगे। वसुओ, स्तुति द्वारा तुम्हें अनुकूल किया जा सकता है। प्रभूत और समृद्ध धनको प्रभूत-दान-शील मनुष्यको प्रदान करो।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥६॥

६ इन्द्र, तुम अन्न-प्राप्ति-कर्त्ता युद्धमें उत्साह द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत-ऐश्वर्य-सम्पन्न, नेतृश्रेष्ठ, स्तुति-श्रवण-कर्त्ता, उग्र, संग्राममें शत्रु-नाशक और धन-विजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

द्वितीय अध्याय समाप्त



तृतीय अध्याय

४० सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। गायत्री छन्द।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवान विश्पते ॥३॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते। क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्। तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥
गिर्वणः पाहि नः सुतम् मधोर्धाराभि रज्यसे। इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥६॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता। पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७॥

१ हे इन्द्र, तुम अभीष्टपूरक हो। अभिषुत सोमपानके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं। मदकारक और अन्नमिश्रित सोमका तुम पान करो।

२ हे बहुजनस्तुत इन्द्र, यह अभिषुत सोम बुद्धिवर्द्धक है। इसे पीनेकी अभिलाषा प्रकट करो और इस तृप्तिकारक सोमसे जठरका सिञ्चन करो।

३ हे स्तूयमान, मरुत्पति इन्द्र, सम्पूर्ण यजनीय देवोंके साथ तुम हमारे इस हविवाले यज्ञका भली भाँति वर्द्धन करो अर्थात् हविः स्वीकार कर इस यज्ञको पूर्ण करो।

४ हे सत्पति इन्द्र, हमारे द्वारा प्रदत्त, आह्लादक, दीप्त, अभिषुत सोम तुम्हारे जठर-देशमें जा रहा है। इसे धारण करो।

५ हे इन्द्र, यह अभिषुत सोम सबके द्वारा वरणीय है। इसे तुम अपने जठरमें धारण करो। यह सब दीप्त सोमरस तुम्हारे साथ द्युलोकमें रहता है।

६ हे स्तुतिपात्र इन्द्र, मदकारक सोमकी धारासे तुम प्रसन्न होते हो; अतः हमारे अभिषुत सोमका पान करो। तुम्हारे द्वारा वर्द्धित अन्न ही हम लोगोंको प्राप्त होता है।

७ देवयाजकोंकी द्युतिमान्, क्षयरहित सोम आदि सम्पूर्ण हवि इन्द्रके अभिमुख जाती है। सोम-पान कर इन्द्र वर्द्धित होते हैं

अर्वावतो न आगहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आगहि ॥९॥

४१ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री छन्द ।

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अजुज्रन प्रातरद्रयः ॥२॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आबर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥

---

८ हे वृत्रविदारक इन्द्र, निकटतम प्रदेशसे या अत्यन्त दूर देशसे हमारी ओर आओ। हमारी इस स्तुति-वाणीका आकर ग्रहण करो।

९ हे इन्द्र, यद्यपि तुम अत्यन्त दूर देश, निकटतम प्रदेश और मध्य भाग देशमें आहूत होते हो; तथापि सोमपानके लिये इस यज्ञमें आओ।

---

१ हे वज्रधर इन्द्र, होताओंके द्वारा आहूत होनेपर हमारे पास हमारे यज्ञमें, तुम, सोमपानके लिये हरि नामक घोड़ोंके साथ, शीघ्र आओ।

२ हमारे यज्ञमें यथासमय ऋत्विक् होता, तुम्हें बुलानेके लिये, बैठे हैं। कुश परस्पर सम्बद्ध करके बिछा दिया गया है। प्रातःसवनमें सोमाभिषवके लिये प्रस्तर सब भी परस्पर सम्बद्ध किये हुए हैं, अतः सोमपानके लिये आओ।

३ हे स्तुतिलभ्य इन्द्र, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं; अतः इस यज्ञीय कुशपर बैठो। हे शूर, हमारे द्वारा प्रदत्त इस पुरोडाशका भक्षण करो।

४ हे स्तुतिपात्र और वृत्रहन्ता इन्द्र, हमारे यज्ञके तीनों सवनोंमें किये गये स्तोत्रों और उक्थों (शस्त्रों)में रमण करो।

५ महान् सोमपायी और बलपति इन्द्रको स्तुतियाँ वैसे ही चाटती हैं, जैसे गौएँ बछड़ेको चाटती हैं।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७॥

मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥

अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९॥



४२ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । गायत्री छन्द ।

उप नः सुतमागहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१॥

तमिन्द्र मदमागहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥२॥

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३॥

---

६ हे इन्द्र, प्रभूत धनदानके लिये सोमके द्वारा तुम शरीरको प्रसन्न करो; परन्तु मुझ स्तोताको निन्दित नहीं करना ।

७ हे इन्द्र, हम तुम्हारी इच्छा करते हुए हविसे युक्त होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे सबके निराशयिता इन्द्र, तुम भी हविके स्वीकरणार्थ हमारी रक्षा करो ।

८ हे हरि-(अश्व)-प्रिय, हमसे दूर देशमें घोड़ोंको रथसे मत खोलो । हमारे निकट आओ । हे सोमवान् इन्द्र, इस यज्ञमें हृष्ट बनो ।

९ हे इन्द्र, श्रमजलसे युक्त और लम्बे केशवाले घोड़े, बैठने योग्य कुशके सामने, तुम्हें सुखकर रथपर हमारे पास ले आवें ।

---

१ हे इन्द्र, हमारे दुग्धमिश्रित अभिषुत सोमके निकट आओ; क्योंकि तुम्हारा अश्व-संयुक्त रथ हमारी कामना करता है ।

२ हे इन्द्र, इस सोमके निकट आओ । यह पत्थरोंपर पीसकर निकाला गया है और कुशोंपर रखा गया है । इसका प्रचुर परिमाणमें पान करके शीघ्र तृप्त होओ ।

३ इन्द्रके लिये उच्चारित हमारी यह स्तुति-वाणी इन्द्रको, सोमपानार्थ बुलानेके लिये इस यज्ञ-देशसे इन्द्रके निकट जाय ।

इन्द्र सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥
इन्द्र सोमाः सुता इमेतान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५॥
विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रन्तु ते हृदि ॥८॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥

४३ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ याह्यर्वाङुपबन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया विमुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१॥

---

४ स्तोत्रों और उक्थों द्वारा सोमपानके लिये यज्ञमें हम इन्द्रको बुलाते हैं । बहुवार आहूत इन्द्र यज्ञमें आवें ।

५ हे शतक्रतु इन्द्र, तुम्हारे लिये सोम तैयार है, इसे जठरमें धारण करो । तुम अन्न-धन हो ।

६ हे कवि, युद्धमें तुम शत्रुओंके अभिभव-कर्त्ता और धनजेता हो । हम तुम्हें ऐसा ही जानते हैं; अतएव हम तुमसे धनकी याचना करते हैं ।

७ हे इन्द्र, हमारे इस यज्ञमें आकर गव्य-मिश्रित तथा यव-मिश्रित अभिषुत सोमका प्रीवा द्वारा पान करो ।

८ हे इन्द्र, तुम्हारे पीनेके लिये ही इस अभिषुत सोमको हम तुम्हारे जठरमें प्रेरित करते हैं। यह सोम तुम्हारे हृदयमें तृप्तकर हो ।

९ हे पुरातन इन्द्र, हम कुशिक-वंशोत्पन्न तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेकी इच्छा करते हुए, अभिषुत सोमपानके लिये स्तुति-वचनों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं ।

—

१ हे इन्द्र, जूएवाले रथपर चढ़कर तुम हमारे निकट आओ । यह सोम प्राचीन कालसे ही तुम्हारे उद्देशसे प्रस्तुत है । तुम अपने प्रियतम सखास्वरूप अश्वको कुशके निकट खोलो। ये ऋत्विक् सोमपानके लिये तुम्हें बुला रहे हैं ।

आयाहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उपनो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥
आ नो यज्ञं नमो वृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३॥
आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४॥
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मेवस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥५॥
आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६॥

---

२ हे स्वामी इन्द्र, तुम समस्त पुरातन प्रजाका अतिक्रमण करके आओ। घोड़ोंके साथ यहाँ आकर सोमपान करो, यही हमारी प्रार्थना है। स्तोताओंके द्वारा प्रयुक्त सख्यभिलाषिणी स्तुतियाँ तुम्हारा आह्वान कर रही हैं।

३ हे द्योतमान इन्द्र, हमारे अन्नवर्द्धक यज्ञमें, घोड़ोंके साथ, तुम शीघ्र आओ। घृतसहित अन्नरूप हवि लेकर हम सोमपान करनेके स्थानमें तुम्हारा, स्तुति द्वारा, प्रभूत आह्वान कर रहे हैं।

४ हे इन्द्र, सेचनसमर्थ, सुन्दर धुरा और शोभन अङ्गवाले, सखास्वरूप ये दोनों घोड़े तुम्हें यज्ञभूमिमें रथपर ले आते हैं। भूँजे जौसे युक्त यज्ञकी सेवा करते हुए सखा स्वरूप इन्द्र हम स्तोताओंकी स्तुतियाँ सुनें।

५ हे इन्द्र, मुझे लोगोंका रक्षक बनाओ। हे मघवन्, हे सोमवान् इन्द्र, मुझे सबका स्वामी बनाओ। मुझे अतीन्द्रियद्रष्टा (ऋषि) बनाओ तथा अभिषुत सोमका पानकर्त्ता बनाओ और मुझे अक्षय धन प्रदान करो।

६ हे इन्द्र, महान् और रथमें संयुक्त हरि नामक मत्त घोड़े तुम्हें हमारे अभिमुख ले आवें। कामनाओंके वर्षक इन्द्रके अश्व शत्रुओंके विनाशक हैं। इन्द्रके हाथोंसे संस्पृष्ट होनेपर वे घोड़े आकाशमार्गसे अभिमुख आते हुए और दिशाओंको द्विधा करते हुए गमन करते हैं।

इन्द्र पिब वृष धूतस्य वृष्ण आयन्ते श्येन उसते जभार।
यस्य मदेच्यावयसि प्रकृष्टीर्यस्य मदे अपगोत्रा ववर्थ ॥७॥
शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥८॥



४४ सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। बृहती छन्द।

अयन्ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आगह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१॥
हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः
विद्वाँश्चिकित्वान् हर्यश्व वर्ध स इन्द्र विश्वा अभिश्रियः ॥२॥

७ हे इन्द्र, तुम सोमाभिलाषी हो। तुम अभीष्टफलदायक, और प्रस्तर द्वारा अभिषुत सोमका पान करो। सुपर्णपक्षी तुम्हारे लिये सोमको लाया है। सोमपानजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर तुम शत्रुभूत मनुष्यादिको पातित करते हो एवं सोमजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर तुम वर्षा ऋतुमें मेघोंको अपावृत करते हो।

८ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान् प्रभूत, ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवण-कर्त्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रयप्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ हे इन्द्र, पत्थरों द्वारा अभिषुत, प्रीतिवर्द्धक, कमनीय सोम तुम्हारे लिये हो। हरिनामक घोड़ोंसे युक्त, हरिद्वर्ण रथपर तुम अधिष्ठान करो और हमारे अभिमुख आगमन करो।

२ हे इन्द्र, सोमाभिलाषी होकर तुम उषाकी अर्चना करते हो तथा सोमाभिलाषी होकर तुम सूर्यको भी प्रदीप्त करते हो। हे हरिनामक घोड़ोंवाले, तुम विद्वान् हो, हमारे मनोभिलाषके ज्ञाता हो तथा अभिमतफल-प्रदानसे तुम हमारी सम्पूर्ण सम्पत्तिको परिवर्द्धित करते हो।

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरिभोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत ॥३॥
जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमाभाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४॥
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५॥

४५ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । बृहती छन्द ।

आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मात्वा केचिन्नियमन्वि न पाशिनोति धन्वेवताँ इहि ॥१॥

---

३ हरिद्वर्ण रश्मिवाले द्युलोकका तथा ओषधियोंसे हरिद्वर्णवाली पृथिवीका, इन्द्रने, धारण किया है। हरिद्वर्णवाली द्यावापृथिवीके मध्यमें अपने घोड़ोंके लिये इन्द्र प्रभूत भोजन प्राप्त करते हैं। इन्द्र इसी द्यावापृथिवीके मध्यमें विचरण करते हैं।

४ कामनाओंके पूरक, हरिद्वर्णवाले, इन्द्र जन्मग्रहण करते ही सम्पूर्ण दीप्तिमान् लोकोंको प्रकाशित करते हैं। हरिनामक घोड़ोंवाले इन्द्र हाथोंमें हरिद्वर्ण आयुध धारण करते हैं तथा शत्रुओंके प्राणसंहारक वज्र धारण करते हैं।

५ इन्द्रने कमनीय, शुभ्र, क्षीरादिके द्वारा व्याप्त होनेके कारण शुभ्र, वेगवान् और प्रस्तरों द्वारा अभिषुत सोमको अपावृत किया है—आवरणरहित कर दिया है। पणियों द्वारा अपहृत गौओंके इन्द्रने अश्वयुक्त होकर गुहासे बाहर निकाला है।

---

१ हे इन्द्र, मादक और मयूरोंके रोमों (पिच्छों)के समान रोमोंसे युक्त घोड़ोंके साथ तुम इस यज्ञमें आओ। जैसे उड़ते पक्षीको व्याध फाँस रखते हैं, वैसे कोई भी तुम्हारे मार्गमें प्रतिबन्धक न हो। पथिक मरुभूमिको जैसे उल्लङ्घित कर जाते हैं, वैसे ही तुम भी इन सकल बाधाओंका अतिक्रमण करके हमारे यज्ञमें शीघ्र आओ।

वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हाचिदारुजः ॥२॥
गंभीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा हृदं कुल्या इवाशत ॥३॥
आ नस्तुजं रयिं भराशं न प्रति जानते ।
वृक्षं पक्वं फलमंकीव धूनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥४॥
स्वयुरिन्द्र स्वरालसि स्मदिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवनः सुश्रवस्तमः ॥५॥



२ इन्द्र वृत्रहन्ता हैं। ये मेघोंको विदीर्ण करके जलका प्रेरण करते हैं। इन्होंने शत्रुपुरीको विदीर्ण किया है। इन्द्रने हमारे सम्मुख दोनों घोड़ोंको चलानेके लिये रथपर आरोहण किया है। इन्द्रने बलवान् शत्रुओंको नष्ट किया है।

३ हे इन्द्र, साधु गोपगण जैसे गौओंको यव आदि खाद्य पदार्थोंसे पुष्ट करते है, महावकाश समुद्रको जिस प्रकार तुम जल द्वारा पुष्ट करते हो, वैसे ही यज्ञ करनेवाले इस यजमानको भी तुम अभिमत-फल-प्रदानसे सन्तुष्ट करो। धेनुगण जैसे तृणादिको और छोटी सरितायें जैसे महाजलाशयको प्राप्त करती हैं, वैसे ही यज्ञीय सोम तुम्हें प्राप्त करता है।

४ हे इन्द्र, जैसे व्यवहारज्ञ पुत्रको पिता अपने धनका भाग दे देता है, वैसे ही शत्रुओंको परास्त करनेवाला, धनवान् पुत्र हमें दो। पके फलोंके लिये जैसे अङ्कुश (लग्गी) वृक्षको चालित कर देता है, वैसे ही तुम हमारी इच्छाको पूर्ण करनेवाला धन दो।

५ हे इन्द्र, तुम धनवान् हो, स्वर्गके राजा हो, सुवचन हो और प्रभूत कीर्तिवाले हो। हे बहु-जनस्तुत, तुम अपने बलसे वर्द्धमान होकर हमारे लिये अतिशय शोभन अन्नवाले होओ।

४६ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि ।

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥१॥
महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्रसहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥२॥
प्र मात्राभीरिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥३॥
उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आविशन्ति ॥४॥
यं सोममिन्द्र पृथिवी द्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५॥



१ हे इन्द्र, तुम युद्ध करनेवाले अभिमत-फलदाता, धनोंके स्वामी, सामर्थ्यवान्, नितान्त तरुण, चिरन्तन, शत्रुओंके पराजित-कर्ता, जरारहित, वज्रधारी और तीनों लोकोंमें विश्रुत हो। तुम्हारा वीर्य महान् है।

२ हे पूजनीय उग्र इन्द्र, तुम महान् हो। तुम अपने धनको पार ले जाते हो। पराक्रमसे शत्रुओंको तुम अभिभूत करते हो। तुम सम्पूर्ण संसारके एक मात्र राजा हो। तुम शत्रुओंका संहार करो और साधुचरित जनोंको स्थापित करो।

३ दीप्यमान और सब प्रकारसे अपरिमित, सोमवान् इन्द्र पर्वतोंसे भी श्रेष्ठ हैं, बलमें देवताओंसे भी अधिक हैं, द्यावापृथिवीसे भी अधिक हैं तथा विस्तीर्ण, महान् अन्तरीक्षसे भी श्रेष्ठ हैं।

४ हे इन्द्र, तुम महान् हो; अत एव गभीर हो तथा स्वभावसे ही शत्रुओंके लिये भयङ्कर हो। तुम सर्वत्र व्याप्त हो, स्तोताओंके रक्षक हो। नदियाँ जैसे समुद्रके अभिमुख गमन करती हैं, वैसे ही यह पूर्वकालिक अभिषुत सोम इन्द्रके अभिमुख गमन करे।

५ हे इन्द्र, माता जिस प्रकार गर्भ धारण करती है, उसी प्रकार द्यावापृथिवी तुम्हारी कामनासे सोमको धारण करती हैं। हे कामनाओंके पूरक, उसी सोमको अध्वर्यु लोग तुम्हारे लिये प्रेरित करते हैं और उसे तुम्हारे पीनेके लिये शुद्ध करते हैं।

४७ सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१॥
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूँरपमृधोनुदस्वाथाभयं कृणु हि विश्वतो नः ॥२॥
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन् वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥३॥
ये त्वाहिहत्ये मघवनवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमंसगणो मरुद्भिः ॥४॥

---

१ हे इन्द्र, तुम जलवर्षक मरुत्वान् हो। रमणीय पुरोडाशादि रूप अन्नसे युक्त सोमको तुम संग्रामके लिये और हर्षके लिये पियो। तुम विशेष रूपसे सोम संघातका जठरमें सेक करो; क्योंकि तुम पूर्वकालसे ही अभिषुत सोमोंके स्वामी हो।

२ हे शूर इन्द्र, तुम देवगणोंसे संगत, मरुद्गणोंसे युक्त, वृत्रहन्ता और कर्मविषयज्ञाता हो। तुम सोमपान करो। हमारे शत्रुओंको मारो, हिंसक जन्तुओंका अपनोदन करो और हमें सर्वत्र निर्भय करो।

३ हे ऋतुपा इन्द्र, सखा-स्वरूप मरुतों और देवोंके साथ तुम हमारे अभिषुत सोमका पान करो। युद्धमें सहायता पानेके लिये जिन मरुतोंका तुमने सेवन—ग्रहण—किया था और जिन मरुतोंने तुम्हें स्वामी माना था, उन्हीं मरुतोंने तुम्हें संग्राममें शत्रुहननादि रूप पराक्रमवान् किया था; तब तुमने वृत्रको मारा था।

४ हे मघवन्, हे अश्ववन् इन्द्र, जिन मरुतोंने, अहिहनन-कार्यमें, बलदान द्वारा, तुम्हें संवर्द्धित किया था, जिन्होंने तुम्हें शम्बर-वधमें संवर्द्धित किया था और जिन्होंने गौओंके लिये पणि असुरोंके साथ युद्धमें संवर्द्धित किया था, जो मेधावी मरुत् तुम्हें आज भी प्रसन्न कर रहे हैं, उन मरुद्गणोंके साथ तुम सोम पान करो।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥५॥



४८ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोमस्य ॥१॥
यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥२॥
उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुध प्रतीकः ॥३॥

---

५ हे इन्द्र, तुम मरुद्गणयुक्त, जलवर्षी, प्रोत्साहक, प्रभूतशब्दविशिष्ट, दिव्य, शासनकर्ता, विश्वके अभिभविता, उग्र तथा बलप्रद हो। हम नूतन आश्रय (रक्षा)-लाभके लिये तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ जलवर्षक, सद्यःउत्पन्न, कमनीय इन्द्र हविर्युक्त सोमरूप अन्नके संग्रहकर्त्ताकी रक्षा करें। प्रत्येक कार्यमें सोमपानकी इच्छा होनेपर तुम देवताओंके पहले गव्यमिश्रित साधु सोमका पान करो।

२ हे इन्द्र, तुम जिस दिन उत्पन्न हुए थे, उसी दिन पिपासित होनेपर तुमने पर्वतस्थ सोमलताके रसका पान किया था। तुम्हारे महान् पिता कश्यपके (सूतिका) गृहमें, तुम्हारी युवती माता अदितिने, स्तन्यदानके पहले, तुम्हारे मुँहमें, सोमरसका ही सिञ्चन किया था।

३ इन्द्रने मातासे प्रार्थनापुरःसर अन्नकी याचना की और उसके स्तनमें क्षीररूपसे स्थित दीप्त सोमको देखा। गृत्स (शत्रुहननार्थ देवताओं द्वारा अभिकांक्षित इन्द्र) शत्रुओंको अपने स्थानोंसे उच्चालित कर सर्वत्र विचरण करने लगे। बहुतों प्रकारसे अङ्गविक्षेप कर इन्द्रने वृत्रहननादि बहुविध महान् कार्य किये।

उग्रस्तुराषाड़भिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥४॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥

४६ सूक्त

इन्द्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आकृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥१॥
यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥२॥

४ शत्रुओंके लिये भयङ्कर, शीघ्र अभिभवकर्ता और पराक्रमवान् इन्द्रने अपने शरीरको नाना प्रकारका बनाया। इन्द्रने अपनी सामर्थ्यसे त्वष्टा नामक असुरको पराजित कर चमस-स्थित सोमको चुराकर पिया।

५ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान, प्रभूत, ऐश्वर्यवाले, नेतृश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रयप्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ हे स्तोता, महान् इन्द्रकी स्तुति करो। इन्द्र द्वारा रक्षित होनेपर सब मनुष्य यज्ञमें सोमपान कर अभीष्ट प्राप्त करते हैं। देवताओं और द्यावापृथीवीने ब्रह्मा द्वारा आधिपत्यके लिये नियुक्त शोभन कर्मवाले तथा पापोंके हन्ता इन्द्रको उत्पन्न किया।

२ संग्राममें अपने तेजसे राजमान, हरि नामक घोड़ोंसे युक्त रथपर स्थित, बल-युद्धके नेता और संग्राममें सेनाओंको दो भागोंमें विभक्त करनेवाले जिन इन्द्रको कोई भी अतिक्रान्त नहीं कर सकता, वही इन्द्र सेनाओंके उत्कृष्ट स्वामी हैं। वे युद्धमें शत्रु-बलशोषक मरुतोंके साथ तीव्रवेग होकर शत्रुओंके प्राणोंको नष्ट करते हैं।

सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३॥
धर्त्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥

५० सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥१॥

---

३ जैसे बलवान् अश्व शत्रुबलका सन्तरण करता है, वैसे ही बलवान् इन्द्र संग्राममें शत्रुओंका उत्क्रमण करते हैं। द्यावापृथिवीको व्याप्त कर इन्द्र धनवान् होते हैं। यज्ञमें पूषदेवकी तरह हवनीय इन्द्र स्तुति कर्त्ताओंके पिता हैं। आहूत होकर कमनीय इन्द्र अन्नदाता होते हैं।

४ इन्द्र द्युलोक तथा अन्तरिक्षके धारक हैं। वे ऊर्द्ध्वगामी रथकी तरह वर्तमान हैं। वह गमनशील मरुतोंके द्वारा सहायवान् हैं। वह रात्रिको आच्छादित करते हैं, सूर्यको उत्पन्न करते हैं और भजनीय कर्मफल-रूप अन्नका वैसे ही विभाग करते हैं, जैसे धनीका वाक्य धन-विभाग करता है।

५ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत ऐश्वर्य-वाले, नरश्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

१ इन्द्र यज्ञमें आकर स्वाहाकृत इस सोमका पान करें। जिस इन्द्रका यह सोम है, वह विघ्न-कारियोंके हिंसक, याजकोंके अभिमतफल वर्षक और मरुद्वान् हैं। अतिशय व्यापक इन्द्र हम लोगोंके द्वारा दिये गये अन्नसे तृप्त हों। हव्य इन्द्रके शरीरकी अभिलाषा पूर्ण करे।

आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनुप्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबात्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥२॥
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवां ऋजीषिन् समस्मभ्यं पुरुधो गा इषण्य ॥३॥
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभि स्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकोसा अक्रन् ॥४॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धननाम् ॥५॥



२ हे इन्द्र, तुम्हें यज्ञमें आनेके लिये हम रथको परिचारक-अश्वयुक्त करते हैं। तुम पुरातन हो, घोड़ोंके वेगका अनुगमन करते हो। हे शोभन-हनु इन्द्र, घोड़े तुम्हें यज्ञमें धारण करें। आकर तुम इस कमनीय और भलीभाँति अभिषुत सोमका शीघ्र पान करो।

३ स्तोताओंके अभिमतफलवर्षक और स्तुति द्वारा प्रसन्न करने योग्य इन्द्रको स्तोत्र करनेवाले ऋत्विक् लोग श्रेष्ठत्व और चिरकालीन आयु प्राप्तिके लिये गव्यमिश्रित सोम द्वारा धारण करते हैं। हे सोमवान् इन्द्र, प्रमुदित होकर तुम सोमपान करो और स्तोताओंको अग्निहोत्रादि-कार्यसिद्धिके लिये बहुविध धेनु दो।

४ हमारी इस अभिलाषाको गौ, अश्व और दीप्तिवाले धनके द्वारा पूर्ण करो तथा उनके द्वारा हमें विख्यात करो। इन्द्र, स्वर्गादि-सुखाभिलाषी और कर्मकुशल कुशिकनन्दनोंने मन्त्र द्वारा तुम्हारा स्तोत्र किया है।

५ इन्द्र, तुम अन्न प्राप्त करो। तुम युद्धमें उत्साहके द्वारा प्रवृद्ध, धनवान्, प्रभूत-ऐश्वर्यवाले, नेतृ-श्रेष्ठ, स्तुतिश्रवणकर्ता, उग्र, युद्धमें शत्रुविनाशी और धनविजेता हो। आश्रय-प्राप्तिके लिये हम तुम्हें बुलाते हैं।

---

५१ सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। जगती, गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द।

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यमिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवे दिवे ॥१॥
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुपयन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२॥
आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३॥
नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभिप्रवीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥४॥

---

१ अभिमतफलप्रदानसे मनुष्योंके धारक, धनवान उक्थ द्वारा प्रशंसनीय, बल-धन आदि सम्पत्तिसे प्रतिक्षण वर्द्धमान, स्तोताओं द्वारा बहुशः आहूत, मरणधर्मरहित और शोभन स्तुतिवचनसे प्रतिदिन स्तूयमान इन्द्रकी प्रभूत स्तुति-वचनोंसे सब प्रकारसे स्तुति की जाय।

२ इन्द्र सौ यज्ञ करनेवाले, जलवाले, मरुतोंसे युक्त, सम्पूर्ण जगत्‌के नेता, अन्नके दाता, शत्रुपुरीके भेदक, युद्धार्थ शीघ्रगन्ता, मेघभेदन द्वारा जलके प्रेरक, धन प्रदाता, शत्रुओंके अभिभवकर्त्ता तथा स्वर्गके प्रदाता हैं। इन्द्रके निकट हमारी स्तुतिवाणी सब प्रकारसे जाय!

३ इन्द्र शत्रुओंके बलसंहारक हैं, संग्राममें वे सबसे स्तुत होते हैं। वे निष्पाप स्तुतियोंको सम्मानित करते हैं। अग्निहोत्रादि करनेवाले यजमानके गृहमें सोमपान कर वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। विश्वामित्र, मरुतोंके साथ शत्रुओंके अभिभवकर्ता और शत्रुसंहारक इन्द्रकी स्तुति करो।

४ हे इन्द्र, तुम मनुष्योंके नेता तथा वीर हो। राक्षसों द्वारा पीड़ित ऋत्विक् स्तुतियों तथा उक्थों (शस्त्रों) द्वारा तुम्हें भलीभाँति अर्चित करते हैं। वृत्रहननादि कर्म करनेवाले इन्द्र बलके लिये गमनोद्यम करते हैं। एक मात्र पुरातन इन्द्र ही इस अन्नके ईश्वर हैं; अतः इन्द्रको नमस्कार है।

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्त्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५॥
तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयोधाः ॥६॥
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७॥
सः वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत्त्वा परिदेवा अभूषणन् महे भराय पुरहूत विश्वे ॥८॥
अप्तूर्ये मरुत आपिरेषो मन्दन्निन्द्रमनुदातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥९॥

५ मनुष्योंमें इन्द्रका अनुशासन नाना प्रकारका है। शासक इन्द्रके लिये पृथिवी बहुत धन धारण करती है। इन्द्रकी आज्ञासे द्युलोक, औषधियाँ, जल, मनुष्य और वृक्ष उनके उपभोगयोग्य धनकी रक्षा करते हैं।

६ हे अश्ववान् इन्द्र, तुम्हारे लिये स्तोत्रों और शस्त्रोंको ऋत्विक् लोग यथार्थ ही धारण करते हैं, तुम उनका ग्रहण करो। हे सबके निवासयिता और सखिस्वरूप इन्द्र, तुम व्याप्त हो। यह अभिनव हवि तुम्हें दी गयी है, इसे ग्रहण करो। स्तोताओंको अन्न दो।

७ हे मरुतोंसे युक्त इन्द्र, शर्याति राजाके यज्ञमें जैसे तुमने अभिषुत सोमका पान किया था, वैसे ही इस यज्ञमें सोम पान करो। हे शूर, तुम्हारे निर्बाध निवासस्थानमें स्थिर और सुन्दर यज्ञ करनेवाले मेधावी यजमान हविके द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

८ हे इन्द्र, सोमकी कामना करते हुए तुम मित्र मरुतोंके साथ हमारे इस यज्ञमें अभिषुत सोमका पान करो। हे पुरुओं द्वारा आहूत इन्द्र, तुम्हारे जन्म-ग्रहण करते ही सब देवताओंने तुम्हें महासंग्रामके लिये भूषित किया था।

९ हे मरुतो, जलके प्रेरणसे इन्द्र तुम्हारे मित्र होते हैं। उन्हें बलदाता तुमने प्रसन्न किया था। वृत्रविनाशक इन्द्र तुम्हारे साथ हवि देनेवाले यजमानके गृहमें अभिषुत सोमका पान करें।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥१०॥

यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नियच्छ तन्वम्। स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११॥

प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः। प्र बाहू शूर राधसे ॥१२॥



५२ सूक्त

इन्द्र देवता। विश्वामित्र ऋषि। त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती छन्द।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥१॥

पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च। तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥२॥

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः। वधूयुरिव योषणाम् ॥३॥

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः। इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥४॥

---

१० हे धनके स्वामी स्तूयमान इन्द्र, उद्देशानुक्रमसे बल द्वारा इस अभिषुत सोमका शीघ्र पान करो।

११ हे इन्द्र, तुम्हारे लिये जो अन्नमिश्रित सोम अभिषुत हुआ है, उसमें अपने शरीरको निमग्न करो। तुम सोमपानके योग्य हो। तुम्हें वह सोम प्रसन्न करे।

१२ हे इन्द्र, वह सोम तुम्हारी दोनों कुक्षियोंको व्याप्त करे, स्तोत्रोंके साथ वह तुम्हारे शरीरको व्याप्त करे। हे शूर, धनके लिये वह तुम्हारी दोनों भुजाओंको भी व्याप्त करे।

---

१ हे इन्द्र, भुने जौसे युक्त, दधिमिश्रित, सत्तूसे युक्त, सवनीय पुरोडाशसे युक्त और शस्त्रवाले हमारे सोमका, प्रातःसवनमें, तुम सेवन करो।

२ हे इन्द्र, पक्व पुरोडाशका तुम सेवन करो। पुरोडाशके भक्षणके लिये उद्यम करो। हवनके योग्य यह पुरोडाश आदि हवि तुम्हारे लिये गमन करती है।

३ हे इन्द्र, हमारे इस पुरोडाशका भक्षण करो। हमारी इस स्तुति लक्षणा वाणीका वैसे ही सेवन करो, जैसे स्त्रीकी भक्ति करनेवाला कामी पुरुष युवती स्त्रीका सेवन करता है।

४ हे पुराणकालसे प्रसिद्ध इन्द्र, हमारे इस पुरोडाशका प्रातःसवनमें सेवन करो, जिससे तुम्हारा कर्म महान् हो।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोडाशमिन्द्र कृण्वेह चारुम् ।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५॥
तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोडाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्तः उपशिक्षेम धीतिभिः ॥६॥
पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥
प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोडाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥८॥



५ हे इन्द्र, माध्यन्दिन-सवन-सम्बन्धी भुने जौके कमनीय पुरोडाशका यहाँ आकर भक्षण करके संस्कृत करो। तुम्हारी परिचर्या करनेवाले, स्तुतिके लिये त्वरित गमन (व्यग्र), अतएव वृषकी तरह इधर-उधर दौड़नेवाले, स्तोता जब स्तुतिलक्षण वचनोंसे तुम्हारी स्तुति करते हैं, तभी तुम पुरोडाश आदिका भक्षण करते हो।

६ हे बहुजनस्तुत इन्द्र, तृतीय सवनमें हमारे भुने जौका और हुत पुरोडाशका भक्षण करो। हे कवि, तुम ऋभुवाले तथा धनयुक्त पुत्रवाले हो। हम लोग हवि लेकर स्तुतियों द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

७ हे इन्द्र, तुम पूषा नामक देववाले हो। तुम्हारे लिये हम दही-मिला सत्तू बनाते हैं। तुम हरि नामक घोड़ेवाले हो। तुम्हारे खानेके लिये हम भुना जौ तैयार करते हैं। मरुतोंके साथ तुम पुरोडाशका भक्षण करो। हे शूर, तुम वृत्रहन्ता हो विद्वान् हो, सोम पियो।

८ अध्वर्युओ, इन्द्रके लिये शीघ्र भुना जौ दो। यह नेतृतम हैं। इन्हें पुरोडाश प्रदान करो। हे शत्रुओंके अभिभवकर्ता इन्द्र, तुम्हें लक्ष्य कर प्रतिदिन की गयी, एक प्रकारकी, स्तुति तुम्हें सोम-पानके लिये उत्साहित करे।

---

५३ सूक्त

१४ ऋचाके इन्द्र और पर्वत देवता, १५-१६ के वाग्देवता, १७-२० के रथांग देवता हैं, अवशिष्टके इन्द्र देवता हैं। विश्वामित्र ऋषि। जगती आदि छन्द।

इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥१॥
तिष्ठा सुकं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि।
पितुर्न पुत्रः सिचमारभेत इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२॥
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम्।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥३॥
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४॥

१ हे इन्द्र और पर्वत, महान् रथपर मनोहर और सुन्दर पुत्रसे युक्त अन्न लाओ। हे द्योतमान, हमारे यज्ञमें तुम दोनों हव्यका भक्षण करो। हव्य द्वारा हृष्ट होकर हमारे स्तुतिलक्षण वचनोंसे वर्द्धित होओ।

२ हे मघवन्, इस यज्ञमें कुछ कालतक तुम सुखपूर्वक ठहरो। हमारे यज्ञसे चले मत जाओ। क्योंकि, सुन्दर अभिषुत सोम द्वारा हम शीघ्र ही तुम्हारा यजन करते हैं। हे शक्तिसम्पन्न इन्द्र, मधुर वचनों द्वारा पुत्र जैसे पिताके वस्त्रप्रान्तका ग्रहण करता है, वैसे ही हम सुमधुर स्तुतियों द्वारा तुम्हारे वस्त्रप्रान्तको गृहीत करते हैं।

३ हे अध्वर्युओ, हम दोनों स्तुति करेंगे। तुम हमें उत्तर दो। हम दोनों इन्द्रके उद्देश्यसे प्रीति-युक्त स्तोत्र करते हैं। तुम यजमानके कुशके ऊपर उपवेशन करो। इन्द्रके लिये, हम दोनोंके द्वारा किया गया उक्थ (शस्त्र) प्रशस्त हो।

४ हे मघवन्, स्त्री ही गृह होती है और स्त्री ही पुरुषोंका मिश्रण स्थान है। रथमें युक्त होकर अश्व तुम्हें उस गृहमें ले जायँ। हम जब कभी तुम्हारे लिये सोमको अभिषुत करेंगे, तब हमारे द्वारा प्रहित, दूतस्वरूप अग्नि तुम्हारे निकट गमन करें।

परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५॥
अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६॥
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः ॥७॥
रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम् ।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्त्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥८॥
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९॥

५ हे मघवन्, तुम स्वकीय गृहाभिमुख होओ अथवा हमारे इस यज्ञमें आगमन करो। हे पोषक, दोनों स्थानोंमें तुम्हारा प्रयोजन है; क्योंकि वहाँ गृहमें स्त्री है और यहाँ सोम है। गृह-गमनके लिये तुम महान् रथके ऊपर अधिष्ठान करो अथवा हेषारव करनेवाले घोड़ोंको रथसे विमुक्त करो।

६ हे इन्द्र, यहीं ठहरकर सोम पान करो। सोम पीकर घर जाना। तुम्हारे रमणीय गृहमें मङ्गल-कारिणी जाया और सुन्दर ध्वनि है। गृह-गमनके लिये तुम महान् रथके ऊपर अवस्थान करो अथवा अश्वको रथसे विमुक्त करो—इसी यज्ञमें ठहरो।

७ हे इन्द्र, यज्ञ करनेवाले ये भोज सुदास राजाके याजक हैं, नाना रूप हैं अर्थात् अङ्गिरा मेधातिथि आदि हैं। देवोंसे भी बलवान् रुद्रके पुत्र बलवान् मरुत् मुझ विश्वामित्रके लिये, अश्वमेधमें महनीय धन देते हुए, अन्नको भली भाँति वर्द्धित करें।

८ इन्द्र जिस रूपकी कामना करते हैं, उस रूपके हो जाते हैं। मायावी इन्द्र अपने शरीरको नाना-विध बनाते हैं। वे ऋतवान् होकर भी अऋतुमें सोमपान करते हैं। वे स्वकीय स्तुति द्वारा आहूत होकर, स्वर्ग लोकसे मुहूर्त-मध्यमें, तीनों सवनोंमें गमन करते हैं।

९ अतिशय सामर्थ्यवान्, अतीन्द्रियार्थद्रष्टा, द्योतमान तेजोंके जनयिता तेजों द्वारा आकृष्ट और अध्वर्यु आदिके उपदेष्टा विश्वामित्रने जलवान् सिन्धुको निरुद्धवेग किया। पिजवनके पुत्र सुदास राजाको जब विश्वामित्रने यज्ञ कराया था, तब इन्द्रने कुशिकगोत्रोत्पन्न ऋषियोंके साथ प्रिय व्यवहार किया था।

हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्म्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो विपिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१०॥
उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं रायो प्रमुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्याः ॥११॥
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२॥
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
करदिन्नः सुराधसः ॥१३॥
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्म्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धयानः ॥१४॥

---

१० हे मेधावियो, हे अतीन्द्रियार्थद्रष्टाओ, हे नेतृगणके उपदेशको, हे कुशिक-गोत्रोत्पन्नो, हे पुत्रो, यज्ञमें पत्थरों द्वारा सोमके अभिषुत होनेपर तुम लोग स्तुतियों द्वारा देवताओंको प्रसन्न करते हुए शस्त्र करो अर्थात् श्लोक (मन्त्र) का भली भाँति उच्चारण करो, जैसे हंस शब्दोंका भली भाँति उच्चारण करते हैं। देवगणके साथ तुम लोग मधुर सोम रसका पान करो।

११ हे कुशिक-गोत्रोत्पन्नो, हे पुत्रो, तुम लोग अश्वके समीप जाओ, अश्वको उत्तेजित करो। धनके लिये सुदासके अश्वको छोड़ दो। राजा इन्द्रने विघ्नकारक वृत्रका पूर्व, पश्चिम और उत्तर देशमें बध किया है। अतएव सुदास राजा पृथ्वीके उत्तम स्थानमें यज्ञ करें।

१२ हे कुशिक पुत्रो, हम (विश्वामित्र) ने द्यावापृथिवी द्वारा इन्द्रका स्तव किया है। स्तोता विश्वामित्रका यह इन्द्र-विषयक स्तोत्र भरतकुलके मनुष्यकी रक्षा करे।

१३ विश्वामित्र-वंशीयोंने वज्रधर इन्द्रके लिये स्तोत्र किया है। इन्द्र हम लोगोंको शोभन धनसे युक्त करें।

१४ हे इन्द्र, अनार्योंके निवासयोग्य देशोंमें कीकटसमूहके मध्यमें गौएं तुम्हारे लिये क्या करेंगी? वे सोमके साथ मिश्रित होनेके योग्य दुग्ध दान नहीं करती हैं। दुग्ध प्रदान द्वारा वे पात्रको भी दीप्त नहीं करती हैं। हे धनवान् इन्द्र, उन गौओंको तुम हमारे निकट लाओ और प्रमगन्द (अत्यन्त कुसीदिकुल) के धनका भी आनयन करो। हे मघवन्, नीच वंशवालोंका धन हमें दो।

ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्य्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५॥
ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योधिश्रवः पाञ्चजन्यासुकृष्टिषु ।
सापक्ष्या नव्यमायुर्दधानायां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६॥
स्थिरौ गावौ भवतां वीडुरक्षो मेषा वि बर्हि मा युगं विशारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७॥
बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥१८॥
अभिव्ययस्व खदिरस्य सारमोजे धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीलो वीलित वीलयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९॥

१५ अग्निको प्रज्वलित करनेवाले ऋषियों द्वारा सूर्यसे लाकर हम लोगोंको दी गयी, अज्ञानको बाधित करनेवाली, रूप तथा शब्दतया सर्वत्र सर्पणशीला वाक् (वचन) आकाशमें प्रभूत शब्द करती है। सूर्यकी दुहिता वाग्देवता इन्द्र आदि देवताओंके निकट क्षयरहित अमृत रूप अन्नको विस्तृत करती है।

१६ गद्य-पद्य रूपसे सर्वत्र सर्पणशीला वाग्देवता चारो वर्ण तथा निषादमें जो अन्न विद्यमान है, उससे अधिक अन्न हमें शीघ्र दे। दीर्घ आयुवाले जमदग्नि आदि मुनियोंने जिस वचनको सूर्यसे लाकर हमें दिया है, पक्षोंके निर्वाहक सूर्यकी दुहिता, वह वाग्देवता हमारे लिये नूतन अन्न दान करे।

१७ सुदासके यज्ञमें अवभृथ करनेके उपरान्त यज्ञशालासे जानेकी इच्छा करते हुए विश्वामित्र रथाङ्गकी स्तुति करते हैं—गोद्वय स्थिर होओ, अक्ष दृढ़ होओ। दण्ड जिससे विनष्ट नहीं हो, युग जिससे विनष्ट नहीं हो, युग जिससे विशीर्ण नहीं हो। पतनशील कीलकद्वयके विशीर्ण होनेके पहले ही इन्द्र धारण करें। हे अहिंसित नेमिविशिष्ट रथ, तुम हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो।

१८ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंके शरीरमें बलदान करो, हमारे वृषभोंको बलदान करो और हमारे पुत्र-पौत्रोंको चिरजीवी होनेके लिये बलदान करो; क्योंकि तुम बलप्रद हो।

१९ हे इन्द्र, रथके खदिर-काष्ठके सारको दृढ़ करो, रथके शीशमके काठको दृढ़ करो। हे हम लोगोंके द्वारा दृढ़ीकृत अक्ष, तुम दृढ़ होओ। हमारे गमनशील इस रथसे हमें फेंक नहीं देना।

अयमस्मान् वनस्पतिर्म्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥२०॥
इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्म्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सम्पदीष्ट यमुद्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥
परशुं चिद्वितपति शिम्बलं चिद्विवृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥
न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशुमन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥
इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परिणयन्त्याजौ ॥२४॥

---

२० वनस्पतियों द्वारा निर्मित यह रथ हम लोगोंका मत त्याग करे, मत विनष्ट करे। जबतक हम लोग गृह न प्राप्त करें, जबतक रथ चलता रहे और जबतक कि, अश्व विमुक्त न हो जायँ, तबतक हम लोगोंका मङ्गल हो।

२१ हे शूर, हे धनवान् इन्द्र, हम लोग शत्रुओंके हिंसक हैं। हम लोगोंको तुम प्रभूत और श्रेष्ठ आश्रय दान द्वारा सन्तुष्ट करो। जो हम लोगोंसे द्वेष करता है, वह निकृष्ट होकर पतित हो। हम लोग जिससे द्वेष करते हैं, उसे प्राणवायु परित्याग करे।

२२ हे इन्द्र, जैसे कुठारको पाकर वृक्ष प्रतप्त होता है, वैसे ही हमारे शत्रु प्रतप्त हों। शाल्मली पुष्प जैसे अनायास ही वृन्तच्युत हो जाता है, वैसे ही हमारे शत्रुओंके अवयव विच्छिन्न हों। प्रहत, जलस्रावी स्थाली (हाँड़ी) पाककालमें जैसे फेनोद्गीर्ण करती है, वैसे ही मेरी मन्त्रसामर्थ्यसे प्रहत होकर शत्रु मुख द्वारा फेनोद्गीर्ण करें।

२३ वसिष्ठके भृत्योंको विश्वामित्र कहते हैं—हे पुरुषो, अवसान करनेवाले विश्वामित्रकी मन्त्र-सामर्थ्यको तुम लोग नहीं जानते हो। तपस्याका क्षय न हो जाय, इसी लोभसे चुपचाप बैठे हुएको पशु मानकर ले जा रहे हो। वसिष्ठ मेरे साथ स्पर्द्धा करनेके योग्य नहीं हैं; क्योंकि प्राज्ञ व्यक्ति मूर्ख व्यक्तिको उपहासास्पद नहीं करते हैं; अश्वके सम्मुख गर्दभ नहीं लाया जाता है।

२४ हे इन्द्र, भरतवंशीयगण (वसिष्ठके साथ) अपगमन (पार्थक्य) जानते हैं, गमन (एकता) नहीं जानते हैं अर्थात् शिष्टोंके साथ उनकी संगति नहीं है। संग्राममें सहज शत्रुकी तरह उन लोगोंके प्रति वे अश्व प्रेरण करते हैं और धनुर्धारण करते हैं।

५४ सूक्त

५ अनुवाक। विश्वदेवगण देवता। विश्वामित्रके पुत्र प्रजापति अथवा वाक्के पुत्र प्रजापति ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्रजभ्रुः।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥१॥
महिमहे दिवे अर्चापृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन्।
ययोर्हस्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवोमादयन्ते सचायोः ॥२॥
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तुमहेषुणः सुविताय प्रभूतम्।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसायामि रत्नम् ॥३॥
उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथवि वेविदानाः ॥४॥

---

१ महान् यज्ञमें मन्थन द्वारा निष्पाद्यमान और स्तुति-योग्य अग्निके उद्देश्यसे यह सुखकर स्तोत्र बारम्बार उच्चारित होता है। अग्नि गृहमें विद्यमान हो कर तथा तेजोविशिष्ट होकर हमारे इस स्तोत्र को सुनें। दिव्य तेजसे निरन्तर युक्त होकर अग्नि हमारे इस स्तोत्रको सुनें।

२ हे स्तोता, महती द्यावापृथिवीकी सामर्थ्यको जानते हुए तुम उनकी अर्चना करो। मेरा मनोरथ सम्पूर्ण भोगका इच्छुक है, सर्वत्र वर्तमान है। पूजाभिलाषी देवगण सम्पूर्ण मनुष्योंके यज्ञमें द्यावापृथिवीके स्तोत्र करनेमें मत्त होते हैं।

३ हे द्यावापृथिवी, तुम्हारा ऋत (अनृशंसता) यथार्थ हो। तुम हमारे महान् यज्ञकी समाप्तिके लिये समर्थ होओ। हे अग्नि, द्युलोक और पृथिवीको नमस्कार है। हविर्लक्षण अन्नसे मैं परिचर्या करता हूँ, उत्तम धनकी याचना करता हूँ!

४ हे सत्ययुक्त द्यावापृथिवी, पुरातन सत्यवादी महर्षियोंने तुमसे हितकर अर्थ (अभिलषित) प्राप्त किया था। हे पृथिवी, युद्धमें आनेवाले मनुष्यगण तुम्हारे माहात्म्यको जानकर तुम्हारी वन्दना करते हैं।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचद्देवाँ अच्छा पथ्या कासमेति ।
दद्दश्र एषामवमासदां सिपरेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५॥
कविर्नृचक्षा अभिषीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥६॥
समान्या वियुते दूरे अन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारायुवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७॥
विश्वेदेते जनिमा संविविक्तो महो देवान्विभ्रती न व्यथेते ।
एजद्ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत् पतत्रि विषुणं विजातम् ॥८॥
सना पुराणं मध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामितन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथिव्युते तस्थुरन्तः ॥६॥

५ उस सत्यभूत अर्थको कौन जानता है ? कौन उस जाने हुए अर्थको बोलता है। कौन समीचीन पथ देवताओंके निकट ले जाता है। देवगणके अधःस्थान अर्थात् द्युलोकस्थित नक्षत्रादि देखे जाते हैं। वे उत्कृष्ट और दुर्ज्ञेय व्रतमें अवस्थिति करते हैं।

६ कवि, मनुष्योंके द्रष्टा सूर्य इस द्यावापृथिवीको सर्वत्र देखते हैं। जलके उत्पत्ति-स्थान अन्तरिक्षमें हर्षकारिणी, रसवती और समान कर्मों द्वारा परस्पर ऐक्यभावापन्ना द्यावापृथिवी पक्षियोंके घोसलोंकी तरह पृथक्-पृथक् नाना स्थानको अधिकृत करती हैं।

७ परस्पर प्रीतियुक्त कर्म द्वारा ऐकमत्य प्राप्त, वियुक्त होकर वर्तमान, अविनाशिनी द्यावापृथिवी जागरणशील होकर अनश्वर अन्तरिक्षमें नित्य तरुण भगिनीद्वयकी तरह एक आत्मासे जायमान होकर ठहरी हैं। वे दोनों आपसमें द्वन्द्व (मिथुन) नाम अभिहित करती हैं।

८ यह द्यावापृथिवी सम्पूर्ण भौतिक वस्तुको अवकाश-दान द्वारा विभक्त करती है। महान् सूर्य, इन्द्र आदि अथवा सरित्, समुद्र, पर्वत आदिको धारण करके भी व्यथित नहीं होती है। जङ्गमात्मक और स्थावरात्मक जगत् केवल एक पृथिवीको ही प्राप्त करता है। चञ्चल पशु और पक्षिगण नाना रूप होकर द्यावापृथिवीके मध्यमें ही अवस्थित होते हैं।

६ हे द्यौ, तुम महान् हो, तुम सबका जनन करती हो और पालन करती हो। तुम्हारी सनातनता, पूर्वक्रमागता और हम लोगोंका जननत्व सब एकसे ही उत्पन्न हुआ है। द्यौ भगिनी होती है। हम अभी उसका (भगिनीत्वका) स्मरण करते हैं। द्युलोकमें, विस्तीर्ण और विविक्त आकाशमें तुम्हारी स्तुति करनेवाले देवता अपने वाहनोंके सहित स्थित हैं। वहाँ ठहरकर वे स्तोत्र सुनते हैं।

इमं स्तोमं रोदसी प्रब्रवीम्यृदूदराः शृण्वन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१०॥
हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरादिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमासुव सर्वतातिम् ॥११॥
सुकृत् सुपाणिः स्ववाँऋतावा देवस्त्वष्टावसेतानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥१२॥
विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन् यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३॥
विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥

---

१० हे द्यावापृथिवी, तुम्हारे इस स्तोत्रका हम अच्छी तरहसे उच्चारण करते हैं। सोमको उदरमें धारण करनेवाले, अग्निरूपी जिह्वावाले, भली भाँति दीप्यमान, नित्य तरुण, कवि, अपने-अपने कर्मको प्रकट करनेवाले मित्र आदि देवता इस स्तोत्रको सुनें।

११ दानार्थ हिरण्यको हाथमें रखनेवाले, शोभन वचनवाले सविता यज्ञके तीनों सवनोंमें आकाशसे आते हैं। हे सविता, तुम स्तोताओंके स्तोत्रको प्राप्त करो। इसके अनन्तर, सम्पूर्ण, अभिलषित फलको हम लोगोंके लिये प्रेरित करो।

१२ सुन्दर जगत्के कर्ता, कल्याणपाणि, धनवान्, सत्यसङ्कल्प त्वष्टदेव रक्षाके लिये हम लोगोंको सम्पूर्ण अपेक्षित फल प्रदान करें। हे ऋभुओ, पूषाके सहित तुम हम लोगोंको धन प्रदान करके हृष्ट करो। क्योंकि, सोमाभिषवके लिये प्रस्तरको उत्तोलन करनेवाले ऋत्विकोंने यह यज्ञ किया है।

१३ द्योतमान रथवाले, आयुधवान् दीप्तिमान, शत्रुओंके विनाशक, यज्ञोत्पन्न, सतत गमनशील, यज्ञार्ह मरुद्गण और वाग्देवता हमारे इस स्तोत्रको सुनें। हे त्वरान्वित मरुद्गण, हमें पुत्रविशिष्ट धन दान करो।

१४ धनका हेतुभूत यह स्तोत्र और अर्चनीय शस्त्र, इस विस्तृत यज्ञमें, बहुकर्मा विष्णुके निकट गमन करे। सबकी जनयित्री और परस्पर अमङ्कीर्णा दिशाएँ, जिस विष्णुको हिंसित नहीं करती हैं, वह विष्णु उरुविक्रमी हैं। त्रिविक्रमावतारमें एक ही पैरसे उन्होंने सम्पूर्ण जगत्को आक्रान्त किया था।

इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः संगृभ्या न आभरा भूरि पश्वः ॥१५॥
नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारुनाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥
महत्तद्वः कवयश्चारुनाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षतानः ॥१७॥
अर्यमाणो अदितिर्यज्ञियासो दब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८॥
देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व न्तरिक्षम् ॥१९॥

१५ सकल-सामर्थ्य-सम्पन्न इन्द्रने द्यावा और पृथिवी दोनोंको महिमा द्वारा पूर्ण किया है। शत्रुपुरीको विदीर्ण करनेवाले, वृत्रको मारनेवाले और शत्रुओंको पराजित करनेवाली सेनावाले इन्द्र पशुओंका संग्रह करके हमें प्रचुर परिमाणमें पशु दान करें।

१६ हे अश्विनीकुमारो, तुम हम बन्धुओंकी अभिलाषाकी जिज्ञासा करनेवाले हो, हमारे पालक होओ। तुम दोनोंका मिलन कमनीय है। हे अश्विन्, हमारे लिये तुम उत्तम धनके देनेवाले होओ। तुम्हारा तिरस्कार कोई भी नहीं करता है। तुम्हें हम हवि देते हैं। तुम शोभन कर्म द्वारा हमारा पालन करो।

१७ हे कवि देवगण, तुम्हारा वह प्रभूत कर्म मनोहर है, जिससे तुम लोग इन्द्रलोकमें देवत्व प्राप्त करते हो। हे बहुजनाहूत इन्द्र, तुम प्रियतम ऋभुओंके साथ सख्यभावापन्न हो। तुम हमारी इस स्तुतिको, धनादिलाभके लिये, स्वीकृत करो।

१८ सर्वदा गमनशील सूर्य देवमाता अदिति, यज्ञार्ह देवगण और अहिंसित कर्म करनेवाले वरुण हम लोगोंकी रक्षा करें। वे हमारे मार्गसे पुत्रोंके अहित कर्मको अथवा पतनकारक कर्मको दूर करें। हमारे गृहको वे पशु आदिसे तथा अपत्यसे युक्त करें।

१९ अग्निहोत्रके लिये बहु देशोंमें प्रसूत या विहित और देवताओंके दूत अग्नि हैं। कर्म-साधनकी विगुणतासे हम सापराध हैं। हमें अग्नि सर्वत्र निरपराध कहें। द्यावापृथिवी, जलसमूह, सूर्य और नक्षत्रों द्वारा पूर्ण विशाल अन्तरिक्ष हमारी स्तुति सुनें।

शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥ २० ॥
सदासुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः संपिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१॥
स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥२२॥



२० अभिमत-फल-सेचक मरुद्गण, अर्थियोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाले निश्चल पर्वत हविरन्नसे प्रसन्न होकर हमारी स्तुति सुनें। अदिति अपने पुत्रोंके साथ हमारी स्तुति सुनें। मरुद्गण हमें कल्याण-कर सुख दें।

२१ हे अग्नि, हमारा मार्ग सदा सुखसे जाने योग्य तथा अन्नवान् हो। हे देवो, मधुर जलसे ओष-धियोंको संसिक्त करो। हे अग्नि, तुमसे मैत्री प्राप्त करनेपर हमारा धन विनष्ट नहीं हो। हम जिससे धनके और प्रभूत अन्नके स्थानको प्राप्त करें।

२२ हे अग्नि, हवन-योग्य हविका आस्वादन करो, हमारे अन्नको भली भाँति प्रकाशित करो और उन अन्नोंको हमारे अभिमुख करो। तुम संग्राममें बाधा डालनेवाले सब शत्रुओंको जीतो और प्रफुल्लित मनवाले होकर तुम हमारे सम्पूर्ण दिवसोंको प्रकाशित करो।



५५ सूक्त

१ के वैश्वदेव, २-६ तकके अग्नि, १० के अहोरात्र, ११-१४ तकके द्यावापृथिवी, १५ के द्युनिशा, १६ के दिक्, १७-२२ तकके इन्द्र देवता हैं । प्रजापति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन् महद्देवानामसुरत्वमेकम् ।।१।।
मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ।।३।।
समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ।।४।।

१ उदयकालसे प्राचीन उषा जब दग्ध होती है, तब अविनाशी आदित्य समुद्रसे या आकाशमें उदित होते हैं। सूर्यके उदित होनेपर अग्निहोत्रादिके लिये तत्पर यजमान कर्म करते हैं और शीघ्र ही देवताओंके समीप उपस्थित होते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है ।

२ हे अग्नि, इस समय देवता हमें अच्छी तरहसे मत हिंसित करें। देव-पदवीको प्राप्त पुरातन पुरुष (पितर) हमें मत हिंसित करें। यज्ञके प्रज्ञापक, पुरातन द्यावापृथिवीके मध्यमें उदित सूर्य हमें मत हिंसित करें। देवताओंका महान् बल एक ही है ।

३ हे अग्नि, हमारी बहुविध अभिलाषाएँ विविध दिशामें गमन करती हैं। अग्निष्टोमादि यज्ञको लक्ष्य कर हम पुरातन स्तोत्रको दीप्त करते हैं। यज्ञार्थ अग्निके दीप्त होनेपर हम सत्य बोलेंगे । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

४ सर्वसाधारणके राजा दीप्यमान अग्नि (या सोम) बहुत देशोंमें अग्निहोत्रके लिये स्थापित होते हैं। वे वेदीके ऊपर शयन करते हैं। अरणि-काष्ठ या चमसके ऊपर विभक्त होते हैं। द्यावापृथिवी इनके माता-पिता हैं, उनमें अन्य अर्थात् द्युलोक इन्हें वृष्टि आदिके द्वारा पुष्ट करते हैं और अन्य माता वसुधा इन्हें केवल निवास देती हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है ।

आक्षित् पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५॥
शयुः परस्तादध नु द्विमाता बन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६॥
द्विमाता होता विदथेषु सम्राडन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७॥
शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥८॥
नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महाँश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥९॥

---

५ जीर्ण ओषधियोंमें वर्तमान तथा नव्य ओषधियोंमें गुणानुरूपसे स्थित अग्नि या सूर्य सद्योजात, पल्लवित ओषधियोंके आभ्यन्तरमें वर्तमान हैं। ओषधियाँ विना किसी पुरुषके रेतः-संयोगसे अग्निके द्वारा गर्भवती होकर फल-पुष्प आदिको उत्पन्न करती हैं। यह देवोंका ऐश्वर्य है। देवताओंका महान् बल एक ही है।

६ दोनों लोकोंके निर्माता अथवा द्यावापृथिवीरूप माता-पितावाले सूर्य पश्चिम दिशामें, अस्त-वेलामें, शयन करते हैं; किन्तु उदय-वेलामें वे ही द्यावापृथिवीके पुत्र सूर्य अप्रतिबद्ध-गति होकर आकाशमें अकेला चलते हैं। यह सकल कर्म मित्र और वरुणका है। देवताओंका महान् बल एक ही है।

७ दोनों लोकोंके निर्माता, यज्ञके होता तथा यज्ञमें भली भाँति राजमान अग्नि आकाशमें सूर्य रूपसे विचरण करते हैं। वे सब कर्मोंके मूलभूत होकर भूमिमें निवास करते हैं। रमणीय वचनवाले स्तोता, अच्छी तरहसे, रमणीय स्तोत्रोंको करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

८ युद्ध करनेवाले शूर व्यक्तिके अभिमुख आनेवाली शत्रु-सेना जैसे पराङ्मुख दीख पड़ती है, वैसे ही समीपमें वर्तमान अग्निके अभिमुख आनेवाला भूतजात पराङ्मुख होता दीख पड़ता है। स्तवके द्वारा ज्ञायमान अग्नि जलको हिंसित करनेवाली दीप्तिको मध्यमें धारण करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

९ पालक और देवोंके दूत अग्नि ओषधियोंके मध्यमें अत्यन्त व्याप्त होकर वर्तमान हैं। वे सूर्यके साथ द्यावापृथिवीके मध्यमें चलते हैं। नानविध रूपोंको धारण करते हुए वे हम लोगोंको विशेष अनुग्रह-दृष्टिसे देखें। देवताओंका महान् बल एक ही है

विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१०॥
नाना चक्राते यम्या वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥११॥
माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२॥
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसा पिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३॥
पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म विचरामि विद्वान् महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥

१० व्याप्त, सबके रक्षक, प्रियतम और क्षयरहित तेजको धारण करनेवाले अग्नि परम स्थानकी रक्षा करते हैं अथवा लोकधारक जलको धारण करते हुए जलके स्थान अन्तरिक्षकी रक्षा करते हैं। अग्नि उन सम्पूर्ण भूतजातको जानते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

११ मिथुनभूत अहोरात्र (शुक्ल-कृष्ण आदि) नानाविध रूप धारण करते हैं। कृष्णवर्णा तथा शुक्लवर्णा जो दोनों भगिनियाँ हैं, उनके मध्यमें एक अर्जुनवर्णा या दीप्तिशालिनी है और दूसरी कृष्णवर्णा है। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१२ माता पृथिवी और दुहिता द्युलोकस्वरूप दोनों क्षीरदायिनी धेनु जिस अन्तरिक्षमें परस्पर संगत होकर अपने रसको अन्योन्य पिलाती हैं, उनके स्थानभूत उस अन्तरिक्षके मध्यमें स्थित द्यावा-पृथिवीकी हम स्तुति करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१३ द्युलोक पृथिवीके पुत्र अग्निको उदकधारारूप जिह्वासे चाटते हैं और मेघ द्वारा ध्वनि करते हैं। द्युरूपा धेनु पृथिवीको जलवर्जित करके अपने ऊधः-प्रदेशको पुष्ट करती है। वह जलवर्जित पृथिवी सत्यभूत आदित्यके जलसे, वर्षाकालमें, सिक्त होती है। देवताओंका महान् बल एक ही है।

१४ पृथ्वी नानाविध शरीरको आच्छादित करती हैं। उन्नत होकर वह तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाले अथवा डेढ़ वर्षकी अवस्थावाले सूर्यको चाटती हुई अवस्थान करती हैं। सत्यभूत आदित्यके स्थानको जानते हुए हम उनकी परिचर्या करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५॥
आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६॥
यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन् यूथे निदधाति रेतः ।
स हि क्षपावान्त्सभगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७॥
वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोळ्हायुक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८॥
देवस्त्वष्टासविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९॥

---

१५ पदद्वयकी तरह दर्शनीय अहोरात्र द्यावापृथिवीके मध्यमें स्थापित हैं । उनके मध्यमें एक गूढ़ और अन्य आविर्भूत हैं । अहोरात्रका परस्पर मिलन-पथ (काल) पुण्यकारी और अपुण्यकारी दोनोंको ही प्राप्त होता है । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

१६ वृष्टि द्वारा सबको प्रीणयित्री, शिशुरहिता, आकाशमें वर्तमाना, अक्षीणरसा, क्षीरप्रसविणी युवती और सर्वदा नूतनस्वरूपा दिशाएँ (या मेघ) कम्पित हों । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

१७ जलके वर्षक पर्जन्यरूप इन्द्र अन्य दिशाओंमें मेघ द्वारा प्रभूत शब्द करते हैं । वे अन्य दिशा-समूहमें वारिवर्षण करते हैं । वे जल या शत्रुके क्षेपनवान् हैं सबके द्वारा भजनीय हैं और सबके राज हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

१८ हे जनो, शूर इन्द्रके शोभन अश्वोंका हम शीघ्र ही प्रभूत वर्णन करते हैं । देवता भी इन्द्रको अश्वोंको जानते हैं । दो-दो मासोंको मिलानेपर छ ऋतुएँ होती हैं; फिर हेमन्त और शिशिरको मिला देनेपर पाँच ही ऋतुएँ होती हैं । ये ही इन्द्रके अश्व हैं । वे कालात्मक इन्द्रका वहन करती हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

१९ अन्तर्यामी होनेके कारण सबके प्रेरक, नानाविध रूपविशिष्ट त्वष्टृदेव बहुत प्रकारसे प्रजाओंको उत्पन्न करते हैं और उनका पोषण करते हैं । ये सम्पूर्ण भुवन त्वष्टाके हैं । देवताओंका महान् बल एक ही है ।

मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०॥
इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरः सदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१॥
निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२॥

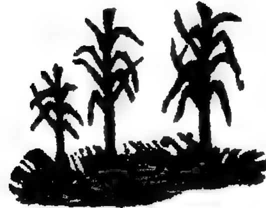


२० इन्द्रने महती और परस्पर सङ्गत द्यावापृथिवीको पशु-पक्षियोंसे युक्त किया है। वह द्यावा-पृथिवी इन्द्रके तेजसे अतिशय व्याप्त है। समर्थ इन्द्र शत्रुओंको पराजित कर उनके धनको ग्रहण करनेमें विख्यात हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

२१ विश्वधाता और हम लोगोंके राजा इन्द्र इस पृथिवी तथा अन्तरिक्षमें, हितकारी मित्रकी तरह निवास करते हैं। वीर मरुद्गण संग्रामके लिये, इन्द्रके आगे जाते हैं। वे इन्द्रके गृहमें निवास करते हैं। देवताओंका महान् बल एक ही है।

२२ हे पर्जन्यात्मक इन्द्र, ओषधियोंने तुमसे सिद्धि पायी है, जल तुमसे ही निःसृत हुआ है और पृथिवी तुम्हारे भोगके लिये धनका धारण करती है। हम लोग तुम्हारे सखा हैं। हम लोग तुम्हारे धनका भागी हो सकें। देवताओंका महान् बल एक ही है।

तृतीय अध्याय समाप्त



चतुर्थ अध्याय

५६ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । प्रजापति ऋषि । त्रिष्टुप्छन्द

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥१॥
षड्भारॉं एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुपगाव आगुः ।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥२॥
त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उतत्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३॥
अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग् व्रजन्तीः परिषीमवृञ्जन् ॥४॥

---

१ मायाविगण देवोंकी सृष्टिके अनन्तर होनेवाले, स्थिर, प्रसिद्ध, कर्मोंको हिंसित नहीं करें, विद्वान् लोग भी नहीं करें। द्रोह-रहित द्यावापृथिवी प्रजागणके साथ उन्हें विघ्नयुक्त नहीं करें। अचल पर्वतोंको कोई अवनत नहीं कर सकता है।

२ एक स्थायी संवत्सर वसन्त आदि छ ऋतुओंको धारण करता है। सत्यभूत और प्रवृद्ध आदित्यात्मक संवत्सरको रश्मियाँ प्राप्त करती हैं। चञ्चल लोकत्रय ऊपर-ऊपर अवस्थित हैं। स्वर्ग और अन्तरिक्ष गुहामें निहित हैं; एक पृथिवी ही दीख पड़ती है।

३ ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त नामक तीन उरवाले, जलवर्षक, नानारूप, तीन ऊध (वसन्त , शरत्, हेमन्त)-विशिष्ट, बहुप्रकार, प्रजावान्, उष्ण, वर्षा और शीतात्मक तीन गुणवाले तथा महत्त्ववान् संवत्सर आते हैं। सेचनसमर्थ संवत्सर, सबके लिये, उदक धारण करते हैं।

४ संवत्सर इन सकल ओषधियोंके समीप उनके पदस्वरूप जागरित हुआ है। मैं आदित्यों (चैत्रादि मासों)का मनोहर नाम उच्चारण करता हूँ। द्युतिमान् और स्वतन्त्र पथ द्वारा आनेवाला जल-समूह इस संवत्सरको चार महीनोंतक वृष्टि द्वारा प्रीत करता है और आठ महीनोंतक छोड़ देता है।

त्रीषधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरादिवो विदथे पत्यमानाः ॥५॥
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥६॥
त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥७॥
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८॥

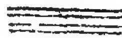


५ हे नदियो, त्रिगुणित त्रिसंख्यक स्थान देवोंका निवासस्थान है। तीनों लोकोंके निर्माता संवत्सर या सूर्य यज्ञके सम्राट् हैं। जलवती, अन्तरिक्षचारिणी इला, सरस्वती और भारती नामक तीन योषित् यज्ञके तीनों सवनोंमें आगमन करें।

६ हे सबके प्रेरक आदित्य, द्युलोकसे आकर प्रतिदिन तीन बार रमणीय धन हम लोगोंको प्रदान करो। हे हम लोगोंके रक्षक आदित्य, हम लोगोंको दिनके मध्यमें तीन बार अर्थात् तीनों सवनोंमें पशु, कनक, रत्न और गोधन प्रदान करो। हे धिषणा, हम लोगोंको जिससे धन लाभ हो, वैसा करो।

७ सविता दिनमें तीन बार हम लोगोंको धन प्रदान करें। कल्याणपाणि, राजा, मित्रा-वरुण, द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष आदि देवता सविता देवकी वदान्यतासे अपेक्षित अर्थकी याचना करें।

८ विनाश-रहित और द्युतिमान् तीन उत्तम स्थान हैं। इन तीनों स्थानोंमें कालात्मक संवत्सरके अग्नि, वायु और सूर्य नामक पुत्र शोभा पाते हैं। यज्ञवान्, शीघ्रगामी और अति-रस्कृत देवगण, दिनमें तीन बार, हमारे यज्ञमें आगमन करें।



५७ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१॥
इन्द्रः सुपूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्रवोत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२॥
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥३॥
अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४॥
या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्रानासादय पायया चा मधूनि ॥५॥

१ विवेकवान् इन्द्र मेरी देवता-विषयक स्तुतिको, इतस्ततः विहारिणी, एकाकिनी और रक्षक-विहीना धेनुकी तरह, अवगत करें । जिस स्तुतिरूपा धेनुसे तत्क्षण बहुत अपेक्षित फल दोहन किया जाता है, इन्द्र और अग्नि उस धेनुकी प्रशंसा करें।

२ इन्द्र, पूषा एवम् अभीष्टवर्षी कल्याणपाणि मित्रावरुण प्रीत होकर सम्प्रति अन्तरिक्षशायी मेघका अन्तरिक्षसे दोहन करते हैं। हे निवास-प्रद विश्वदेवगण, तुम सब इस वेदिपर विहार करो, जिससे हम लोगोंको तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख प्राप्त हो।

३ जो ओषधियाँ जलवर्षक इन्द्रकी शक्तिकी वाञ्छा करती हैं, वे ओषधियाँ नम्र होकर इन्द्रकी गर्भाधान-शक्तिको जानती हैं। फलाभिलाषिणी, सबकी प्रीणयित्री ओषधियाँ नाना रूप-धारी व्रीहि, यव, नीवारादि शस्यस्वरूप पुत्रके अभिमुख विचरण करती हैं।

४ यज्ञमें प्रस्तर धारण करके हम सुन्दर रूप-विशिष्ट द्यावापृथिवीकी स्तुति-लक्षण वचन द्वारा स्तुति करते हैं। हे अग्नि, तुम्हारी अतिशय वरणीय, कमनीय और पूज्य दीप्तियाँ मनुष्योंके लिये ऊर्ध्वमुख होती हैं।

५ हे अग्नि, तुम्हारी जो मधुमती, प्रज्ञाशालिनी ज्वाला अत्यन्त व्याप्तिविशिष्ट होकर देवोंके मध्यमें आह्वानार्थ प्रेरित होती है, उस जिह्वासे यजनीय देवोंको, हमारी रक्षाके लिये, इस कर्ममें उपवेशित कराओ। उन देवोंको हर्षकर सोमपान कराओ।

या ते अग्ने पर्वतस्येव धारा सश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥६॥

५८ सूक्त

अश्विद्वय देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१॥
सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद्विपणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमायातमर्वाक् ॥२॥
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३॥

६ हे द्युतिमान् अग्नि, नानारूपा और हम लोगोंको छोड़कर अन्यत्र नहीं जानेवाली तुम्हारी जो अनुग्रह बुद्धि है, वह हम लोगोंको अपेक्षित फल-प्रदान द्वारा वर्द्धित करे, जैसे मेघकी धारा वनस्पतियोंको वर्द्धित करती है। हे निवासप्रद जातवेदा, हम लोगोंको उसी अनुग्रह बुद्धिका प्रदान करो और सर्वजन-हितकारिणी शोभन बुद्धिको दो।

---

१ प्रीणयित्री उषा पुरातन अग्निके लिये कमनीय दुग्ध दोहन करती है। उषापुत्र सूर्य उसके मध्यमें विचरण करते हैं। शुभ्रदीप्ति दिवस सबके प्रकाशक सूर्यका वहन करता है। उसके पूर्व ही अश्विद्वयके स्तोता जागरित होते हैं।

२ हे अश्विद्वय, उत्तम रूपसे रथमें युक्त अश्वद्वय, सत्यरूप रथ द्वारा, तुम दोनोंको यज्ञमें ले आनेके लिये वहन करते हैं। यज्ञ तुम्हारे लिये उन्मुख होते हैं, जैसे माता-पिताको लक्ष्य कर पुत्र जाते हैं। हम लोगोंके निकटसे पणियोंकी आसुरी बुद्धिको, विशेष रूपसे, नष्ट करो। हम लोग तुम्हारे लिये हवि प्रस्तुत करते हैं। तुम दोनों आगमन करो।

३ हे अश्विद्वय, सुन्दर चक्रविशिष्ट रथपर आरोहण करके और उत्तम रूपसे योजित अश्वों द्वारा वाहित होकर तुम दोनों स्तुतिकारियोंके इस श्लोकका श्रवण करो। हे अश्विद्वय, पुरातन मेधाविगण क्या नहीं बोलते हैं, जो हमारी दुःखहानिके विरुद्ध तुम दोनों गमन करते हो।

आ मन्येथामागतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥४॥
तिरः पुरूचिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥
पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६॥
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरो अह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७॥
अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८॥

४ हे अश्विद्वय, तुम दोनों हमारी स्तुतिको अवगत करो और अश्वोंके साथ यज्ञमें आगमन करो। सब स्तोता स्तुतिलक्षण वचनोंसे तुम दोनोंका आह्वान करते हैं। वे मित्रकी तरह दुग्धमिश्रित और हर्षकर हवि तुम दोनोंको प्रदान करते हैं। सूर्य उषाके आगे उदित होते हैं; इसलिये आगमन करो।

५ हे अश्विद्वय, नाना देशोंको अपने तेजसे तिरस्कृत करके तुम दोनों देवयान पथ द्वारा इस स्थलमें आगमन करो। हे धनवान् अश्विद्वय, तुम दोनोंके लिये स्तोताओंका स्तोत्र उद्घोषित होता है। हे शत्रुओंके क्षयकारक, तुम दोनोंके लिये ये मदकारक सोमके पात्रविशेष सञ्चित हैं।

६ हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका पुरातन सख्य वाञ्छनीय है और कल्याणकर है। हे नेतृद्वय, तुम दोनोंका धन जह्नुकुलजामें है। तुम दोनोंके सुखकर सख्यको बारम्बार प्राप्त करके हम लोग मित्रभूत (तुम्हारे समान) होते हैं। हर्षकारक सोमके द्वारा तुम दोनोंके साथ, हम शीघ्र ही हृष्ट होते हैं।

७ शोभन सामर्थ्यसे युक्त, नित्य तरुण, असत्यरहित एवम् शोभन फलके दाता हे अश्विद्वय, वायु और नियुद्गणके साथ मिलकर अहीन और सोमपायी तुम दोनों दिवसके शेषमें सोम पान करो।

८ हे अश्विद्वय, प्रचुर हवि तुम दोनोंके निकट गमन करती है। दोषरहित और कर्मकुशल स्तोता लोग स्तुतिलक्षण वचनों द्वारा तुम दोनोंकी परिचर्या करते हैं। स्तोताओं द्वारा आकृष्ट, जलप्रद रथ द्यावापृथिवीके मध्यमें सद्यः गमन करता है।

अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमागतं दुरोणे ।
रथो ह्वां भूरिवर्पः करिक्रत् सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥६॥

५९ सूक्त

मित्र देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥
प्र स मित्रमर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥
अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३॥

---

६ हे अश्विद्वय, जो सोम अत्यन्त मधुर रससे मिश्रित हुआ है, उसका पान करो। तुम लोगोंका धनदानकारी रथ सोमाभिषव करनेवाले यजमानके संस्कृत गृहमें बारम्बार आगमन करता है।

---

१ स्तुत होनेपर मित्र देवता सकल लोकको कृष्यादि कार्यमें प्रवर्तित करते हैं। वृष्टि द्वारा अन्न और यज्ञको उत्पन्न करते हुए मित्र देवता पृथ्वी और द्युलोक दोनोंका धारण करते हैं। कर्मवान् मनुष्योंको, चारो तरफसे, मित्र देवता अनुग्रह दृष्टिसे देखते हैं। मित्रके उद्देशसे घृत-विशिष्ट हव्य प्रदान करो।

२ हे आदित्य, मित्र, यज्ञयुक्त होकर जो मनुष्य तुम्हें हविरन्न प्रदान करता है, वह अन्नवान् हो। तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर वह मनुष्य किसीसे भी विनष्ट और अभिभूत नहीं होता है। तुम्हें जो हविः देता है, उस पुरुषको दूर अथवा निकटसे पाप छू नहीं सकता है।

३ हे मित्र, रोग-वर्जित होकर, अन्नलाभसे हृष्ट होकर और पृथिवीके विस्तीर्ण प्रदेशमें मितजानु होकर हम सर्वत्रगामी आदित्यके व्रत (कर्म) के निकट अवस्थिति करते हैं। हम लोगोंके ऊपर आदित्य अनुग्रह-बुद्धि करें।

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४॥
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥५॥
मित्रस्य चर्षणीधृतो वो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमं ॥६॥
अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः ।
अभिश्रवोभिः पृथिवम् ॥७॥
मित्राय पञ्च ये मिरेजना अभिष्टिशवसे । सदेवान्विश्वान्बिभर्ति ॥८॥
मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इषइष्टव्रता अकः ॥९॥



४ नमस्कारयोग्य, सुन्दर सुखविशिष्ट, स्वामी, अत्यन्त बलविशिष्ट और सबके विधाता यह सूर्य प्रादुर्भूत हुए हैं। ये यज्ञार्ह हैं। इनके अनुग्रह और कल्याणकर वात्सल्यको हम यजमान प्राप्त कर सकें।

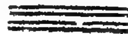
५ जो आदित्य महान् हैं, जो सकल लोकके प्रवर्तक हैं, नमस्कार द्वारा उनकी उपासना करना उचित है। वे स्तुति करनेवालोंके प्रति प्रसन्नमुख होते हैं। स्तुतियोग्य मित्रके लिये प्रीतिकर हव्य अग्निमें अर्पित करो।

६ वृष्टि द्वारा मनुष्योंके धारक मित्रदेवका अन्न और सबके द्वारा भजनीय धन अतिशय कीर्तियुक्त है।

७ जिस मित्रदेवने अपनी महिमासे द्युलोकको अभिभूत किया है, उसीने कीर्तियुक्त हो-कर पृथिवीको प्रचुर अन्नविशिष्ट किया है।

८ निषादको लेकर पाँचो वर्ण शत्रुजयकारी और बलविशिष्ट मित्रके उद्देशसे हव्य प्रदान करते हैं। मित्र अपने स्वरूपसे समस्त देवगणको धारण करते हैं।

९ देवों और मनुष्योंके मध्यमें जो व्यक्ति कुशच्छेदन करता है, उसे मित्रदेव कल्याणकर अन्न प्रदान करते हैं।



६० सूक्त

ऋभुगण देवता । विश्वामित्र ऋषि । जगती छन्द ।

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१॥
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२॥
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३॥
इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४॥

१ हे ऋभुगण, तुम लोगोंके कर्मको सब कोई जानता है। हे मनुष्यगण, तुम सब सुधन्वाके पुत्र हो। तुम लोग जिस सकल कर्म द्वारा शत्रुपराभवोपयुक्त और तेजोविशिष्ट होकर यज्ञीय भागको प्राप्त करते हो, कामना-कालमें, उस सकल कर्मको तुम लोग जान जाते हो।

२ हे ऋभुओ, जिस शक्तिके द्वारा तुम लोगोंने चमसको विभक्त किया था, जिस प्रज्ञा-बलसे गो-शरीरमें चर्मयोजना की थी और जिस मनीषाके द्वारा इन्द्रके अश्वद्वयका निर्माण किया था, उन्हीं सकल कर्मों द्वारा तुम लोगोंने यज्ञभागार्हत्व देवत्व प्राप्त किया है ।

३ मनुष्यपुत्र ऋभुगणने यागादि कर्म करके इन्द्रके सखित्वको प्राप्त किया है। पूर्वमें मरण-धर्मा होकर भी वे इन्द्रके सखित्वसे प्राण धारण करते हैं । सुधन्वाके पुण्य-कार्यकारी पुत्रगण कर्मबल और यागादि-बलसे व्याप्त होकर अमृतत्वको प्राप्त हुए हैं।

४ हे ऋभुगण, तुम लोग इन्द्रके साथ एक रथपर आरोहण करके सोमाभिषवके स्थानमें गमन करो। पीछे मनुष्योंकी स्तुतियोंको ग्रहण करो। हे अमृत-फलवाहक सुधन्वाके पुत्रो, तुम्हारे शोभन कर्मोंकी इयत्ता कोई नहीं कर सकता है । हे ऋभुओ, तुम्हारी सामर्थ्यकी इयत्ता भी कोई नहीं कर सकता है ।

इन्द्र ऋभुर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममावृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वानृभिः ॥५॥

इन्द्र ऋभुमान् वाजवान् मत्स्वेह नोस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥६॥

इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुपयाहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७॥

६१ सूक्त

उषा देवता । विश्वामित्र ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनुव्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

५ हे इन्द्र, तुम वाज (अन्न या ऋभुओंके भ्राता)-विशिष्ट हो। ऋभुओंके साथ तुम, अच्छी तरहसे, जल द्वारा सिक्त और अभिषुत सोमको दोनों हाथोंसे ग्रहण करके पान करो। हे मघवन्, तुम स्तुति द्वारा प्रेरित होकर यजमानके गृहमें, सुधन्वाके पुत्रोंके साथ, सोमपानसे हृष्ट होते हो।

६ हे बहुस्तुत इन्द्र, ऋभु और वाजसे युक्त होकर तथा इन्द्राणीके साथ होकर हमारे इस तृतीय सवनमें आनन्दित होओ। हे इन्द्र, तीनों सवनोंमें सोमपानके लिये ये दिन तुम्हारे लिये नियत हुए हैं। किन्तु देवोंके व्रत और मनुष्योंके कर्मोंके साथ सकल दिन तुम्हारे लिये नियत हुए हैं ।

७ हे इन्द्र, तुम स्तोताओंके अन्नोंका सम्पादन करते हुए वाजयुक्त ऋभुओंके साथ, इस यज्ञमें स्तोताओंके स्तोत्रोंके अभिमुख आगमन करो। मरुद्गण भी शतसंख्यक गमनकुशल अश्वोंके साथ यजमानके सहस्र प्रकारसे प्रणीत अध्वरके अभिमुख आगमन करें।

---

१ हे अन्नवती तथा धनवती उषा, प्रकृष्ट ज्ञानवती होकर तुम स्तोत्र करनेवाले स्तोताके स्तोत्रका ग्रहण करो। हे सबके द्वारा वरणीया, पुरातनी, युवतीकी तरह शोभमाना और बहुस्तोत्रवती उषा, तुम यज्ञकर्मको लक्ष्य कर आगमन करो।

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व ॥३॥
अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आपृथिव्याः ॥४॥
अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत् प्र रोचना रुरुचे रण्वसन्दृक् ॥५॥
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६॥

२ हे मरणधर्म-रहिता, सुवर्णमय रथवाली उषा देवी, तुम प्रिय सत्यरूप वचनका उच्चारण करनेवाली हो । तुम सूर्य-किरणके सम्बन्धसे शोभमाना होओ। प्रभूत बलयुक्त जो अरुणवर्ण अश्व हैं, वे सुखपूर्वक रथमें योजित किये जा सकते हैं । वे तुम्हें आवहन करें।

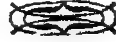
३ हे उषा देवी, तुम निखिल भूतजातके अभिमुख आगमनशीला, मरणधर्म-रहिता और सूर्यकी केतु-स्वरूपा हो। तुम आकाशमें उन्नत होकर रहती हो । हे नवतरा उषा, तुम एक मार्गमें विचरण करनेकी इच्छा करती हुई, आकाशमें चलनेवाले सूर्यके रथाङ्गकी तरह, पुनः-पुनः उसी मार्गमें प्रवृत्त होओ ।

४ जो धनवती उषा, वस्त्रकी तरह विस्तीर्ण अन्धकारको क्षयित करती हुई सूर्यकी पत्नी होकर गमन करती है, वही सौभाग्यवती और सत्कार्यशालिनी उषा द्युलोक और पृथ्वीके अवसानसे प्रकाशित होती है।

५ हे स्तोताओ, तुम लोगोंके अभिमुख उषा देवी शोभमाना होती है। तुम लोग नमस्कार द्वारा उसकी शोभन स्तुति करो। स्तुतिको धारण करनेवाली उषा आकाशमें ऊर्ध्वाभिमुख तेजको आश्रित करती है। रोचनशीला और रमणीयदर्शना उषा अतिशय दीप्त होती है।

६ जो उषा सत्यवती है, उसे सब कोई द्युलोकके तेजःप्रभावसे जानते हैं । धनवती उषा नानाविध रूपसे युक्त होकर द्यावापृथिवीको व्याप्त करके रहती है । हे अग्नि, तुम्हारे अभिमुख आनेवाली, भासमाना उषा देवीसे हविकी याचना करनेवाले तुम रमणीय धनको प्राप्त करते हो।

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन् वृषा मही रोदसी आविवेश ।
महो मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा ॥७॥



६२ सूक्त

१—३ तकके इन्द्रावरुणा, ४—६ तकके बृहस्पति, ७—९ तकके पूषा, १०—१२ तकके सविता, १३—१५ तकके सोम, १६—१८ तकके मित्रावरुणा देवता। विश्वामित्र ऋषि, किसी-किसीके मतसे अन्तिम तीन ऋचाके जमदग्नि ऋषि। १—३ तक त्रिष्टुप् और शेष गायत्री छन्द।

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मासिनं भरथः सखिभ्यः ॥१॥
अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥२॥
अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान् होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३॥

---

७ वृष्टि द्वारा जलके प्रेरक आदित्य सत्यभूत दिवसके मूलमें उषाका प्रेरण करके, विस्तीर्ण द्यावापृथिवीके मध्यमें प्रवेश करते हैं। तदनन्तर महती उषा मित्र और वरुणकी प्रभास्वरूपा होकर, सुवर्णकी तरह, अपनी प्रभाको अनेक देशोंमें प्रसारित करती है।

---

१ हे मित्रावरुण, शत्रुओं द्वारा अभिमन्यमान; अतएव भ्रमणशीला तुम्हारी ये प्रजायें जिससे तरुण वयस्क शत्रुओं द्वारा हिंसित नहीं हों। तुम लोगोंका तादृश यश और कहाँ है, जिससे तुम लोग हम बन्धुओंके लिये अन्न-सम्पादन करते हो।

२ हे इन्द्रावरुण, धनकी इच्छा करनेवाले ये महान् यजमान, रक्षा या अन्नके लिये, तुम दोनोंका सर्वदा आह्वान करते हैं। मरुद्गण, द्युलोक और पृथिवीके साथ मिलित होकर तुम दोनों मेरी स्तुति सुनो।

३ हे इन्द्रावरुण, हम लोगोंको वही अभिलषित धन हो। हे मरुद्गण, सर्वकर्म-समर्थ पुत्र और पशुसङ्घ हम लोगोंको हो। सबके द्वारा भजनीय देव-पत्नियाँ शरण (गृह) द्वारा हम लोगोंकी रक्षा करें। होत्रा भारती [होत्रा अग्निपत्नी, भारती सूर्यपत्नी] उदार वचनों द्वारा हम लोगोंका पालन करें।

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥४॥
शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आचके ॥५॥
वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६॥
इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७॥
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीम वा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥८॥
योविश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत् ॥९॥
तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१०॥
देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या । भगस्य राति मीमहे ॥११॥
देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२॥

---

४ हे सब देवोंके हितकर बृहस्पति, हम लोगोंके पुरोडाश (हवि) आदिका सेवन करो। तदनन्तर हवि देनेवाले यजमानको तुम उत्तम धन दो।

५ हे ऋत्विको, तुम लोग यज्ञ-समूहमें, अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा, विशुद्ध बृहस्पतिकी परिचर्या करो। मैं शत्रुओं द्वारा अनभिभवनीय बलकी याचना करता हूँ।

६ मनुष्योंके लिये अभिमतफलवर्षक, विश्वरूप नामक गोवाहनसे युक्त, अतिरस्करणीय और सबके द्वारा भजनीय बृहस्पतिके निकट में अभिमत फलकी याचना करता हूँ।

७ हे दीप्तिमान् पूषा, यह नवीनतम और शोभन स्तुतिरूप वचन तुम्हारे लिये हैं। इस स्तुतिका उच्चारण हम लोग तुम्हारे लिये करते हैं।

८ हे पूषा, मेरी उस स्तुतिका ग्रहण करो। स्त्रीकामी व्यक्ति जैसे स्त्रीके अभिमुख आगमन करता है, वैसे ही तुम इस हर्षकारिणी स्तुतिके अभिमुख आगमन करो।

९ जो पूषा निखिल लोकको विशेष रूपसे देखते हैं और उसे देखते हैं, वही पूषा हम लोगोंके रक्षक हों।

१० जो सविता हम लोगोंकी बुद्धिको प्रेरित करता है, सम्पूर्ण श्रुतियोंमें प्रसिद्ध उस द्योतमान जगत्स्रष्टा परमेश्वरके संभजनीय परब्रह्मात्मक तेजका हम लोग ध्यान करते हैं।

११ हम लोग धनाभिलाषी होकर स्तुति द्वारा द्योतमान सवितासे भजनीय धनके दानकी याचना करते हैं।

१२ कर्मनेता मेधावी अध्वर्युगण बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर, यजनीय हवि और शोभन स्तोत्रों द्वारा सविता देवताकी अर्चना करते हैं।

सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३॥
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४॥
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥१५॥
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥
उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७॥
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥१८॥

१३ पथज्ञ सोम जानेवालोंको स्थान दिखाते हैं। उपवेशनकारी देवोंके लिये संस्कृत यज्ञ-स्थानमें गमन करते हैं ।

१४ सोम हम स्तोताओंके लिये एवम् द्विपदों, चतुष्पदों और पशुओंके लिये रोगशून्य अन्न प्रदान करें ।

१५ सोमदेव हम लोगोंके अन्न या आयुको बढ़ाते हुए और कर्मविघातक शत्रुओंको अभिभूत करते हुए हम लोगोंके यज्ञस्थानमें उपवेशन करें ।

१६ हे शोभनकर्मकारी मित्रावरुण, हम लोगोंके गोष्ठको दुग्धपूर्ण करो। हम लोगोंके आवास-स्थानको मधुर रससे पूर्ण करो ।

१७ हे विशुद्धकर्मकारी मित्रावरुण, तुम दोनों बहुतों द्वारा स्तुत हो एवम् हविरन्न या स्तोत्र द्वारा वर्द्धमान हो। दीर्घ स्तुतियुक्त होकर तुम लोग धन या बलके महत्त्वसे विराजमान होओ।

१८ हे मित्रावरुण, तुम दोनों जमदग्नि नामक महर्षि द्वारा अथवा अग्निको प्रज्वलित करनेवाले विश्वामित्र द्वारा स्तुत होकर यज्ञदेशमें उपवेशन करो। तुम दोनों ही कर्मफलके वर्द्धयिता हो। सोमपान करो ।

तृतीय मण्डल समाप्त



चतुर्थ मण्डल

३ अष्टक । ४ मण्डल । ४ अध्याय । १ अनुवाक ।

१ सूक्त ।

अग्नि देवता २—४ ऋचाके वरुण देवता । वामदेव ऋषि । अष्टि, अतिजगती, धृति, त्रिष्टुप् छन्द ।*

त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इतिक्रत्वा न्येरिरे ।
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वादेवमादेवं जनत प्रचेतसं
विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥ १ ॥
स भ्रातरं वरुणमग्न आववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती
यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥२॥
सखे सखायमभ्याववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्मरंह्या

---

१ हे अग्नि, तुम द्योतमान और शीघ्रगामी हो। स्पर्द्धावाले देवगण तुम्हें सर्वदा ही, युद्धके लिये, प्रेरित करते हैं; अतएव यजमान लोग तुम्हें स्तुति द्वारा प्रेरित करें । हे यजनीय अग्नि, तुम अमर, द्युतिमान और उत्कृष्ट ज्ञान-विशिष्ट हो। यज्ञ करनेवाले मनुष्योंके मध्यमें आनेके लिये देवोंने तुम्हें उत्पन्न किया है। तुम कर्माभिज्ञ हो। समस्त यज्ञोंमें उपस्थित रहनेके लिये देवोंने तुम्हें उत्पन्न किया है।

२ हे अग्नि, तुम्हारे भ्राता वरुण हैं । वे हव्यभाजन, यज्ञभोक्ता, अतिशय प्रशंसनीय, उदकवान्, अदिति-पुत्र, जलदान द्वारा मनुष्योंके धारक, सुबुद्धियुक्त और राजमान हैं । तुम ऐसे वरुण देवको स्तोताओंके अभिमुख करो।

३ हे सखिभूत दर्शनीय अग्नि, तुम अपने सखा वरुणको हमारे अभिमुख करो, जैसे गमनकुशल और रथमें युक्त अश्वद्वय शीघ्रगामी चक्रको, लक्ष्य देशके अभिमुख ले जाते हैं। हे अग्नि, तुम्हारी सहायतासे वरुणने सुखकर हव्य लाभ किया है तथा तेजोविशिष्ट मरुतोंके लिये भी सुखकर हव्य लाभ किया है। हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम हमारे पुत्र-पौत्रोंको सुखी करो। हे दर्शनीय अग्नि, हम लोगोंका कल्याण करो।

---

* चतुर्थ मण्डलके वामदेव अथवा तद्वंशीय ऋषि हैं । द्वितीय मण्डलके प्रथम सूक्तकी प्रथम ऋचाकी टिप्पणी देखिये।

अग्ने मृलीकं वरुणे सचाविदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥३॥
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेलोव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥४॥
स त्व नो अग्नेवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृलीकं सुहवो न एधि ॥५॥
अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृक् देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचिघृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६॥
त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७॥

---

४ हे अग्नि, तुम सम्पूर्ण पुरुषार्थके साधनोपायको जानते हो । हम लोगोंके प्रति क्रोध-मान वरुणके क्रोधका अपनोदन करो । तुम सबकी अपेक्षा अधिक याज्ञिक, हविर्वाही और अतिशय दीप्तिमान् हो । तुम हम लोगोंको सब प्रकारके पापोंसे, विशेष रूपसे, विमुक्त करो ।

५ हे अग्नि, रक्षादान द्वारा तुम हम लोगोंके प्रत्यासन्न होओ । उषाके विनष्ट होनेपर प्रातःकालमें, अग्निहोत्रादि कार्यकी सिद्धिके लिये, तुम हम लोगोंके अत्यन्त निकटस्थ होओ । हम लोगोंके लिये जो वरुणकृत जलोदरादि रोग और पाप हैं, उनका विनाश करो । तुम यजमानों-के लिये अत्यन्त फलप्रद हो । तुम इस सुखकर हविका भक्षण करो । हम तुम्हारा उत्तम रूपसे आह्वान करते हैं; हमारे निकट आगमन करो ।

६ उत्तम रूपसे भजनीय अग्निदेवका प्रशंसनीय अनुग्रह, मनुष्योंके लिये, अत्यन्त भजनीय तथा स्पृहणीय होता है, जैसे क्षीराभिलाषी देवोंके लिये गौओंका तेजोयुक्त, क्षरणशील और उष्ण दुग्ध स्पृहणीय होता है और जैसे मनुष्योंके लिये पयस्विनी गौ भजनीय होती है ।

७ अग्निदेवका प्रसिद्ध, उत्तम और यथार्थभूत अग्नि, वायु तथा सूर्यात्मक तीन जन्म सबके द्वारा स्पृहणीय है । अनन्त, आकाशमें अपने तेज द्वारा परिवेष्टित, सबके शोधक, दीप्तियुक्त और अत्यन्त दीप्यमान स्वामी अग्नि हमारे यज्ञमें आगमन करें ।

स दूतो विश्वेदभिवष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८॥
स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्यारशनया नयन्ति ।
सक्षेत्यस्य दुर्यासु साधन् देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥९॥
स तु नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०॥
स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीले ॥११॥
प्रशर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्तप्रियासो जनयन्त वृष्णे ॥१२॥

८ दूत, देवोंके आह्वानकारी, सुवर्णमय रथोपेत, रमणीय ज्वालाविशिष्ट अग्नि समस्त यज्ञकी कामना करते हैं। रोहिताश्व, रूपवान् और सदा कान्तियुक्त अग्नि, अन्न द्वारा समृद्ध गृहकी तरह, रमणीय हैं।

९ अग्नि यज्ञमें विनियुक्त होते हैं। वे यज्ञमें प्रवृत्त मनुष्योंको जानते हैं। अध्वर्युगण महती रशना द्वारा, उत्तर वेदिमें, उनका प्रणयन करते हैं। यजमानके गृहोंमें अभीष्ट-साधन करते हुए वे निवास करते हैं। वे द्योतमान अग्नि, धनियोंके साथ, एकत्र वास करते हैं।

१० स्तोताओं द्वारा, भजनीय जो उत्कृष्ट रत्न अग्निका है, उस रत्नको सर्वज्ञ अग्नि हमारे अभिमुख प्रेरित करें। मरण-धर्मरहित समस्त देवोंने, यज्ञके लिये, अग्निका उत्पादन किया है। द्युलोक उनके पालक और जनक हैं। अध्वर्युगण घृतादि आहुतियों द्वारा यथार्थभूत अग्निको सिञ्चित करते हैं।

११ अग्नि ही श्रेष्ठ हैं। वे यजमानोंके गृहोंमें और महान् अन्तरिक्षके मूल स्थानमें उत्पन्न हुए हैं। अग्नि पादरहित और शिरोवर्जित हैं। वे शरीरके अन्तर्भागका गोपन करके, जलवर्षी मेघके निलयमें, अपनेको धूमाकार बनाते हैं।

१२ हे अग्नि, तुम स्तुतियुक्त उदकके उत्पत्तिस्थानमें, मेघके कुलायभूत (घोंसला) अन्तरिक्षमें, वर्तमान हो। तेज तुम्हारे निकट सर्वप्रथम उपस्थित होता है। जो अग्नि स्पृहणीय, नित्य तरुण, कमनीय और दीप्तिमान् हैं, उन्हीं अग्निके उद्देशसे सप्त होता स्तुति करते हैं।

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभिप्रसेदुर्ऋतमाशुषाणा: ।
अश्मव्रजा: सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवाना: ॥१३॥
ते मर्मृजत दद्दवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो विवोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभिकारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभि: ॥१४॥
ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परिसन्तमद्रिम् ।
दृह्ळं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रु: ॥१५॥
ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रि: सप्तमातु: परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुव दरुणीर्यशसा गो: ॥१६॥
नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आसूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥१७॥

---

१३ इस लोकमें, हमारे पितृपुरुषों (अङ्गिरा आदि) ने, यज्ञ करनेके लिये, अग्निके अभिमुख गमन किया था। प्रकाशके लिये उषा देवीका आह्वान करते हुए उन लोगोंने, अग्नि-परिचर्याके बलसे, पर्वतबिलान्तर्वर्ती अन्धकारके मध्यसे दोहवती धेनुओंको बाहर किया था।

१४ उन लोगोंने, पर्वतको विदीर्ण करते समय, अग्निकी परिचर्या की थी। अन्य ऋषियोंने उनके कर्मका कीर्त्तन सर्वत्र किया था। उन्हें पशुओंको बचानेके उपाय ज्ञात थे। अभिमत फलप्रद अग्निका स्तवन करते हुए उन्होंने ज्योति लाभ किया था; और, बुद्धिबलसे यज्ञ किया था।

१५ अङ्गिरा आदि कर्मोंके नेता और अग्निकी कामनावाले थे। उन्होंने मनसे गो-लाभकी इच्छा करके द्वारनिरोधक, दृढ़बद्ध, सुदृढ़, गौओंके अवरोधक एवम् सर्वतः व्याप्त गोपूर्ण गोष्ठ-रूप पर्वतका, अग्निविषयक स्तुति द्वारा, उद्घाटन किया था।

१६ हे अग्नि, स्तोत्र करनेवाले अङ्गिरा आदिने ही पहले-पहल जननी वाक्के सम्बन्धी स्तुतिसाधक शब्दोंको जाना, पश्चात् वचन-सम्बन्धी सत्ताईस छन्दोंको प्राप्त किया। अनन्तर इन्हें जाननेवाली उषाका स्तवन किया एवम् सूर्यके तेजके साथ अरुणवर्णा उषा प्रादुर्भूत हुई।

१७ रात्रिकृत अन्धकार उषा द्वारा प्रेरित होनेपर विनष्ट हुआ। अन्तरीक्ष दीप्त हुआ। उषा देवीकी प्रभा उद्गत हुई। मनुष्योंके सत् और असत् कर्मोंका अवलोकन करते हुए सूर्यदेव महान् अजर पर्वतके ऊपर आरूढ़ हुए।

आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१६॥
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥२०॥

---

२ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥१॥

---

१८ सूर्योदयके अनन्तर अङ्गिरा आदिने पणियों द्वारा अपहृत गौओंको जानकर, पीछेकी ओरसे, उन गौओंको अच्छी तरहसे देखा एवम् दीप्तियुक्त धन धारण किया । इनके समस्त गृहोंमें यजनीय देवगण आये । वरुण-जनित उपद्रवोंका निवारण करनेवाले हे मित्रभूत अग्नि, जो तुम्हारी उपासना करता है, उसे सत्य फल लाभ हो ।

१६ हे अग्नि, तुम अत्यन्त दीप्तिमान्, देवोंके आह्वाता, विश्वपोषक और सर्वापेक्षा यागशील हो । तुम्हारे उद्देशसे हम स्तुति करते हैं । यजमान लोग, तुम्हें आहुति देनेके लिये, गौओंके ऊधःप्रदेशसे शुद्ध दुग्धका दोहन नहीं करते हैं और न सोमलता-सम्बन्धी शोधित अन्नको ही गृहमें प्रक्षिप्त करते हैं । वे लोग केवल तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

२० अग्नि समस्त यज्ञार्ह देवोंके पोषक हैं । अग्नि सम्पूर्ण मनुष्योंके लिये अतिथिवत् पूज्य हैं । स्तोताओंके अन्नभोजी अग्नि, स्तोताओंके लिये, सुखकर हों ।

---

१ जो मरणधर्म-रहित अग्नि, मनुष्योंके मध्यमें, सत्यवान् होकर निहित हैं, जो दीप्तिमान् अग्नि इन्द्रादि, देवताओंके मध्यमें, शत्रुओंके पराभवकर्ता हैं, वे ही अग्नि देवोंके आह्वाता और सबकी अपेक्षा अधिक यज्ञ करनेवाले हैं । वे अपनी महिमासे प्रदीप्त होनेके लिये उत्तर वेदिपर स्थापित हुए हैं एवम् हवि द्वारा यजमानोंको स्वर्ग भेजनेके लिये स्थापित हुए हैं ।

इह त्वं सूनो सहसो नो अद्यजातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्राँश्च ॥२॥
अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्माँश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥३॥
अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णूमरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदुवह सुहविषे जनाय ॥४॥
गोमाँ अग्नेविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इलावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥५॥
यस्त इध्मं जभरत् सिष्विदानो मूर्धानं वाततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात् सीमघायत उरुष्य ॥६॥

२ हे बलपुत्र अग्नि, तुम आज हमारे इस कार्यमें संस्कृत हुए हो। हे दर्शनीय अग्नि, तुम ऋजु, मांसल, दीप्तिमान् और बलवान् अश्वोंको रथमें युक्त करके जन्मविशिष्ट देव और मनुष्योंके मध्यमें, हव्य पहुँचानेके लिये, दूत बनकर जाते हो।

३ हे अग्नि, तुम सत्यभूत हो। मैं तुम्हारे रोहितवर्णवाले अश्वद्वयकी स्तुति करता हूँ। वे अश्व मनकी अपेक्षा भी अधिक वेगवान् हैं, वे अन्न और जलका क्षरण करते हैं। तुम दीप्तिमान् अश्वद्वयको रथमें युक्त करके देवों और मनुष्योंके मध्यमें प्रवेश करो।

४ हे अग्नि, तुम्हारा अश्व उत्तम है, रथ उत्तम है और धन भी उत्तम है। इन मनुष्योंके मध्यमें शोभन हविवाले यजमानके लिये अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्राविष्णु, मरुद्गण और अश्विद्वयका आनयन करो।

५ हे बलवान् अग्नि, हमारा यह यज्ञ गोविशिष्ट, मेषविशिष्ट और अश्वविशिष्ट हो। जो यज्ञ अध्वर्यु और यजमानविशिष्ट है, वह यज्ञ सर्वदा अप्रधृष्य, हविरन्नसे युक्त तथा पुत्र-पौत्रवान् हो एवम् अविच्छिन्न अनुष्ठानसे संयुक्त, धनसम्पन्न, बहुत धनोंका हेतुभूत और उपदेष्टाओंसे युक्त हो।

६ हे अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारे लिये स्वेद (पसीनेसे)-युक्त होकर लकड़ियोंको ढोता है, जो तुम्हें प्राप्त करनेकी कामनासे अपने मस्तकको काष्ठभारसे उत्तप्त करता है, उसे तुम धनवान् बनाते हो और उसका पालन करते हो। जो कोई उसको अनिष्ट-कामना करता है, उससे तुम उसकी रक्षा करो।

यस्ते भराद्न्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आदेवयुरिनधत्ते दुरोणे तस्मिन्रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥७॥
यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वेदम् आहेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥८॥
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वियोषन्नैनमंहः परिवरदघायोः ॥९॥
यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीते दसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥१०॥
चित्तिमचित्तिं चिनवद्विविद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥११॥

७ हे अग्नि, अन्नकी इच्छा करनेपर जो कोई तुम्हें देनेके लिये हविरन्न धारण करता है, जो तुम्हें हर्षकर सोम प्रदान करता है, जो अतिथि-रूपसे तुम्हारा उत्तर वेदिपर प्रणयन करता है और जो व्यक्ति देवत्वकी इच्छा करके तुम्हें गृहमें समिद्ध करता है, उसका पुत्र धर्मपथमें निश्चल और औदार्यविशिष्ट हो ।

८ हे अग्नि, जो मनुष्य रात्रिकालमें और जो व्यक्ति उषाकालमें तुम्हारी स्तुति करता है एवम् जो यजमान प्रिय हव्यसे युक्त होकर तुम्हें प्रसन्न करता है, तुम अपने गृहमें सुवर्ण-निर्मित सज्जा (काठी)-विशिष्ट अश्वकी तरह विचरण करते हुए उस यजमानकी, दरिद्रतासे, रक्षा करो ।

९ अग्नि, तुम अमर हो । जो यजमान तुम्हारे लिये हव्य प्रदान करता है, जो तुम्हारे लिये स्रुक्को संयत करता है, जो तुम्हारी परिचर्या करता है, वह स्तोत्र करनेवाला यजमान धन-शून्य नहीं हो, हिंसकोंका आहनन उसका स्पर्श नहीं करे ।

१० हे अग्नि, तुम आनन्दयुक्त और दीप्तिमान् हो । तुम जिस मनुष्यका सुसम्पादित और हिंसा-रहित अन्न भक्षण करते हो, हे युवतम, वह होता निश्चय ही प्रीत होता है । अग्निके परिचर्याकारी जो यजमान यज्ञके वर्द्धयिता हैं, हम उन्हींके होंगे ।

११ अश्वपालक जिस तरहसे अश्वोंके कान्त एवम् दुर्वह पृष्ठोंको पृथक् कर सकते हैं, उसी तरह विद्वान् अग्नि पाप और पुण्यको पृथक् करें । हे अग्निदेव, हम लोगोंको सुन्दर पुत्रसे युक्त धन दो । तुम दाताको धन दो और अदाताके समीपसे उसकी रक्षा करो ।

कविं शशासुः कवयो दब्धानि धारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥१२॥
त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३॥
अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४॥
अधा मातुरुषसः सप्तविप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५॥
अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ॥१६॥

---

१२ हे अग्नि, मनुष्योंके गृहोंमें निवास करनेवाले, अतिरस्कृत देवोंने तुम मेधावीको, होता होनेके लिये, कहा है। हे अग्नि, तुम मेधावी हो, यज्ञस्वामी हो, अतएव तुम अपने चञ्चल तेज-से दर्शनीय और अद्भुत देवोंको देखो।

१३ हे दीप्तिमान् युवतम अग्नि, तुम मनुष्योंकी अभिलाषाके पूरक एवम् उत्तर वेदिपर प्रणयनके योग्य हो। जो यजमान, तुम्हारे लिये, सोमाभिषव करता है, तुम्हारी परिचर्या करता है और तुम्हारा स्तवन करता है, उसकी रक्षाके लिये तुम उसे प्रभूत, आह्लादकर तथा उत्तम धन दो।

१४ हे अग्नि, जिस लिये हम लोग तुम्हारी कामनासे हाथ, पैर और शरीर द्वारा कार्य करते हैं, उसी लिये यज्ञरत और शोभनकर्मा अङ्गिरा आदिने, बाहु द्वारा काष्ठ मन्थन करके, तुम सत्यभूतको उत्पन्न किया है, जैसे शिल्पिगण रथ निर्माण करते हैं।

१५ हम सात व्यक्ति (वामदेव और छ अङ्गिरा) प्रथम मेधावी हैं। हम लोगोंने माता उषाके समीपसे अग्निके परिचारकों या रश्मियोंको उत्पन्न किया है। हम द्योतमान आदित्यके पुत्र अङ्गिरा हैं। हम दीप्तिमान् होकर उदक-विशिष्ट पर्वतका या मेघका भेदन करेंगे।

१६ हे अग्नि, हम लोगोंके श्रेष्ठ, पुरातन और सत्यभूत यज्ञमें रत पितृपुरुषोंने दीप्त स्थान तथा तेज प्राप्त किया था। उन्होंने उक्थोंका उच्चारण करके अन्धकारको विनष्ट किया था तथा पणियों द्वारा अपहृत अरुणवर्णा गौओंको या उषाको प्रकाशित किया था।

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७॥
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां तज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८॥
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥१९॥
एता ते अग्न उचथानि वेधो वोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्रयन्धि ॥२०॥



१७ सुन्दर यज्ञादि कार्यमें रत दीप्तियुक्त तथा देवाभिलाषी स्तोता, धौंकनी द्वारा, निर्मल लोहेकी तरह, अपने मनुष्य जन्मको, यागादि कार्य द्वारा, निर्मल करते हैं। वे अग्निको दीप्त तथा इन्द्रको प्रवृद्ध करते हैं। चारो ओर उपवेशन करके उन्होंने महान् गो-समूहको प्राप्त किया था।

१८ हे तेजस्वी अग्नि, जिस तरह अन्न-विशिष्ट गृहमें पशु-समूह रहता है, वैसे ही अङ्गिरा आदि देवोंके गो-समूहके निकट हैं। उनके द्वारा लायी गयी गौओंसे प्रजा समर्थ हुई थी। आर्य-अपत्य वर्द्धन-समर्थ और मनुष्य पोषण-समर्थ हुए थे।

१९ हे अग्नि, हम तुम्हारी परिचर्या करते हैं, जिससे हम शोभन कर्मवाले होते हैं। तमोनिवारिका उषा सकल तेज धारण करती है। वह, पूर्ण रूपसे, आह्लादकर अग्निको बहुधा धारण करती है। तुम द्योतमान हो। हम तुम्हारे मनोहर तेजकी परिचर्या करते हैं।

२० हे विधाता अग्नि, तुम मेधावी हो। हम तुम्हारे उद्देशसे इस सम्पूर्ण उक्थका उच्चारण करते हैं, तुम इसका सेवन करो। तुम उद्दीप्त होकर हमें विशेष रूपसे धनवान् करो। तुम बहुतों द्वारा वरणीय हो। तुम हम लोगोंको महान् धन प्रदान करो।



३ सूक्त

अग्नि देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥१॥
अयं योनिश्चकृमा यं वयन्ते जायेव पत्य उशती सुवासाः।
अर्वाचीनः परिवीतो निषीदेमा उते स्वपाक प्रतीचीः ॥२॥
आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृलीकाय वेधः।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीले ॥३॥
त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित् स्वाधीः।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४॥
कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कं न आगः।
कथा मित्राय मीह्लुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५॥

---

१ हे यजमानो, यज्ञके अधिपति, देवोंके आह्वाता, द्यावा-पृथिवीके अन्नदाता, सुवर्णकी तरह प्रभावाले और शत्रुओंको रुलानेवाले रुद्रात्मक अग्निकी, अपनी रक्षाके लिये, वज्र-रूप मृत्युके पूर्व ही, सेवा करो।

२ हे अग्नि, पतिकामिनी, सुवस्त्राच्छादिता जाया जिस तरह पतिके लिये स्थान प्रस्तुत करती है, उसी तरह हम लोग भी उत्तर वेदिरूप प्रदेश प्रस्तुत करते हैं, यही तुम्हारा स्थान है। हे सुकर्मा अग्नि, तुम तेज द्वारा परिवृत होकर हम लोगोंके अभिमुख उपवेशन करो। यह सकल स्तुति तुम्हारे अभिमुख उपवेशन करे।

३ हे स्तोता, स्तोत्र-श्रवण-परायण, अप्रमत्त, मनुष्योंके द्रष्टा, सुखकर और अमर अग्निदेवके उद्देशसे स्तोत्र और शस्त्रका पाठ करो। प्रस्तरकी तरह सोमाभिषवकारी यजमान अग्निकी स्तुति करते हैं।

४ हे अग्नि, हम लोगोंके इस कर्मके तुम देवता होओ। हे सत्यज्ञ अग्नि, तुम सुकर्मा हो। तुम्हें हमारा स्तोत्र अवगत हो। उन्मादकारक तुम्हारे स्तोत्र कब उच्चारित होंगे? हमारे गृहमें तुम्हारे साथ कब सखाभाव होगा?

५ हे अग्नि, वरुणके निकट तुम हम लोगोंकी पापजन्य निन्दा क्यों करते हो? अथवा सूर्यके निकट क्यों निन्दा करते हो? हम लोगोंका क्या अपराध है? अभिमत फलदाता मित्र और पृथिवीको तुमने क्यों कहा? अथवा अर्यमा और भग नामक देवोंसे ही तुमने क्यों कहा?

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभं ये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥६॥
कथा महे पुष्टिं भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥७॥
कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८॥
ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत् पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥९॥
ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१०॥

---

६ हे अग्नि, जब तुम यज्ञमें वर्द्धमान होते हो, तब उस कथाको क्यों बोलते हो ?- प्रकृष्ट बलयुक्त, शुभप्रद, सर्वत्रगामी, सत्यके नेता वायुको वह कथा क्यों कहते हो ? पृथिवीको क्यों कहते हो ? हे अग्नि, पापी मनुष्योंको मारनेवाले रुद्रदेवको वह कथा क्यों कहते हो ?

७ हे अग्नि, महान्, पुष्टिप्रद पूषाको वह पाप-कथा क्यों कहते हो ? यज्ञभाजन, हविःप्रद रुद्रको वह क्यों कहते हो ? बहुस्तुति-भाजन विष्णुको पापकी कथा क्यों कहते हो ? बृहत् संवत्सर अथवा निर्ऋतिको वह कथा क्यों कहते हो ?

८ हे अग्नि, सत्यभूत मरुद्गणको वह कथा (मेरा अपराध) क्यों कहते हो ? पूछे जानेपर महान् सूर्यको वह कथा क्यों कहते हो ? देवी अदितिको और त्वरितगमन वायुको क्यों कहते हो ? हे सर्वज्ञ जातवेदा, तुम द्युलोकके कार्यका साधन करो ।

९ हे अग्नि, हम सत्यभूत यज्ञके साथ नित्य सम्बद्ध दुग्धकी याचना, गौओंके निकट, करते हैं । अपक्व होकर भी वह गौ मधुर और पक्व दुग्ध धारण करती है । वह कृष्णवर्णा होकर भी शुभ्र, पुष्टिकारक और प्राणधारक दुग्ध द्वारा मनुष्योंका पोषण करती है ।

१० अभिमत फलवर्षक और श्रेष्ठ अग्नि सत्यभूत और पुष्टिकर दुग्ध द्वारा सिक्त होते हैं । अन्नद अग्नि एकत्र अवस्थिति करके, सर्वत्र तेज द्वारा, विचरण करते हैं । जलवर्षक सूर्य अन्तरिक्ष या मेघसे पयोदोहन करते हैं ।

ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परिषदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥११॥
ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजो न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्रसदमित् स्रवितवे दधन्युः ॥१२॥
मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥१३॥
रक्षाणो अग्ने तव रक्षणेभीरारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रतिष्फुर विरुज वीड्वंहो जहि रक्षो महिचिद्वावृधानम् ॥१४॥
एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान् स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सन्ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५॥

---

११ मेधातिथि आदिने यज्ञ द्वारा गो निरोधक पर्वतको विदीर्ण करके फेंक दिया था, और, गौओंके साथ मिले थे । कर्मोंके नेता उन अङ्गिरोगणने सुखपूर्वक उषाको प्राप्त किया था । तदनन्तर सूर्यदेव, मन्थन द्वारा अग्निके उत्पन्न होनेपर, उदित हुए ।

१२ हे अग्नि, मरण-रहिता, विघ्नशून्या और मधुर जलयुक्ता देवी नदियाँ यज्ञ द्वारा प्रेरित होकर, जानेके लिये प्रोत्साहित अश्वकी तरह, सर्वदा प्रवाहित होती हैं ।

१३ हे अग्नि, जो कोई हमारी हिंसा करता है, उसके यज्ञमें तुम कभी भी नहीं जाना । किसी दुष्ट बुद्धिवाले प्रतिवासी (पड़ोसी) के यज्ञमें नहीं जाना । हमें छोड़कर दूसरे बन्धुके यज्ञमें नहीं जाना । तुम कुटिलचित्त भ्राताके ऋण (हवि) की कामना नहीं करना । हम लोग भी मित्र या शत्रु द्वारा प्रदत्त धनका भोग नहीं करेंगे । केवल तुम्हारे ही द्वारा प्रदत्त धनका भोग करेंगे ।

१४ हे सुयज्ञ अग्नि, तुम हम लोगोंके रक्षक हो । तुम हव्य द्वारा प्रीत होकर आश्रय दान द्वारा हमारी रक्षा करो । तुम हम लोगोंको प्रदीप्त करो । हम लोगोंके दृढ़ पापका तुम विनाश करो एवम् महान् और वर्द्धमान राक्षसका विनाश करो ।

१५ हे अग्नि, हमारे इस अर्चनीय शास्त्र द्वारा तुम प्रीतमना होओ । हे शूर, हमारे इस स्तोत्र-सहित अन्नका ग्रहण करो । हे हविरन्नके गृहीता अग्नि, मन्त्रोंका सेवन करो । देवोंके उद्देशसे प्रयुक्त स्तुति तुम्हें संवर्द्धित करे ।

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥

४ सूक्त

रक्षोदाग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१॥
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान सन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥२॥
प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे दघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥३॥

१६ हे विधाता अग्नि, तुम कर्मविषयको जानेवाले और उत्कृष्ट द्रष्टा हो । हम प्राज्ञ लोग, तुम्हारे उद्देशसे, फलप्रापक, गूढ़, अतिशय वक्तव्य और हम कवियों द्वारा प्रथित इस समस्त वाक्यका, स्तोत्र और शस्त्रोंके साथ, उच्चारण करते हैं ।

---

१ हे अग्नि, तुम अपने तेजःपुञ्जको विस्तारित करो, जैसे व्याध अपने जालको विस्तारित करता है । जैसे अमात्यके साथ राजा हाथीके ऊपर गमन करता है, वैसे ही तुम भयशून्य तेजःसमूहके साथ गमन करो । तुम शीघ्रगामिनी सेनाका अनुगमन करके शत्रु-सैन्यको हिंसित करो और शत्रुओंको नष्ट करो । अत्यन्त तीक्ष्ण तेज द्वारा तुम राक्षसोंका भेदन करो ।

२ हे अग्नि, तुम्हारी भ्रमणकारिणी और शीघ्रगामिनी रश्मियाँ सर्वत्र प्रसृत होती हैं । तुम अत्यन्त दीप्तिमान् हो । अभिभवसमर्थ तेजोराशि द्वारा तुम शत्रुओंको दग्ध करो । शत्रु तुम्हें निरुद्ध नहीं कर सकते हैं । तुम जुहू द्वारा तापप्रद तथा पतनशील विस्फुलिङ्गको और उल्का (तेजःपुञ्ज) को सर्वत्र विकीर्ण करो ।

३ हे अग्नि, तुम अतिशय वेगवान् हो । शत्रुओंको बाधा देनेवाली रश्मियोंको तुम शत्रुओंके प्रति प्रेरित करो । कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता है । जो कोई दूरसे हम लोगोंकी अनिष्ट-कामना करता है अथवा जो निकटसे अनिष्ट करनेकी इच्छा करता है, तुम उसके निकटसे इस सकल प्रजाकी रक्षा करो । हम लोग तुम्हारे हैं । जिससे कोई शत्रु हम लोगोंको पराभूत नहीं कर सके ।

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्वन्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचातं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४॥
ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अवस्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिम जामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥५॥
स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो विदुरो अभिद्यौत् ॥६॥
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७॥
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सन्ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनुद्यून् ॥८॥

---

४ हे तीक्ष्ण ज्वालाविशिष्ट अग्नि, उठो, राक्षसोंको मारनेके लिये प्रस्तुत होओ । शत्रुओंके ऊपर ज्वालाजालका विस्तार करो। तेजोराशि द्वारा शत्रुओंको भली भाँति दग्ध करो । हे समीद्ध अग्नि, जो व्यक्ति हमारे साथ शत्रुता करता है, उस व्यक्तिको, शुष्क काष्ठकी तरह, तुम दग्ध कर दो।

५ हे अग्नि, तुम राक्षसोंको मारनेके लिये उद्यत होओ । हमसे जितने अधिक बलवान् हैं, उन सबको एक-एक करके मारो । अपने देव-सम्बन्धी तेजको आविष्कृत करो । प्राणियोंको क्लेश देनेवालोंके दृढ़ धनुष्को ज्या-शून्य करो और पूर्वमें पराजित अथवा अपराजित शत्रुओंको विनष्ट करो ।

६ युवतम अग्नि, तुम गमनशील और प्रधान हो । जो कोई तुम्हारे लिये स्तुति प्रेरित करता है, वह पुरुष तुम्हारे अनुग्रहको प्राप्त करता है। तुम यज्ञस्वामी हो । तुम उसके लिये समस्त शोभन दिनोंको, धनोंको और रत्नोंको ग्रहण करो । तुम उसके गृहके अभिमुख द्योतित होओ।

७ हे अग्नि, जो व्यक्ति नित्य सङ्कल्पित हव्य द्वारा अथवा उक्थ मन्त्र द्वारा तुम्हें प्रीत करनेकी इच्छा करता है, वह पुरुष सौभाग्यवान् और सुदाता हो। वह कठिनतासे लाभ करनेके योग्य अपनी सौ वर्षोंकी आयुको प्राप्त करे । उस यजमानके लिये सब दिन शोभन हों । वह यज्ञफल-साधन-समर्थ हो।

८ हे अग्नि, हम तुम्हारी अनुग्रह-बुद्धिकी पूजा करते हैं । तुम्हारे उद्देशसे उच्चारित वाक्य प्रतिध्वनित होकर तुम्हारी स्तुति करे। हम लोग पुत्र-पौत्रादिके साथ उत्तम रथ और उत्तम अश्वोंसे युक्त होकर तुम्हारी परिचर्या करेंगे। तुम हम लोगोंके लिये प्रतिदिन धन धारण करो।

इह त्वा भूर्याचरेदुपत्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनुद्यून् ।
क्रीड़न्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९॥
यस्त्वास्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् ॥१०॥
महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११॥
अस्वप्नजस्तरणय: सुशेवा अतन्द्रासोवृका अश्रमिष्ठा: ।
ते पायव: सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव न: पान्त्वमूर ॥१२॥
ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभु: ॥१३॥

९ हे अग्नि, तुम अहर्निश प्रदीप्त होते हो। इस लोकमें पुरुष, तुम्हारे समीप, तुम्हारी परिचर्या प्रतिदिन करते हैं। हम भी शत्रुओंके धनको आत्मसात् करके, अपने गृहमें पुत्र-पौत्रोंके साथ विहार करते हुए, प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी परिचर्या करते हैं।

१० हे अग्नि, जो पुरुष सुन्दर अश्वयुक्त होकर, यागयोग्य धनविशिष्ट होकर और व्रीहि आदि धनसे संयुक्त रथके साथ तुम्हारे समीप गमन करता है, उस पुरुषके तुम रक्षक होओ। जो पुरुष अनुक्रमसे अतिथियोग्य पूजा तुम्हें प्रदान करता है, उसके तुम सखा होओ।

११ हे होता, युवतम और प्रज्ञावान् अग्नि, स्तोत्र द्वारा जो बन्धुता उत्पन्न हुई है, उसके द्वारा हम महान् राक्षसरूप शत्रुओंको भग्न करें। यह स्तोत्रात्मक वचन पिता गोतमके निकटसे हमारे समीप आया है। तुम शत्रुओंके विनाशक हो। तुम हमारे स्तुति-वचनको जानो।

१२ हे सर्वज्ञ अग्नि, तुम्हारी रश्मियाँ सतत जागरूक, सर्वदा गमनशील, सुखान्वित, आलस्य-रहित, अहिंसित, अश्रान्त, परस्पर सङ्गत और रक्षणक्षम हैं। वे इस स्थानपर उपवेशन करके हमारी रक्षा करें।

१३ हे अग्नि, रक्षा करनेवाली तुम्हारी इन रश्मियोंने, कृपा करके, ममताके पुत्र चक्षुहीन दीर्घतमाकी, शापसे, रक्षा की थी। तुम सर्व-प्रज्ञावान् हो। तुम आदरपूर्वक उन रश्मियोंका पालन करते हो। तुम्हारे शत्रु तुम्हें विनष्ट करनेकी इच्छा करके भी तुम्हारा विनाश नहीं कर सकते हैं।*

* उचथ्य ऋषिकी पत्नी ममता गर्भिणी थी। उसके देवर बृहस्पतिने एक दिन उसके साथ सम्भोग किया; किन्तु पूर्वसे ही वर्तमान गर्भस्थ रेतने उनसे रेतःसेक-कालमें कहा कि, "मैं यहाँ वर्तमान हूँ, आप रेतःक्षेपण नहीं करें।" बृहस्पतिने उसे अन्धा होनेका शाप दिया। वही दीर्घतमा हुआ। पीछे अग्निकी स्तुति करके दीर्घतमाने आँखें पायीं।—सायण।

त्वया वयं सधन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥१४॥
अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५॥

१४ हे अग्नि, तुम्हारा गमन लज्जाशून्य है । हम स्तोता, तुम्हारे अनुग्रहसे, समान धन-वाले होकर तुम्हारे द्वारा रक्षित हों। तुम्हारी प्रेरणासे अन्न लाभ करें । हे सत्यविस्तारक और पाप-नाशक, निकटस्थ या दूरस्थ शत्रुओंको विनष्ट करो तथा अनुक्रमसे समस्त कार्य (इस सूक्तमें प्रतिपादित) करो ।

१५ हे अग्नि, इस प्रदीप्त स्तुति द्वारा हम तुम्हारी परिचर्या करें । हमारे इस स्तोत्रको प्रतिगृहीत करो । स्तुतिविहीन राक्षसोंको भस्मसात् करो । हे मित्रोंके पूजनीय अग्नि, शत्रु और निन्दकोंके परिवादसे हमारी रक्षा करो ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त



पञ्चम अध्याय

५ सूक्त

वैश्वानर अग्नि देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

वैश्वानराय मीह्लुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोपस्तभायदुपमिंन रोधः ॥१॥
मो निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान्।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२॥
साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूह्लं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥३॥
प्रतां अग्निर्बभसत्तिग्मजंभस्तपिष्ठेन शोचिषायः सुराधाः।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४॥

---

१ समान रूपसे प्रीतियुक्त होकर हम यजमान वैश्वानर नामक अभीष्टवर्षी, महान् दीप्ति-युक्त अग्निको किस प्रकारसे हव्य प्रदान करें? स्तम्भ जिस तरहसे छादन (छप्पर) को धारण करता है, उसी तरहसे वे सम्पूर्ण अतएव बृहत् शरीर द्वारा द्युलोकका धारण करते हैं।

२ हे होताओ, जो अग्निदेव हव्ययुक्त होकर मरणशील और परिपक्व बुद्धिविशिष्ट हम यजमानोंको धन दान करते हैं, उनकी निन्दा मत करो। वे मेधावी, अमर और प्रज्ञावान् हैं। वे वैश्वानर, नेतृश्रेष्ठ एवम् महान् हैं।

३ मध्यम और उत्तम रूप स्थानद्वयको परिव्याप्त करनेवाले, तीक्ष्ण तेजोविशिष्ट, प्रभूत सारवान्, अभीष्टवर्षी और धनवान् अग्नि अत्यन्त गुप्त गोपदकी तरह रहस्य हैं। वे ज्ञातव्य हैं। महान् स्तोत्रको विशेष रूपसे जानकर विद्वान् हमें कहें।

४ विद्वान् मित्र और वरुणके प्रिय एवम् स्थिर तेजको जो द्वेषी हिंसित करता है, उसे सुन्दर धनविशिष्ट और तीक्ष्णदन्त अग्नि अत्यन्त सन्तापकर तेज द्वारा, दग्ध करें।

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५॥
इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥६॥
तमिन्वेश्वसमना समानमभिक्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधिचारुपृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥७॥
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहाहितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥८॥
इदमुत्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधिदीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥९॥

---

५ भ्रातृरहिता, विपथगामिनी योषित्‌की तरह तथा पतिविद्वेषिणी दुष्टाचारिणी स्त्रीकी तरह यज्ञविहीन, अग्निविद्वेषी, सत्यरहित तथा सत्यवचनशून्य पापी नरकस्थानको उत्पन्न करता है।

६ हे शोधक अग्नि, हम तुम्हारे कर्मका परित्याग नहीं करते हैं। क्षुद्र व्यक्तिको जैसे गुरु भार दिया जाता है, उसी तरह तुम हमें प्रभूत धन दान करो। वह धन शत्रुघर्षक, अन्नयुक्त, दूसरों-के द्वारा अनवगाहनीय महान् स्पर्शनयोग्य एवम् सात प्रकार (सात ग्राम्य पशु और सात वन्य पशु) का है।

७ यह सुयोग्य एवम् सबके प्रति समान शोधयित्री स्तुति, उपयुक्त पूजाविधिके साथ वैश्वानरके निकट शीघ्र गमन करे। वह वैश्वानरके आरोहणकारी दीप्त मण्डल पृथ्वीके निकटसे अचल द्युलोकके ऊपर विचरण करनेके लिये, पूर्व दिशामें आरोपित हुई है।

८ लोग कहते हैं कि, दोग्धागण जलकी तरह जिस दुग्धका दोहन करते हैं, उस दुग्ध को वैश्वानर गुहामें छिपा रखते हैं। वे विस्तीर्ण पृथ्वीका प्रिय एवम् श्रेष्ठ स्थानकी रक्षा करते हैं। मेरे इस वाक्यके अतिरिक्त और क्या वक्तव्य हो सकता है?

९ क्षीरप्रस्रविणी गौ अग्नि होत्रादि कर्ममें जिनकी सेवा करती है, जो अन्तरिक्षमें अत्यन्त दीप्तिमान् हैं, जो गुहामें निहित हैं, जो शीघ्र स्पन्दमान हैं और जो शीघ्र गमनकारी हैं, वे महान् और पूज्य हैं। सूर्य मण्डलात्मक वैश्वानरको हम जानते हैं।

अधद्यु तानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्तिषद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१०॥
ऋतं वोचे नमसा पृच्छमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत् पृथिव्याम् ॥११॥
किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥
का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥१३॥
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुना तृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥ १४ ॥

१० इसके अनन्तर पिता-मातास्वरूप द्यावापृथिवीके मध्यमें व्याप्त होकर दीप्तिमान् वैश्वानर गौके ऊधःप्रदेशमें निगूढ़ रमणीय दुग्धको मुख द्वारा पान करनेके लिये प्रबोधित हों । अभीष्टवर्षी, दीप्त और प्रयत वैश्वानरकी जिह्वा माता गौके ऊधःप्रदेशरूप उत्कृष्ट स्थानमें, पान करनेकी इच्छासे, वर्तमान है ।

११ हम यजमान पूछे जानेपर नमस्कारपूर्वक, सत्य बोलते हैं । हे जातवेदा, तुम्हारी स्तुति द्वारा यदि हम इस धनको प्राप्त करें, तो तुम्हीं इस धनके स्वामी होओ । तुम सम्पूर्ण धनके स्वामी होओ । पृथ्वीमें जितने धन हैं और द्युलोकमें जितने धन हैं, उन सब धनोंके तुम स्वामी हो ।

१२ इस धनका साधनभूत धन क्या है ? इसका हितकर धन क्या है ? हे जातवेदा, तुम जानते हो, हमें कहो । इस धनकी प्राप्तिके लिये जो मार्ग है, उसका गूढ़ और उत्कृष्ट उपाय हमसे कहो ? हम जिससे गन्तव्य स्थानको निन्दित होकर नहीं प्राप्त करें ।

१३ पूर्व आदि सीमा क्या है ? पदार्थ ज्ञान क्या है ? और रमणीय पदार्थसमूह क्या है ? शीघ्रगामी अश्व जिस तरहसे संग्रामके अभिमुख गमन करता है, उसी तरह हम इन्हें अधिगत करेंगे । द्युतिमती, मरणरहिता और आदित्यकी पत्नी प्रसवित्री उषा किस समय हम लोगोंके लिये प्रकाशित होकर व्याप्त होंगी ?

१४ हे अग्नि, अन्नरहित, उक्थ मन्त्र और आरोपणीय अल्पाक्षर वचन द्वारा अतृप्त मनुष्य अभी इस लोकमें तुम्हें क्या कहता है ? अर्थात् हविर्विहीन वाक्य द्वारा कुछ लाभ नहीं हो सकता है । हविरादि साधनसे हीन जन दुःख प्राप्त करते हैं ।

अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं नम आरुरोच ।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

ऊर्ध्व ऊषुणो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्रवेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥१॥
अमूरो होता न्यसादि विक्ष्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥२॥
यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।
उदुस्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥३॥

१५ समिद्ध, अभीष्टवर्षी और निवासप्रद अग्निका तेजःसमूह, यज्ञगृहमें, दीप्त होता है। यजमानके मङ्गलके लिये वे दीप्त तेजका परिधान करते हैं; इसलिये उनका रूप रमणीय है। वे अनेक यजमानों द्वारा स्तुत होकर द्योतित होते हैं, जैसे अश्व आदि धनसे राजा द्योतित होता है।

---

१ हे यज्ञहोता अग्नि, तुम श्रेष्ठ याज्ञिक हो। तुम हम लोगोंसे ऊद्ध्र्व स्थानमें अवस्थित करो। तुम सम्पूर्ण शत्रुओंके धनको जीतो। तुम स्तोताओंकी स्तुतिको प्रवर्द्धित करो।

२ प्रगल्भ, होमनिष्पादक, हर्षयिता और प्रकृष्ट ज्ञानविशिष्ट अग्निदेव यज्ञमें, प्रजाओंके मध्यमें, स्थापित होते हैं। वे उदित सूर्यकी तरह ऊदुर्ध्वमुख होते हैं; और, स्तम्भकी तरह, द्युलोकके ऊपर, धूमका धारण करते हैं।

३ संयत और पुरातन जुहू घृतपूर्ण हुआ है। यज्ञको दीर्घ करनेवाले अध्वर्युगण प्रदक्षिण करते हैं। नवजात यूप उन्नत होता है। आक्रमणकारी और सुदीप्त कुठार पशुओंके निकट गमन करता है।

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥४॥
परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वाभुवना यदभ्राट् ॥५॥
भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वीरेप आधुः ॥६॥
न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽग्निर्दीदाय मानषीषु विक्षु ॥७॥
द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो नदन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥८॥

४ कुशके विस्तृत होनेपर और अग्नि समिद्ध होनेपर अध्वर्यु, देवोंको प्रीत करनेके लिये, उत्थित होते हैं । होमनिष्पादक और पुरातन अग्नि अल्प हव्यको भी बहुत कर देते हैं तथा पशुपालकोंकी तरह पशुओंके चारो तरफ तीन बार गमन करते हैं ।

५ होता, हर्षदाता, मिष्टभाषी और यज्ञवान् अग्नि परिमितगति होकर पशुओंके चारो तरफ गमन करते हैं । अग्निका दीप्तिसमूह, अश्वकी तरह, चारो तरफ धावित होता है । अग्नि जब प्रदीप्त होते हैं, तब समस्त भूतजात भीत होते हैं ।

६ हे सुन्दर ज्वालाविशिष्ट अग्नि, तुम भीतिजनक हो और सर्वत्र व्याप्त हो । तुम्हारी मनोहर और कल्याणी मूर्ति अच्छी तरहसे दृष्ट होती है । रात्रि अन्धकार द्वारा तुम्हारी दीप्तिको निवारित नहीं कर सकती है । राक्षस आदि तुम्हारे शरीरमें पापको नहीं रख सकते हैं ।

७ हे वृष्टिको उत्पन्न करनेवाले वैश्वानर, तुम्हारा दान (या दीप्ति) किसीके द्वारा निवारित नहीं हो सकता । मातापिता-स्वरूप द्यावापृथिवी जिसे प्रेरित करनेमें शीघ्र समर्थ नहीं होती है, वह सुतृप्त और शोधक अग्नि मनुष्योंके मध्यमें, सखाकी तरह, दीप्तिमान् होते हैं ।

८ मनुष्योंकी दसो अँगुलियाँ, स्त्रीकी तरह, जिस अग्निको उत्पन्न करती हैं, वह अग्नि उषाकालमें बुध्यमान, हव्यभाजी, दीप्तिमान्, सुन्दर-वदन और तीक्ष्ण कुठारकी तरह शत्रुरूपी राक्षसोंके हन्ता हैं ।

तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आदेवतातिमह्वन्त दस्माः ॥९॥
ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥१०॥
अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यूधाः ।
होतारमग्निं मनुषो निषेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥

७ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । जगती, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द ।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१॥

९ हे अग्नि, तुम्हारे वे अश्व हमारे यज्ञके अभिमुख आहूत होते हैं । उनकी नासिकासे फेन निर्गत होता है । वे लोहितवर्ण, अकुटिल तथा सुन्दरगामी, दीप्तिमान्, युवा, सुगठित और दर्शनीय हैं ।

१० हे अग्नि, तुम्हारी वह शत्रुओंको अभिभूत करनेवाली, गमनशील, दीप्त और पूजनीय रश्मियाँ, मरुतोंकी तरह, अत्यन्त ध्वनि करती हैं, जब वे अश्वकी तरह गन्तव्य स्थानमें जाती हैं ।

११ हे समिद्ध अग्नि, तुम्हारे लिये हम लोगोंने स्तोत्र किया है । होता उक्थ (शस्त्र-रूप स्तोत्र) का उच्चारण करते हैं। यजमान तुम्हारा यजन करते हैं। अतएव तुम हम लोगोंको धन दो। मनुष्योंके प्रशंसनीय होता, अग्निकी पूजा करनेके लिये, ऋत्विक् आदि पशु आदि, धनकी कामनेसे, उपविष्ट हुए हैं।

---

१ अप्नवान् आदि भृगुवंशीयोंने, वनके मध्यमें, दावाग्नि-रूपसे दर्शनीय एवम् समस्त लोकके ईश्वर अग्निको प्रदीप्त किया था। वे होता, याज्ञिकश्रेष्ठ, स्तुतिभाजन और देवश्रेष्ठ अग्नि यज्ञ-कारियों द्वारा संस्थापित हुए हैं ।

अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ॥२॥
ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥३॥
आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥४॥
तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्तधामभिः ॥५॥
तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥६॥
ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥७॥

२ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् और मनुष्यों द्वारा स्तुतियोग्य हो। तुम्हारी दीप्ति कब प्रसृत होगी? मर्त्य लोग तुम्हें ग्रहण करते हैं।

३ मायारहित, विज्ञ, नक्षत्र-परिवृत द्युलोककी तरह और समस्त यज्ञके वृद्धिकारक अग्निके दर्शन करके ऋत्विक् आदि प्रत्येक यज्ञगृहमें उनका ग्रहण करते हैं।

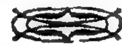
४ जो अग्नि प्रजाओंको अभिभूत करते हैं, उन्हीं शीघ्रगामी, यजमानके दूत, केतु-स्वरूप और दीप्तिमान् अग्निका आनयन, समस्त प्रजाओंके लिये, मनुष्यगण करते हैं।

५ उस होता और विद्वान् अग्निका अध्वर्यु आदि मनुष्योंने यथास्थानपर उपविष्ट कराया है। वे रमणीय, पवित्र दीप्तिविशिष्ट, याज्ञिकश्रेष्ठ और सप्त-तेजोयुक्त हैं।

६ मातृ-स्वरूप जलसमूहमें और वृक्षसमूहमें विद्यमान, कमनीय, दाह-भयसे प्राणियों द्वारा असेवित, विचित्र, गुहामें निहित, सुविज्ञ और सर्वत्र हव्यग्राही उस अग्निको अध्वर्यु आदि मनुष्योंने उपविष्ट कराया है।

७ देवगण निद्रासे विमुक्त होकर अर्थात् उषाकालमें, जलके स्थानस्वरूप सम्पूर्ण यज्ञमें, जिस अग्निको स्तोत्र आदिके द्वारा प्रसन्न करते हैं, वह महान्, सत्यवान् अग्नि नमस्कारपूर्वक दत्त हव्यको ग्रहण करके, सदा यजमानकृत यज्ञको अवगत करें—जानें।

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्तारोदसी सञ्चिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥८॥
कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९॥
सद्योजातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्नादयते विजम्भैः ॥१०॥
तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुः नः वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥



८ हे अग्नि तुम विद्वान् हो। तुम यज्ञके दूत-कार्यको जानते हो। इन दोनों द्यावापृथिवीके मध्यमें अवस्थित अन्तरिक्षको तुम भली भाँतिसे जानते हो। तुम पुरातन हो। तुम अल्प हव्यको बहुत कर देते हो। तुम विद्वान्, श्रेष्ठ और देवोंके दूत हो। तुम देवताओंको हवि देनेके लिये स्वर्गके आरोहणयोग्य स्थानमें जाते हो।

९ हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् हो। तुम्हारा गमनमार्ग कृष्णवर्ण है। तुम्हारी दीप्ति पुरोवर्तिनी है। तुम्हारा सञ्चरणशील तेज सम्पूर्ण तैजस पदार्थके मध्यमें श्रेष्ठ है। तुम्हें नहीं पाकर यजमान लोग तुम्हारी उत्पत्तिके कारण-स्वरूप काष्ठको धारण करते हैं। उत्पन्न होकर तुम तुरत ही यजमानके दूत होते हो।

१० अरणिमन्थनके अनन्तर उत्पन्न अग्निका तेज, ऋत्विक् आदिके द्वारा, दृष्ट होता है। जब अग्नि-शिखाको लक्ष्य करके वायु बहती है, तब अग्नि वृक्ष-सङ्घमें तीक्ष्ण ज्वालाको संयुक्त कर देते हैं। और, स्थिर अन्नरूप काष्ठ आदिको, तेजके द्वारा, विखण्डित करते हैं अर्थात् भक्षण करते हैं।

११ अग्नि क्षिप्रगामी रश्मिसमूह द्वारा अन्नरूप काष्ठ आदिको शीघ्र दग्ध करते हैं। महान् अग्नि अपनेको क्षिप्रगामी दूत बनाते हैं। वे काष्ठसमूहको विशेषरूपसे दग्ध करके वायुके बलके साथ सङ्गत होते हैं। घुड़सवार जैसे अश्वको बलवान् करता है, वैसे ही गमनशील अग्नि अपनी रश्मिको बलवान् करते हैं और प्रेरित करते हैं।

८ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥१॥
स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥२॥
स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३॥
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥४॥
ते स्याम अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभि: । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५॥
ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो विशृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६॥
अस्मे रायो दिवेदिवे सञ्चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥७॥
स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८॥

---

१ हे अग्नि, तुम सब धनके स्वामी अथवा सर्वविद्, देवताओंको हव्य पहुँचानेवाले, मरणधर्म-रहित, अतिशय यजनशील और देवदूत हो। हम स्तुति द्वारा तुम्हें वर्द्धित करते हैं।

२ अग्नि यजमानोंके अभीष्टफल-साधक धनके दानको जानते हैं। वे महान् हैं। वे देवलोकके आरोहण-स्थानको जानते हैं। वे इन्द्रादि देवताओंको यज्ञमें बुलावें।

३ वे द्युतिमान् हैं । इन्द्रादि देवताओंको यजमानों द्वारा क्रमपूर्वक नमस्कार करना जानते हैं । वे यज्ञगृहमें यज्ञाभिलाषी यजमानको अभीष्ट धन दान करते हैं ।

४ अग्नि होता हैं । वे दूत-कर्मको जान करके और स्वर्गके आरोहण-योग्य स्थानको जान करके, द्यावापृथिवीके मध्यमें, गमन करते हैं ।

५ जो हव्य दान देकर अग्निको प्रीत करता है, जो उन्हें वर्द्धित करता है और जो यजमान उन्हें काष्ठ द्वारा प्रदीप्त करता है, उसी यजमानकी तरह हम हों ।

६ जो यजमान अग्निकी परिचर्या करते हैं, वे अग्निका सम्भजन करके धन द्वारा विख्यात होते हैं और पुत्र-पौत्र आदिके द्वारा भी विख्यात होते हैं ।

७ ऋत्विक् आदिके द्वारा अभिलषित धन हम यजमानोंके निकट प्रति दिन आगमन करे। अन्न हम लोगोंको (यज्ञकार्यमें) प्रेरित करें।

८ अग्नि मेधावी हैं। वे बल द्वारा मनुष्योंके विनाशयोग्य दुरितको, विशेष रूपसे, विनष्ट करें।

८ सूक्त

अग्नि देवता। वामदेव ऋषि। गायत्री छन्द।

अग्ने मृड महाँ असिय ईमा देवयुं जनम्। इयेथ बर्हिरासदम् ॥१॥
स मानुषीषु दूड़भो विक्षु प्रावीरमर्त्यः। दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२॥
स सद्म परिणीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु। उत पोता निषीदति ॥३॥
उतग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे। उत ब्रह्मा निषीदति ॥४॥
वेषिह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम्। हव्या च मानुषाणाम् ॥५॥
वेषीद्वस्य दूत्यम् यस्य जुजोषो अध्वरम्। हव्यं मर्तस्य वोह्लवे ॥६॥
अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः। अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७॥
परि ते दूड़भो रथोस्माँ अश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः ॥८॥



१ हे अग्नि, तुम हम लोगोंको सुखी करो। तुम महान् हो। तुम देवोंकी कामना करनेवाले हो। तुम यजमानके निकट कुशपर बैठनेके लिये आगमन करते हो।

२ राक्षसों आदि द्वारा अहिंसनीय अग्नि मनुष्यलोकमें, प्रकर्ष रूपसे, गमन करते हैं। वे मृत्युविवर्जित हैं। वे समस्त देवोंके दूत हों।

३ यज्ञगृहमें ऋत्विक् आदिके द्वारा नीयमान होकर अग्नि यज्ञोंमें स्तुतियोग्य होता हैं। अथवा पोता होकर यज्ञ-गृहमें प्रवेश करते हैं।

४ अथवा यज्ञमें अग्नि देवपत्नी या अध्वर्यु होते हैं अथवा यज्ञगृहमें वे गृहपति होते हैं अथवा ब्रह्मा नामक ऋत्विक् होकर उपवेशन करते हैं।

५ हे अग्नि, तुम यज्ञाभिलाषी मनुष्योंके हव्यकी कामना करते हो। तुम अध्वर्यु आदिके सब कर्मोंको जाननेवाले ब्रह्मा हो। तुम यज्ञकर्मोंके अविकल उपद्रष्टा या सदस्य हो।

६ हे अग्नि, तुम हव्य वहन करनेके लिये जिस यजमानके यज्ञकी सेवा करते हो, उसके दौत्य कार्यकी भी तुम कामना करते हो।

७ हे अङ्गिरा अग्नि, तुम हमारे यज्ञकी सेवा करो, हमारे हव्यका सेवन करो और हमारे आह्वान-कारक स्तोत्रका श्रवण करो।

८ हे अग्नि, तुम जिस रथ द्वारा समस्त दिशामें गमन करके हवि देने वाले यजमानकी रक्षा करते हो, तुम्हारा वही अहिंसनीय रथ हम यजमानके चारो तरफ व्याप्त हो।

१० सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । पदपङ्क्ति, उष्णिक् आदि छन्द ।

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामात ओहैः ॥१॥

अधाह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२॥

एभिर्नो अर्कैर्भवानो अर्वाङ्स्वर्णज्योतिः ।

अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोग्ने दाशेम ।

प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥४॥

तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।

श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥५॥

घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।

तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥६॥

---

१ हे अग्नि, आज हम ऋत्विग्गण, इन्द्रादि-प्रापक स्तुति द्वारा, तुम्हें वर्द्धित करते हैं। अश्व जैसे सवारका वहन करता है, उसी तरह तुम हव्यवाहक हो । तुम यज्ञकर्त्ताकी तरह उपकारक हो। तुम भजनीय हो और अतिशय प्रिय हो ।

२ हे अग्नि, तुम इसी समय हमारे भजनीय, प्रवृद्ध, अभीष्टफल-साधक, सत्यभूत और महान् यज्ञके नेता होते हो।

३ हे अग्नि, तुम ज्योतिर्मान् सूर्यकी तरह समस्त तेजसे युक्त और शोभन अन्तःकरणवाले हो। तुम हम लोगोंके अर्चनीय स्तोत्र द्वारा नीत होओ, और, हम लोगोंके अभिमुख आगमन करो।

४ हे अग्नि, आज हम ऋत्विक् वचनों द्वारा स्तुति करके तुम्हें हव्य दान करेंगे। सूर्यकी रश्मिकी तरह तुम्हारी शोधक ज्वाला शब्द करती है। अथवा मेघकी तरह तुम्हारी ज्वाला शब्द करती है।

५ हे अग्नि, तुम्हारी प्रियतम दीप्ति अहर्निश अलङ्कारकी तरह, पदार्थोंको आश्रयित करनेके लिये, उनके समीप शोभा पाती है।

६ हे अन्नवान् अग्नि, तुम्हारी मूर्त्ति शोधित घृतकी तरह, पापरहित है। तुम्हारा शुद्ध, रमणीय तेज अलङ्कारकी तरह दीप्त होता है ।

कृतं चिद्धिष्मा सनेमि द्वेषोग्न इनोषि मर्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥७॥
शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने यस्मिन्नूधन् ॥८॥



११ सूक्त

२ अनुवाक । अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आरोचते सूर्यस्य ।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आरूपे अन्नम् ॥१॥
विषाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्रदेवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥२॥

७ हे सत्यवान् अग्नि, तुम यजमानों द्वारा कृत हो; तथापि चिरन्तन हो। तुम यजमानोंके पापको निश्चय ही दूर कर देते हो।

८ हे अग्नि, तुम द्युतिमान् हो। तुम्हारे प्रति जो हम लोगोंका सख्य और भ्रातृभाव है, वह मङ्गलजनक हो। वह सखित्व और भ्रातृकार्य, देवोंके स्थानमें और सम्पूर्ण यज्ञमें हम लोगों का, नाभिबन्धन हो।

---

१ हे बलवान् अग्नि, तुम्हारा भजनीय तेज सूर्यके समीपभूत दिवसमें चारो तरफ दीप्तिमान् होता है । तुम्हारा रोचमान और दर्शनीय तेज रात्रिमें भी दृश्यमान होता है। तुम रूपवान् हो । तुम्हारे उद्देशसे स्निग्ध और दर्शनीय अन्न हुत होता है ।

२ हे बहुजन्मा अग्नि, तुम यज्ञकारियों द्वारा स्तुत होकर स्तुतिकारी यजमानके लिये पुण्य लोकके द्वारको विमुक्त करो । हे सुन्दर तेजोविशिष्ट अग्नि, देवोंके साथ यजमानको तुम जो धन देते हो, हमें भी वही प्रभूत और अभिलषित धन दो ।

त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥३॥
त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥४॥
त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमाविवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥५॥
आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ॥६॥

---

३ हे अग्नि, हविर्वहन और देवतानयन आदि अग्नि-सम्बन्धी कार्य तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, स्तुतिरूप वचन तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं और अराधनयोग्य उक्थ तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। सत्यकर्मा और हव्यदाता यजमानके लिये वीर्ययुक्त रूप और धन भी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं ।

४ हे अग्नि, बलवान्, हव्यवाहक, महान्, यज्ञकारी और सत्यबल-विशिष्ट पुत्र तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं । देवों द्वारा प्रेरित सुखप्रद धन तुमसे ही उत्पन्न होता है और शीघ्रगामी, गतिविशिष्ट तथा वेगवान् अश्व तुमसे ही उत्पन्न हुआ है ।

५ हे अमर अग्नि, देवाभिलाषी मनुष्य स्तुति द्वारा तुम्हारी परिचर्या करते हैं । तुम देवोंमें आदि देव हो । तुम द्योतमान हो । तुम्हारी जिह्वा देवोंको हृष्ट करनेवाली है । तुम पापोंको पृथक् करनेवाले हो और राक्षसोंको दमन करनेकी इच्छावाले हो। तुम गृहपति और प्रगल्भ हो ।

६ हे बलपुत्र अग्नि, तुम रात्रि कालमें मङ्गलजनक और द्युतिमान् होकर हमारे कल्याण-के लिये सेवा करेते हो । जिस कारण तुम यजमानोंका विशेष रूपसे पालन करते हो, उसीसे तुम हम लोगोंके निकटसे अमतिको दूर करो । हम लोगोंके निकटसे पापको दूर करो और हमारे निकटसे समस्त दुर्मतिको दूर करो ।

---

१२ सूक्त

अग्नि देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक् त्रिस्ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१॥
इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमासपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥२॥
अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥३॥
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधीष्वस्माँ अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥४॥
महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शंयोः ॥५॥

---

१ हे अग्नि, जो यजमान स्रुक्को संयत करके तुम्हें प्रदीप्त करता है, जो व्यक्ति तुम्हें प्रतिदिन तीनों सवनोंमें हविरन्न देता है, हे जातवेदा, वह व्यक्ति तुम्हारे तृप्तिकर (इन्धन-दान आदि) कार्य द्वारा तुम्हारे प्रसहमान तेजको जानकर धन द्वारा शत्रुओंका पराभूत करता है ।

२ हे अग्नि, जो तुम्हारे लिये होमसाधन काष्ठका आहरण करता है, हे महान् अग्नि, जो व्यक्ति काष्ठके अन्वेषणमें श्रान्त होकर तुम्हारे तेजकी परिचर्या करता है और रात्रिकाल तथा दिवाकालमें जो तुम्हें प्रदीप्त करता है, वह यजमान प्रजा और पशुओं द्वारा पुष्ट होकर शत्रुओंको विनष्ट करता है और धन लाभ करता है ।

३ अग्नि महान् बलके ईश्वर तथा उत्कृष्ट अन्न और पशु-स्वरूप धनके स्वामी हैं । युवतम और अन्नवान् अग्नि परिचर्या करनेवाले यजमानको रमणीय धनसे संयुक्त करें ।

४ हे युवतम अग्नि, यद्यपि तुम्हारे परिचारकोंके मध्यमें हम अज्ञानवश कुछ पाप करते हैं; तथापि तुम पृथ्वीके निकट हमें सम्पूर्ण रूपसे निष्पाप कर दो । हे अग्नि, सर्वत्र विद्यमान हमारे पापोंको तुम शिथिल करो ।

५ हे अग्नि, हम तुम्हारे सखा हैं । हमने इन्द्रादि देवोंके निकट अथवा मनुष्योंके निकट जो पाप किया है, उस महान् और विस्तृत पापसे हम कभी भी विघ्न नहीं पावें । तुम हमारे पुत्र और पौत्रको पाप-रूप उपद्रवोंसे शान्ति और सुकृतजनित सुख दो ।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित् पदिषिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवोष्वस्मन् मुञ्चताव्यंहः प्रतार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६॥



१३ सूक्त

अग्नि देवता अथवा जिस मन्त्रमें जिस देवताका नामोल्लेख है, वही देवता ।

वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥१॥
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनुव्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥२॥
यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्तयह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३॥

६ हे पूजार्ह और निवासयिता अग्नि, तुमने जिस तरह पदबद्ध गौरी गौको विमुक्त किया था, उसी तरह हम लोगोंको पापसे विमुक्त करो । हे अग्नि, हमारी आयु तुम्हारे द्वारा प्रवृद्ध है, तुम इसे और प्रवृद्ध करो ।

---

१ शोभन मनवाले अग्नि तमोनिवारिणी उषाके, धनप्रकाशकालके, पूर्व ही प्रवृद्ध होते हैं । हे अश्विद्वय, तुम यजमानके गृहमें गमन करो । ऋत्विक् आदिके प्रेरक सूर्यदेव अपने तेजके साथ उषाकालमें प्रादुर्भूत होते हैं ।

२ सवितादेव उन्मुख किरणको विकासित करते हैं । रश्मियाँ जब सूर्यको द्युलोकमें आरूढ़ कराती हैं, तब वरुण, मित्र और अन्यान्य देवगण अपने-अपने कर्मोंका अनुगमन करते हैं, जैसे बलवान् वृषभ गौओंकी कामना करके, धूलि विकीर्ण करता हुआ, गौओंका अनुगमन करता है ।

३ सृष्टि करनेवाले देवोंने संसारके कार्यका परित्याग नहीं करके, सर्वतोभावसे अन्धकारको दूर करनेके लिये, जिस सूर्यको सृष्ट किया था, उस समस्त प्राणिसमूहके विज्ञाता सूर्यका आवण महान् हरिनामक सप्ताश्व करते हैं ।

वर्हिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥४॥
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवःस्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥



१४ सूक्त

अग्नि देवता अथवा जिस मन्त्रमें जिस देवताका नामोल्लेख है, वही देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥१॥
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२॥

---

४ हे द्युतिमान् सूर्य, तुम अगन्निर्वाहक रसको ग्रहण करनेके लिये तन्तुस्वरूप रश्मि-समूहको विस्तारित करते हो, कृष्णवर्णा रात्रिको तिरोहित करते हो और अत्यन्त वहनसमर्थ अश्वों द्वारा गमन करते हो । कम्पनयुक्त सूर्यकी रश्मियाँ अन्तरिक्षके मध्यमें स्थित चर्मसदृश अन्धकारको दूर करें ।

५ अदूरवर्ती अर्थात् प्रत्यक्ष उपलभ्यमान सूर्यको कोई भी बाँध नहीं सकता है । अधो-मुख सूर्य किसी प्रकार भी हिंसित नहीं होते हैं । ये किस बलसे ऊर्ध्वमुख भ्रमण करते हैं ? द्युलोकमें समवेत स्तम्भस्वरूप सूर्य स्वर्गका पालन करते हैं । इसे किसने देखा है ? अर्थात् इस तत्त्वको कोई भी नहीं जानता है ।

---

१ जातवेदा अग्निके तेजसे दीप्यमाना उषा प्रवृद्ध हुई है । हे प्रभूत गमनशाली अश्विद्वय, तुम दोनों, रथ द्वारा, हमारे यज्ञके अभिमुख आगमन करो ।

२ सविता देवता समस्त भुवनको आलोकयुक्त करके उन्मुख किरणका आश्रय लेते हैं । सबको विशेष रूपसे देखनेवाले सूर्यने अपनी किरणोंसे द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको परिपूर्ण किया है ।

आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥३॥
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

१५ सूक्त

१—६ के अग्नि देवता, ७ और ८ के सोमक राजा देवता, ९ और १० के अश्विद्वय देवता ।
वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परिणीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥१॥
परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥२॥

३ धनधारिणी, अरुणवर्णा, ज्योतिःशालिनी, महती, रश्मिविचित्रिता और विदुषी उषा आयी है। प्राणियोंको जागरित करके उषा देवी सुयोजित रथ द्वारा, सुख-प्राप्तिके लिये गमन करती है।

४ हे अश्विद्वय, उषाके प्रकाशित होनेपर अत्यन्त वहनक्षम और गमनशील अश्व तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें। हे अभीष्टवर्षिद्वय, यह सोम तुम्हारे लिये है। इस यज्ञमें सोम पान करके हृष्ट होओ।

५ अदूरवर्ती अर्थात् प्रत्यक्ष उपलभ्यमान सूर्यको कोई भी बाँध नहीं सकता है। अधोमुख सूर्य किसी प्रकार भी हिंसित नहीं होते हैं। ये किस बलसे ऊर्ध्वमुख भ्रमण करते हैं? द्युलोकमें समवेत स्तम्भस्वरूप सूर्य स्वर्गका पालन करते हैं। इसे किसने देखा है? अर्थात् इस तत्त्वको कोई भी नहीं जानता है।

---

१ होम-निष्पादक, देवोंके मध्यमें दीप्यमान और यज्ञार्ह अग्नि हमारे यज्ञमें शीघ्रगामी अश्वकी तरह परिणीत होते हैं।

२ अग्नि देवोंके लिये अन्न धारण करके, प्रतिदिन तीन बार, रथीकी तरह, यज्ञमें परिगमन करते हैं।

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥३॥

अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥४॥

अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीह्लुषः ॥५॥

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥६॥

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥७॥

उतत्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आददे ॥८॥

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९॥

तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥१०॥



---

३ अन्नके पालक, मेधावी अग्नि हवि देनेवाले यजमानको रमणीय धन देकर हविको चारो तरफसे व्याप्त करते हैं।

४ जो अग्नि देवताके पुत्र सृञ्जयके लिये पूर्व दिशामें स्थित होते हैं और उत्तर वेदी-पर समिद्ध होते हैं, वे शत्रु-नाशकारी अग्नि दीप्तियुक्त हों।

५ स्तुति करनेवाले वीर मनुष्य तीक्ष्ण तेजवाले, अभीष्टवर्षी और गमनशील अग्निके ऊपर आधिपत्यका विस्तार कर।

६ यजमान लोग अश्वकी तरह हव्यवाही, द्युलोकके पुत्रभूत सूर्यकी तरह दीप्तिमान् और सम्भजनीय अग्निकी प्रतिदिन बारम्बार परिचर्या करें।

७ सहदेवके पुत्र सोमक नामवाले राजाने जब हमें इन दोनों अश्वोंको देनेकी बात कही थी, तब हम उनके निकट आहूत होकर अश्वोंको नहीं लाभ करके, नहीं निर्गत हुए हैं।

८ सहदेवके पुत्र सोमक राजाके निकटसे, उसी दिन, उन पूजनीय और प्रयत अश्वोंको हमने ग्रहण किया था।

९ हे द्योतमान अश्विनीकुमारो, तुम दोनोंके तृप्तिकारक सहदेवके पुत्र सोमक राजा सौ वर्षकी आयुवाले हों।

१० हे द्योतमान अश्विनीकुमारो, तुम दोनों सहदेवके पुत्र सोमक राजाको दीर्घायु करो।

---

१६ सूक्त

इन्द्र देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

आसत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इन्द्धः सुषुमासुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१॥
अवस्य शूराध्वनो नान्तेस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असूर्याय मन्म ॥२॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत् सप्तकारू नहाचिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३॥
स्वर्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योतीरुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धातमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

---

१ ऋजाषी अर्थात् सोमवान् और सत्यवान् इन्द्र हमारे निकट आगमन करें। इनके अश्व हमारे निकट आगमन करें। हम यजमान इन्द्रके उद्देशसे सारविशिष्ट अन्नरूप सोमका अभिषव करगे। वे स्तुत होकर हम लोगोंके अभीष्टको सिद्ध करें।

२ हे शत्रुओंको अभिभव करनेवाले इन्द्र, इस माध्यन्दिनके सवनमें तुम हम लोगोंको विमुक्त करो, जैसे गन्तव्य मार्गके अन्तमें मनुष्य घोड़ोंको छोड़ देता है। जिससे इस सवनमें हम तुम्हें हृष्ट करें। हे इन्द्र, तुम सर्वविद् हो और असुरोंके हिंसक हो। यजमान लोग, उशनाकी तरह, तुम्हारे लिये मनोहर उक्थका उच्चारण करते हैं।

३ कवि जिस प्रकारसे गूढ़ अर्थका सम्पादन करते हैं, उसी प्रकार अभीष्टवर्षी इन्द्र कार्योंका सम्पादन करते हैं। जब सेवनयोग्य सोमका, अधिक परिमाणमें, पान करके इन्द्र हृष्ट होते हैं, तब द्युलोकसे सप्त-संख्यक रश्मियोंको सचमुच उत्पन्न कर देते हैं। स्तूयमान रश्मियाँ दिनमें भी मनुष्योंके ज्ञानका सम्पादन करती हैं।

४ जब प्रभूत, ज्योतिःस्वरूप द्युलोक रश्मियों द्वारा अच्छी तरहसे दर्शनीय होता है, तब देवगण उस स्वर्गमें निवास करनेके लिये दीप्तियुक्त होते हैं। नेतृश्रेष्ठ सूर्यने आगमन करके, मनुष्योंको अच्छी तरहसे देखनेके लिये, निविड़ अन्धकारको नष्ट कर दिया है।

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा विरेच्यभि यो विश्वाभुवना बभूव ॥५॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये विभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥६॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमादर्षि भूरिं गोत्रारुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥
अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ निमायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥९॥

५ ऋषीजी अर्थात् सोमविशिष्ट इन्द्र, अमित महिमा धारण करते हैं। वे अपनी महिमाके बलसे द्यावा और पृथिवी दोनोंको परिपूर्ण करते हैं। इन्द्रने समस्त भुवनोंको अभिभूत किया है। इन्द्रकी महिमा समस्त भुवनोंसे अधिक हुई है।

६ इन्द्र, सम्पूर्ण मनुष्योंके हितकर वृष्टि आदि कार्यको जानते हैं। उन्होंने अभिलाषकारी और मित्रभूत मरुतोंके लिये जलवर्षण किया था। जिन मरुतोंने वचनरूप ध्वनिसे पर्वतोंको विदीर्ण किया था, उन मरुतोंने इन्द्रकी अभिलाषा करके, गोपूर्ण गोशालाका आच्छादन किया है।

७ हे इन्द्र, तुम्हारे लोकपालक वज्रने जलावरक मेघको प्रेरित किया था। चेतनावती भूमि तुमसे सङ्गत हुई थी। हे शूर और वर्षणशील इन्द्र, तुम अपने बलसे लोकपालक होकर समुद्रसम्बन्धी और आकाशस्थित जलको प्रेरित करो।

८ हे बहुजनाहूत इन्द्र, जब तुमने वृष्टिजलको लक्ष करके मेघको विदीर्ण किया था, तब तुम्हारे लिये पहले ही सरमा (देवोंकी कुतिया)ने पणियों द्वारा अपहृत गौओंको प्रकाशित किया था। अङ्गिराओं द्वारा स्तूयमान होकर तुम हम लोगोंको प्रभूत अन्न प्रदान करते हो और हम लोगोंका आदर करते हो।

९ हे धनवान् इन्द्र, मनुष्य तुम्हें सम्मानित करते हैं। तुमने धन प्रदान करनेके लिये कुत्सके अभिमुख गमन किया था। याचना करनेपर शत्रुओंके उपद्रवोंसे आश्रय दान द्वारा तुमने उनकी रक्षा की थी। कपटी ऋत्विकोंके कार्योंको अपनी अनुज्ञासे जानकर तुमने कुत्सके धन-लोभी शत्रुको युद्धमें विनष्ट किया था।

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ निषदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१०॥
यामि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदोवातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं नगध्यं युयूषन् कविर्यदहन् पार्याय भूषात् ॥११॥
कुत्साय शुष्णमशुषं निबर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून् प्रमृण कुत्स्येन प्रसूरश्चक्रं बृहतादभीके ॥१२॥
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत् कृष्णा निवपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा विदर्दः ॥१३॥

१० हे इन्द्र, तुमने मनमें शत्रुओंको मारनेका संकल्प करके कुत्सके गृहमें आगमन किया था। कुत्स भी तुम्हारे साथ मैत्री करनेके लिये अतिशय आग्रहवान् हुआ था। तब तुम दोनों अपने स्थानमें उपविष्ट हुए थे। तुम्हारी सत्यदर्शिनी भार्या शची तुम दोनोंका समान रूप देख कर संशयान्विता हुई थी। *

११ जिस दिन प्राज्ञ कुत्स ग्रहणीय अन्नकी तरह ऋजुगामी अश्वद्वयको अपने रथमें युक्त करके आपत्तिसे निस्तीर्ण होनेमें समर्थ हुए थे, उस दिन हे इन्द्र, तुमने कुत्सकी रक्षा करनेकी इच्छासे उसके साथ एक रथपर गमन किया था। तुम शत्रुनाशक और वायुके सदृश घोड़ोंके अधिपति हो।

१२ हे इन्द्र, तुमने कुत्सके लिये सुखरहित शुष्णका वध किया था। दिवसके पूर्व भागमें तुमने कुयव नामवाले असुरको मारा था। बहुत परिजनोंसे आवृत होकर तुमने उसी समय वज्र द्वारा शत्रुओंको भी विनष्ट किया था। तुमने संग्राममें सूर्यके चक्रको छिन्न कर दिया था।

१३ हे इन्द्र, तुमने पिप्रु नामक असुरको तथा प्रवृद्ध मृगय नामक असुरको विनष्ट किया था। तुमने विदथिके पुत्र ऋजिश्वाको बन्दी बनाया था। तुमने पचास हजार कृष्णवर्ण राक्षसों-को मारा था। जरा जिस तरहसे रूपको विनष्ट करती है, उसी तरहसे तुमने शम्बरके नगरोंको विनष्ट किया था।

* रुरु नामके किसी राजर्षिके पुत्रका नाम कुत्स था। ये भी राजर्षि थे। शत्रुओंको हरानेमें असमर्थ होकर इन्होंने कभी इन्द्रसे सहायता माँगी थी। इन्द्र कुत्सके घर आये थे और उसके शत्रुओंको मार भगाया था। मैत्री हो जानेपर कुत्स भी इन्द्रके घर गये थे। दोनोंके रूपमें इतनी समानता थी कि, इन्द्राणी अपने पति इन्द्रको नहीं पहचान सकी थी।—सायण।

सूर उपाके तन्वं दधानो वियत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥१४॥
इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीहूळे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५॥
तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधा ॥१६॥
तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूरमुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यधस्मानस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७॥
भुवोविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमाजगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वधस्याः ॥१८॥

१४ हे इन्द्र, तुम मरण-रहित हो। जब तुम सूर्यके निकट अपना शरीर धारण करते हो, तब तुम्हारा रूप प्रकाशित होता है सूर्यके समीप सबका रूप मलिन हो जाता है; किन्तु इन्द्रका रूप और भासमान होता है। हे इन्द्र, तुम गजविशेष मृगकी तरह शत्रुओंको दग्ध करके आयुध धारण करते हो और सिंहकी तरह भयङ्कर होते हो।

१५ राक्षस-जनित भयको निवारित करनेके लिये इन्द्रकी कामना करनेवाले और धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता लोग युद्धसदृश यज्ञमें इन्द्रसे अन्नकी याचना करते हैं, उक्थों द्वारा उनकी स्तुति करते हैं और उनके निकट गमन करते हैं। इन्द्र उस समय स्तोताओंके लिये आवासस्थानकी तरह होते हैं और रमणीय तथा दर्शनीय लक्ष्मीकी तरह होते हैं।

१६ जिन इन्द्रने मनुष्योंके हितकर बहुतेरे प्रसिद्ध कार्य किये हैं, जो स्पृहणीय धनविशिष्ट हैं, जो हमारे सदृश स्तोताके लिये ग्रहणीय अन्नको शीघ्र लाते हैं, हे यजमानो, हम स्तोता लोग उन इन्द्रका शोभन आह्वान्, तुम्हारे लिये करते हैं।

१७ हे शूर इन्द्र, मनुष्योंके किसी भी युद्धमें अगर हम लोगोंके मध्यमें तीक्ष्ण अशनि-पात हो अथवा शत्रुओंके साथ अगर हम लोगोंका घोरतर युद्ध हो, तब हे स्वामिन्, तुम हम लोगोंके शरीरकी रक्षा करना। ऐसा जानो।

१८ हे इन्द्र, तुम वामदेवके यज्ञकार्यके रक्षक होओ। तुम हिंसा-रहित हो। तुम युद्धमें हम लोगोंके सुहृद् होओ। तुम मतिमान् हो। हम लोग तुम्हारे निकट गमन करें। तुम सर्वदा स्तोत्रकारियोंके प्रशंसक होओ।

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभिसन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९॥
एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नूचिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोविता तनूपाः ॥२०॥
नूष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥



१७ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनुक्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्सृजः सिन्धूंरहिना जग्रसानान् ॥१॥

१९ हे धनवान् इन्द्र, हम शत्रुओंको जीतनेके लिये समस्त युद्धमें तुम्हारी अभिलाषा करते हैं। धनी जिस तरह धन द्वारा दीप्तिमान् होता है, हम भी उसी तरह हव्ययुक्त होकर पुत्र-पौत्रादि परिजनोंके साथ दीप्तिमान् हों और शत्रुओंको अभिभूत करके रात्रि तथा सम्पूर्ण संवत्सरोंमें तुम्हारी स्तुति करें।

२० इन्द्रके साथ हम लोगोंकी मैत्री जिस कार्यसे वियुक्त नहीं हो, तेजस्वी और शरीर-पालक इन्द्र जिससे हम लोगोंके रक्षक हों, हम लोग उसी प्रकारका आचरण करेंगे। दीप्त रथनिर्माता जिस तरह रथका निर्माण करते हैं, उसी तरह हम लोग भी अभीष्टवर्षी तथा नित्य तरुण इन्द्रके लिये स्तोत्रकी रचना करते हैं।

२१ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगों द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं। जिससे हम लोग रथवान् होकर, स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

---

१ हे इन्द्र, तुम महान् हो। महत्त्वसे युक्त होकर पृथ्वीने तुम्हारे बलका अनुमोदन किया था एवम् द्युलोकने भी तुम्हारे बलका अनुमोदन किया था। लोकोंको आवृत करनेवाले वृत्र नामक असुरको तुमने बल द्वारा मारा था। वृत्रने जिन नदियोंको ग्रस्त किया था, तुमने उन नदियोंको विमुक्त कर दिया था।

तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौरेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२॥
भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥३॥
सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥४॥
य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मन्दन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥
सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्रा भवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६॥

२ हे इन्द्र, तुम दीप्तिमान् हो । तुम्हारे जन्म होनेपर द्युलोक तुम्हारे कोप-भयसे कम्पित हुआ था, पृथ्वी कम्पित हुई थी और वृष्टि प्रदानके लिये बृहत् मेघसमूह तुम्हारे द्वारा आबद्ध हुआ था । इन मेघोंने प्राणियोंकी पिपासाको विनष्ट करके मरुभूमिमें जल-प्रेरण किया था ।

३ शत्रुओंके अभिभवकर्ता इन्द्रने तेजःप्रकाशन करके और बलपूर्वक वज्रका प्रेरण करके पर्वतोंको विदीर्ण किया था । सोमपानसे हृष्ट होकर इन्द्रने वज्र द्वारा वृत्रको विनष्ट किया था । वृत्रके विनष्ट होनेपर जल आवरणरहित होकर वेगसे आने लगा था ।

४ हे इन्द्र, तुम अतिशय स्तुत्य, उत्तम वज्रविशिष्ट, स्वर्गस्थानसे अनपच्युत अर्थात् विनाशरहित और महिमावान् हो । तुम्हें जिस द्योतमान प्रजापतिने उत्पन्न किया था, वे अपनेको सुन्दर पुत्रवान् मानते थे । इन्द्रके जनयिता प्रजापतिका कर्म अत्यन्त शोभन हुआ था ।

५ सम्पूर्ण प्रजाओंके राजा, बहुजनाहूत और देवोंके मध्यमें एक मात्र प्रधान इन्द्र शत्रु-जनित भयको विनष्ट करते हैं । द्योतमान और धनवान् बन्धु इन्द्रके उद्देशसे सचमुच समस्त यजमान स्तुति करते हैं ।

६ सम्पूर्ण सोम सचमुच इन्द्रके ही हैं। ये मदकारक सोम महान् इन्द्रके लिये सचमुच हर्षकारक हैं । हे इन्द्र, तुम धनपति हो, केवल धनपति हो नहीं; बल्कि सम्पूर्ण पशुओंके भी पति हो। हे इन्द्र, धनके लिये तुम सचमुच समस्त प्रजाओंको धारण करते हो ।

त्वमध प्रथमं जायमानोमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टी: ।
त्वं प्रतिप्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्विवृश्च: ॥७॥
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधा: ॥८॥
अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एक: ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियास: सख्ये स्याम ॥९॥
अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्रकृणुते युधा गा: ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृह्ळं भयत एजदस्मात् ॥१०॥
समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वी: ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता संभरश्च वस्व: ॥११॥

७ हे धनवान् इन्द्र, पहले ही उत्पन्न होकर तुमने वृत्रभीत सम्पूर्ण प्रजाओंको धारण किया था। तुमने उदकवान् देशके उद्देशसे जलनिरोधक वृत्रासुरको छिन्न किया था।

८ अनेक शत्रुओंके हन्ता, अत्यन्त दुर्द्धर्ष शत्रुओंके प्रेरक, महान्, विनाशरहित, अभीष्ट-वर्षी और शोभन वज्रविशिष्ट इन्द्रकी स्तुति हम लोग करते हैं। जिन इन्द्रने वृत्र नामक असुरको मारा था, जो अन्नदाता और शोभन धनसे युक्त हैं तथा जो धन दान करते हैं, हम उनकी स्तुति करते हैं।

९ जो धनवान् इन्द्र संग्राममें अद्वितीय सुने जाते हैं, वे मिलित और विस्तृत शत्रु-सेनाको विनष्ट करते हैं। वे जो अन्न यजमानको देते हैं, उसी अन्नको धारण भी करते हैं। इन्द्रके साथ हम लोगोंकी मैत्री प्रिय हो।

१० शत्रुविजयी और शत्रुहिंसक होकर इन्द्र सर्वत्र प्रख्यात हैं। इन्द्र शत्रुओंके समीपसे पशुओंको छीन लाते हैं। इन्द्र जब सचमुच कोप करते हैं, तब स्थावर और जङ्गम-रूप समस्त जगत् इन्द्रसे डरने लगता है।

११ जिस धनवान् इन्द्रने असुरोंको जीता था, शत्रुओंके रमणीय धनको जीता था, अश्व-समूहको जीता था तथा अनेक शत्रुसेनाको जीता था, वह सामर्थ्यवान् नेतृश्रेष्ठ स्तोताओं द्वारा स्तुत होकर पशुओंका विभाजक तथा धनका धारक हो।

कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातु: कियत् पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूत: स्तनयद्भिरभ्रै: ॥१२॥
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँइव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३॥
अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत् ससृमाणम् ।
आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४॥
असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्त: ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोवते न कोशम् ॥१६॥

१२ इन्द्र अपनी जननीके समीप कितना बल प्राप्त करते हैं और पिताके समीप कितना बल प्राप्त करते हैं । जिन इन्द्रने अपने पिता प्रजापतिके समीपसे इस दृश्यमान जगत्‌को उत्पन्न किया था तथा उन्हीं प्रजापतिके समीपसे जगत्‌को मुहुर्मुहुः बल प्रदान किया था, वे इन्द्र गर्जनशील मेघ द्वारा प्रेरित वायुकी तरह आहूत होते हैं ।

१३ धनवान् इन्द्र किसी एक धनशून्य व्यक्तिको धनपूर्ण करते हैं अर्थात् कोई पुरुष इन्द्रकी स्तुति करके धनसमृद्ध हुआ है । वज्रयुक्त अन्तरिक्षकी तरह शत्रुविनाशक इन्द्र समूढ़ पापको विनष्ट करते हैं और स्तोताको धन प्रदान करते हैं।

१४ इस इन्द्रने सूर्यके आयुधको प्रेरित किया था और युद्धके लिये जानेवाले एतशको निवारित किया था ।* कुटिल-गति और कृष्णवर्ण मेघने, तेजके मूलभूत और जलके स्थानस्वरूप अन्तरिक्षमें स्थित इन्द्रको अभिषिक्त किया था ।

१५ जैसे रात्रिकालमें यजमान सोम द्वारा अग्निको अभिषिक्त करते हैं । ‡

१६ हम मेधावी स्तोता गौओंकी अभिलाषा करते हैं, अश्वोंकी अभिलाषा करते हैं, अन्नकी अभिलाषा करते हैं और स्त्रीकी अभिलाषा करते हैं । हम सखिताके लिये कामनापूरक, भार्याप्रद और सर्वदा रक्षक इन्द्रको, लोग जैसे कूपमें जलपात्रको अवनमित करते हैं, उसी तरह अवनमित करेंगे ।

* स्वश्व राजाने पुत्रकामनासे सूर्यकी उपासना की । सूर्य उनके पुत्र होकर प्रकट हुए । उन्होंने एतश ऋषिके साथ युद्ध किया । ऋषिने विजय पानेके लिये इन्द्रकी स्तुति की । इन्द्रने प्रसन्न होकर ऐतशकी रक्षा की । उस युद्धमें इन्द्रने सूर्यके चक्रको तोड़ दिया था ।—सायण ।

‡ यह एक पदकी ही ऋचा है, दृष्टान्तकी तरह पूर्व ऋचाके साथ सम्बद्ध है ।

त्राता नो बोधि दद्दशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमुलोकमुशते वयोधाः ॥१७॥
सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्रस्तुवते वयोधाः ।
वयं ह्याते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८॥
स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरिण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९॥
एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत् सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधिश्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥२०॥
नूष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥

---

१७ हे इन्द्र, तुम आप्त हो । रक्षक रूपसे सबको देखते हुए तुम हमारे रक्षक होओ। तुम सोमयोग्य यजमानोंके अभिद्रष्टा और सुखयिता हो । प्रजापतिके समान तुम्हारी ख्याति है । तुम पालक हो और पालकोंके मध्यमें श्रेष्ठ हो । तुम पितरोंके स्रष्टा हो । तुम स्वर्गाभिलाषी स्तोताओंके लिये अन्नप्रद होओ ।

१८ हे इन्द्र, हम तुम्हारी मैत्रीकी अभिलाषा करते हैं । तुम हमारे रक्षक होओ । तुम स्तुत होते हो, तुम हमारे सखा होओ। तुम स्तोताओंको अन्न दान करो। हे इन्द्र, हम बाधा-युक्त हो कर भी, स्तुतिरूप कर्म द्वारा, पूजा करके, तुम्हारा आह्वान करते हैं।

१९ जब इन्द्र हम लोगोंके द्वारा स्तुत होते हैं, तब वे अकेले ही अनेक अभिगन्ता शत्रुओं-को मार डालते हैं। जिस इन्द्रकी शरणमें वर्तमान स्तोताका निवारण न देवगण करते हैं, और न मनुष्यगण करते हैं, उस इन्द्रका स्तोता प्रिय होता है।

२० विविध शब्दवान्, समस्त प्रजाओंके धारक, शत्रुरहित और धनवान् इन्द्र इस प्रकार स्तुत होकर हम लोगोंके सत्य रूप अभिलषितको सम्पादित करें । हे इन्द्र, तुम समस्त जन्मधारियोंके राजा हो। स्तोता जिस महिमायुक्त यशको प्राप्त करता है, वह यश तुम अधिक परिमाणमें हम लोगोंको दे।

२१ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों दुवारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति दुवारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

१८ सूक्त

इस सूक्तमें इन्द्र, अदिति और वामदेवका कथोपकथन है; अतएव ये ही तीनों देवता और ऋषि हैं। त्रिष्टुप् छन्द।*

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवेकः॥ १॥
नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै॥ २॥
परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य॥ ३॥
किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः॥ ४॥

१ इन्द्र कहते हैं—"यह योनिनिर्गमणरूप मार्ग अनादि और पूर्वापर लब्ध है। इसी योनि-मार्गसे सम्पूर्ण देव और मनुष्य उत्पन्न हुए हैं; अतएव तुम गर्भमें प्रवृद्ध होकर इसी मार्ग द्वारा उत्पन्न होओ। माताकी मृत्युके लिये मत कार्य करो।"

२ वामदेव कहते हैं—"हम इस योनिमार्ग द्वारा नहीं निर्गत होंगे। यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। हम पार्श्वभेद करके निर्गत होंगे। दूसरोंके द्वारा अकरणीय बहुतेरे कार्य हमें करने हैं। हमें एकके साथ युद्ध करना है। हमें एकके साथ वाद-विवाद करना है।

३ "इन्द्र कहते हैं कि, 'हमारी माता मर जायगी; तथापि हम पुरातन मार्गका अनु-धावन नहीं करेंगे, शीघ्र बहिर्गत होंगे।' (इन्द्रने जो यथेच्छाचरण किया था, उसीको वामदेव कहते हैं) इन्द्रने अभिषवकारी त्वष्टाके गृहमें सोमाभिषव-फलक द्वारा अभिषुत सोमका पान, बलपूर्वक, किया था, वह सोम बहुत धन द्वारा क्रीत था।

४ "अदितिने इन्द्रको अनेक मासों और अनेक संवत्सरोंतक धारण किया था। इन्द्रने यह विरुद्ध कार्य क्यों किया था? अर्थात् गर्भमें बहुत दिनोंतक रहकर इन्द्रने अदितिको क्लेश दिया था।"

इन्द्रके ऊपर किये गये आक्षेपको सुनकर अदिति कहती हैं—"हे वामदेव, जो उत्पन्न हुए हैं और जो देवादि उत्पन्न होंगे, उनके साथ इन्द्रकी तुलना नहीं हो सकती है।

* गर्भस्थ वामदेव माताके योनिदेशसे बहिर्गत होना नहीं चाहते हैं। वे माताके पार्श्व देशको भिन्न करके उत्पन्न होना चाहते हैं। उनके इस दृढ़ सङ्कल्पको जानकर उनकी माताने उन्हें समझानेके लिये इन्द्र और अदितिको बुलाया है।—सायण।

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणान्यृष्टम् ।
अथोदस्थात् स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ ॥
एता अर्षन्त्यललाभवन्तीॠतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता विपृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥
किमुष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान् पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥ ७ ॥
ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥
ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सम्पिणग्वधेन ॥ ९ ॥

५ "गह्वररूप सूतिका-गृहमें उत्पन्न इन्द्रको निन्दनीय मानकर माताने उन्हें अतिशय सामर्थ्यवान् किया था। अनन्तर, उत्पन्न होते ही इन्द्र अपने तेजको धारण करके उत्थित हुए थे और द्यावापृथिवीको परिपूर्ण किया था।

६ "अ-ल ला शब्द करती हुई ये जलवती नदियाँ इन्द्रके महत्त्वको प्रकट करनेके लिये, हर्षपूर्वक, बहुविध शब्द करती हुई बहती हैं। हे ऋषि, तुम इन नदियोंको पूछो कि, ये क्या बोलती हैं? यह शब्द इन्द्रके माहात्म्यका सूचक है। मेरे पुत्र इन्द्रने ही उदकके आवरक मेघको विदीर्ण करके जलको प्रवर्तित किया था।

७ "वृत्रवधसे ब्रह्महत्या रूप पापको प्राप्त करनेवाले इन्द्रको निवित् क्या कहती है? जल फेन रूपसे इन्द्रके पापको धारण करता है। + मेरे पुत्र इन्द्रने महान् वज्रसे वृत्रका वध किया था। अनन्तर, इन नदियोंको विसृष्ट किया था।"

८ वामदेव कहते हैं—"तुम्हारी युवती माता अदितिने प्रमत्त होकर तुम्हारा प्रसव किया था। कुषवा नामकी राक्षसीने प्रमत्त होकर तुम्हे ग्रास बनाया था। हे इन्द्र, उत्पन्न होनेपर तुम्हें जलसमूहने प्रमत्त होकर सुखी किया था। इन्द्र प्रमत्त होकर, अपने वीर्यके प्रभावसे, सूतिका-गृहमें, राक्षसीको मारनेके लिये, उत्थित हुए थे।

९ "हे धनवान् इन्द्र, व्यंस नामक राक्षसने प्रमत्त होकर तुम्हारे हनुद्वय (चिबुकके अधोभाग) को विद्ध करके अपहृत किया था। हे इन्द्र, इसके अनन्तर अधिक बलवान् होकर तुमने व्यंस राक्षसके सिरको वज्र द्वारा पीस डाला था।

+ ब्राह्मण वृत्रको मारनेसे, इन्द्र ब्रह्महत्या पापसे आक्रान्त हुए थे। उनके पापोंको जल-समूहने फेनरूपसे ग्रहण किया था। इस तरह इन्द्र पापरहित हुए थे।—सायण।

गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीह्ळं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥ १० ॥
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व ॥ ११ ॥
कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधिमार्डीक आसीद्यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥ १२ ॥
अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥ १३ ॥



१० "सकृत्प्रसूता (एक बार ब्यायी हुई) गौ जैसे वत्स प्रसव करती है, उसी तरह इन्द्रकी माता अदिति अपनी इच्छासे सञ्चरण करनेके लिये इन्द्रको प्रसव करती है। इन्द्र अवस्थामें वृद्ध, प्रभूत बलशाली, अनभिभवनीय, अभीष्टवर्षी, प्रेरक, अनभिभूत, स्वयं गमनक्षम और शरीराभिलाषी हैं ।

११ "इन्द्रकी माता अदितिने महान् इन्द्रसे पूछा, 'हे मेरे पुत्र इन्द्र, अग्नि आदि देव तुम्हे त्याग रहे हैं।' इन्द्रने विष्णुको कहा, 'हे सखा विष्णु, तुम यदि वृत्रको मारनेकी इच्छा करते हो, तो अत्यन्त पराक्रमशाली होओ ।'

१२ "हे इन्द्र, तुम्हारे अतिरिक्त किस देवने माताको विधवा किया था! तुम जिस समय सो रहे थे अथवा जाग रहे थे; उस समय किसने तुम्हें मारनेको चाहा था ? कौन देवता सुख देनेमें तुम्हारी अपेक्षा अधिक है ? जिस कारण तुमने पिताके दोनों चरणोंको पकड़कर उनका वध किया था ?*

१३ "हमने जीवनोपायके अभावमें कुत्तेकी अतड़ीको पकाकर खाया था। हमने देवोंके मध्यमे इन्द्रके अतिरिक्त अन्य देवको सुखदायक नहीं पाया। हमने अपनी भार्याको अश्लाघनीय (असम्मानित) होते देखा। इसके अनन्तर इन्द्र हमारे लिये मधुर जल लाये।"

पञ्चम अध्याय समाप्त

* यह कथा तैत्तिरीय-संहिता (६।१।३।६) में लिखी है।

षष्ठ अध्याय

१९ सूक्त

इन्द्र देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राडिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्रवर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥
अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण विरिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृह्लान्यौभ्नादुशमान ओजोवाभिनत् ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

१ हे वज्रवान् इन्द्र, इस यज्ञमें शोभन आह्वानसे युक्त तथा रक्षक निखिल देवगण और दोनों द्यावापृथिवी, वृत्रवधके लिये, एक मात्र तुम्हारा ही सम्भजन करता हैं। तुम स्तूयमान, महान्, गुणोत्कर्षसे प्रवृद्ध और दर्शनीय हो।

२ हे इन्द्र, वृद्ध पिता जैसे युवा पुत्रको प्रेरित करते हैं, उसी तरह देवगण तुम्हें असुर-वधके लिये प्रेरित करते हैं। हे इन्द्र, तुम सत्यधिकाशस्वरूप हो। तबसे तुम समस्त लोकोंके अधीश्वर हुए हो। जलको लक्ष्य करके परिशयन करनेवाले वृत्रासुरको तुमने वध किया था। सबको प्रसन्न करनेवाली नदियोंको तुमने खनन किया था।

३ हे इन्द्र, तुमने भोगमें अतृप्त, शिथिलाङ्ग, दुर्विज्ञान, अज्ञानभावापन्न, सुप्त और सपण-शील जलको आच्छादित करके सोनेवाले वृत्रको, पौर्णमासीमें, वज्र द्वारा, मारा था।

४ वायु जैसे बल द्वारा जलको क्षोभित करती है, उसी तरह परमैश्वर्यवान् इन्द्र बल द्वारा अन्तरिक्षको, क्षीणजल करके, पास डालते हैं। बलाभिलाषी इन्द्र दृढ़ मेघको भग्न करते हैं और पर्वतोंके पक्षोंको छिन्न करते हैं।

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥
त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥
प्राग्रुवो नभन्वो न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥
पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून्।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ।
व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥ ९ ॥

५ हे इन्द्र, माताएँ जिस तरह पुत्रके निकट गमन करती हैं, उसी तरह मरुतोंने तुम्हारे निकट गमन किया था; जैसे वृत्रको मारनेके लिये तुम्हारे साथ वेगवान् रथ गया था। तुमने विशरणशील नदियोंको वारिपूर्ण किया था; मेघको भग्न किया था और वृत्र द्वारा आवृत जलको प्रेरित किया था।

६ हे इन्द्र, तुमने महती तथा सबको प्रीति देनेवाली और तुर्वीति तथा वय्य राजाके लिये अभीष्ट फल देनेवाली भूमिको अन्नसे अचल किया था तथा जलसे रमणीय किया था अर्थात् पृथ्वीको तुमने अन्न-जलसे समृद्ध किया था। हे इन्द्र, तुमने जलको सुतरणीय (सुगमतासे तैर-नेके योग्य) बना दिया था।

७ इन्द्रने शत्रुहिंसक सेनाकी तरह तटध्वंसिनी, जलयुक्ता तथा अन्नजनयित्री नदियोंको भली भाँति पूर्ण किया है। इन्द्रने जलशून्य देशोंको वृष्टि द्वारा पूर्ण किया है तथा पिपासित पथिकों-को पूर्ण किया है। इन्द्रने दस्युओंकी अधिकृता, प्रसव-निवृत्ता गौओंको दूहा था।

८ वृत्रासुरको मारकर इन्द्रने तमिस्रा द्वारा आच्छादित अनेक उषाओं तथा संवत्सरोंको विमुक्त किया था। एवं वृत्र द्वारा निरुद्ध जलको भी विमुक्त किया था। इन्द्रने मेघके चारों तरफ वर्त-मान तथा वृत्र द्वारा बध्यमान नदियोंको पृथ्वीके ऊपर बहनेके लिये विमुक्त किया था।

९ हे हरि नामक घोड़ावाले इन्द्र, तुमने उपजिह्विका (कीटविशेष) द्वारा भक्ष्यमान अग्रू-पुत्रको वल्मीक (दीमक)के स्थानसे बाहर किया था। बाहर किये जाते समय वह अग्रू-पुत्र यद्यपि अन्धा था; तथापि उसने सर्पको अच्छी तरहसे देखा था। उसके, उपजिह्विका द्वारा छिन्न, अङ्ग इन्द्र द्वारा संयुक्त हुए थे।

प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥१०॥
नूष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥



२० सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ न इन्द्रो दूरादान आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥१॥
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२॥

१० हे राजमान प्राज्ञ इन्द्र, तुम सर्ववेत्ता हो। वर्षणयोग्य और स्वयं सम्पन्न मनुष्योंके वृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंको तुमने जिस प्रकारसे किया था, वामदेव उन सकल पुरातन कर्मोंको जानकर कहते हैं।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

---

१ अभीष्टप्रद और तेजस्वी इन्द्र, हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये दूरसे आवें; हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये निकटसे आगमन करें। वे संग्राममें संगत होनेपर शत्रुओंका वध करते हैं। वे वज्रबाहु, मनुष्योंके पालक और तेजस्वी मरुतोंसे युक्त हैं।

२ हम लोगोंके अभिमुखवर्ती इन्द्र आश्रय और धन प्रदान करनेके लिये, हम लोगोंके निकट अश्वोंके साथ आवें। वज्रवान्, धनशाली और महान् इन्द्र युद्धमें उपस्थित होनेपर हमारे इस यज्ञमें उपस्थित हों।

इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत् सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥३॥
उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥४॥
वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभिमन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५॥
गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥
न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥

---

३ हे इन्द्र, तुम हम लोगोंको पुरःसर करके, हमारे इस क्रियमाण यज्ञका सम्भजन करो। हे वज्रधर, हम तुम्हारे स्तोता हैं। व्याधा जिस तरहसे मृगोंका शिकार करता है, उसी तरहसे हम तुम्हारे द्वारा, धन लाभके लिये युद्धमें जय लाभ करें।

४ हे अन्नवान् इन्द्र, तुम प्रसन्न मनसे हम लोगोंके समीप आगमन करो और हमारी कामना करके उत्तम रूपसे अभिषुत, सम्भृत और मादक सोमरसका पान करो एवम् माध्यन्दिन सेवनमें उदीयमान स्तोत्रके साथ सोम पान करके हृष्ट होओ।

५ जो पके फलवाले वृक्षकी तरह एवम् आयुधकुशल विजयी व्यक्तिकी तरह हैं और जो नूतन ऋषियों द्वारा विविध प्रकारसे स्तूयमान होते हैं, उन पुरुहूत इन्द्रके उद्देशसे हम स्तुति करते हैं। जैसे स्त्री-अभिमानी मनुष्य स्त्रीकी प्रशंसा करता है।

६ जो पर्वतकी तरह प्रवृद्ध और महान् हैं, जो तेजस्वी हैं और जो शत्रुओंको अभिभूत करनेके लिये सनातन कालमें उत्पन्न हुए हैं, वे इन्द्र जल द्वारा पूर्ण जलपात्रकी तरह, तेजःपूर्ण बृहत् वज्रका आदर करते हैं।

७ हे इन्द्र, तुम्हारे जन्मसे [उत्पन्न मात्रसे] ही कोई निवारक नहीं रहा, यज्ञादि कर्मके लिये तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धनका नाशक कोई नहीं रहा। हे बलशाली, तेजस्वी, पुरुहूत, तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम हम लोगोंको धन दो।

ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ८ ॥
कयातच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु काचिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ९ ॥
मा नो मर्धीराभरा दद्धितन्न: प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्रब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्त: ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपे: ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्य: सदास: ॥११॥



८ हे इन्द्र, तुम प्रजाओंके धन और गृहका पर्यवेक्षण करते हो और निरोधक असुरोंसे गौओंके समूहको उन्मुक्त करते हो। हे इन्द्र, तुम शिक्षाके विषयमें प्रजाओंके नेता या शासक हो और युद्धमें प्रहार करनेवाले हो। तुम प्रभूत धनराशिके प्रापक होओ।

९ अतिशय प्राज्ञ इन्द्र किस प्रज्ञाबलसे विश्रुत होते हैं? महान् इन्द्र जिस प्रज्ञाबलसे मुहुर्मुहः कर्मसमूहका सम्पादन करते हैं (उसीके द्वारा विश्रुत हैं)। वे यजमानोंके बहुल पापको विनष्ट करते हैं और स्तोताओंको धन दान करते हैं।

१० हे इन्द्र, तुम हम लोगोंकी हिंसा मत करो; बल्कि हम लोगोंके पोषक होओ। हे इन्द्र, तुम्हारा जो प्रभूत धन हव्यदाताको दान देनेके लिये है, वह धन लाकर हमें दो। हम तुम्हारा स्तव करते हैं इस नूतन दानयोग्य और प्रशस्त उक्थमें हम तुम्हारा विशेष रूपसे कीर्तन करते हैं।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरि-विशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२१ सूक्त

इन्द्र देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप छन्द।

आयात्विन्द्रोवस उप न इह स्तुत: सधमादस्तु शूर: ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्नक्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥
तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥ २ ॥
आयात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षु समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥ ३ ॥
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमुष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ॥ ४ ॥
उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ ॥

१ जिनका बल प्रभूत है । जो सूर्यकी तरह अभिभवसमर्थ बलका पोषण करते हैं, वे हम लोगोंके समीप रक्षाके लिये आवें। पराक्रमवान् और प्रवृद्ध इन्द्र हमारे साथ हृष्ट हों ।

२ हे स्तोताओं, यज्ञार्ह सम्राट्की तरह, जिनका अभिभवकारक तथा त्राणकारक कर्म शत्रुसम्बन्धिनी प्रजाओंको अभिभूत करता है, उन प्रभूतयशा तथा अतिशय धनशाली इन्द्रके बलभूत नेता मरुतोंकी, तुम लोग इस यज्ञमें, स्तुति करो ।

३ इन्द्र हम लोगोंको आश्रय देनेके लिये मरुतोंके साथ स्वर्गलोकसे, भूलोकसे, अन्तरिक्ष-लोकसे, जलसे, आदित्यलोकसे, दूर देशसे और जलके स्थानभूत मेघलोकसे यहाँ आवें।

४ जो स्थूल एवम् महान धनके अधिपति हैं, जो प्राणरूप बल द्वारा शत्रुसेनाको जीतते हैं, जो प्रगल्भ हैं और जो स्तोताओंको श्रेष्ठ धन दान करते हैं, यज्ञस्थलमें हम उन इन्द्रके उद्देशसे स्तुति करते हैं ।

५ जो निखिल लोकोंका स्तम्भन करके यथार्थ गर्जनशील वचनको उत्पन्न करते हैं और हव्य प्राप्त करके वृष्टि द्वारा अन्न दान करते हैं, जो प्रसाधनयोग्य तथा उक्थ द्वारा स्तुति-योग्य हैं, यज्ञ-गृहमें होता उन इन्द्रका आह्वान करते हैं ।

धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६ ॥
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥७॥
वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो वहन्ति ॥८॥
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥९॥
एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥१०॥

६ जब इन्द्रकी स्तुतिके अभिलाषी, यजमानके गृहमें निवासकारी, स्तोता, स्तुतिके सहित, इन्द्रके निकट, उपगत होते हैं, तब वे इन्द्र आवें। वे युद्धमें हम लोगोंकी सहायता करें। वे यजमानोंके होता हैं। उनका क्रोध दुस्तर है।

७ जगद्भर्ता, प्रजापतिके पुत्र, अभीष्टवर्षी इन्द्रका बल स्तोत्रकारी यजमानकी सेवा करता है। वह बल सचमुच यजमानोंके भरणके लिये गुहारूप हृदयमें उत्पन्न होता है, यजमानोंके गृह और कर्ममें सचमुच अवस्थान करता है तथा यजमानोंकी अभीष्टप्राप्ति और हर्षके लिये सचमुच वह बल उत्पन्न होता है। इन्द्रका बल यजमानोंका सदा पालन करता है।

८ इन्द्रने मेघके द्वारको अपावृत किया था और जलके वेगको जलसमूह द्वारा परिपूर्ण किया था; अतएव जब सुकर्मा यजमान इन्द्रको अन्न दान करते हैं, तब वे गौर मृग और गवयमृग प्राप्त करते हैं।

९ हे इन्द्र, तुम्हारा कल्याणकारक हस्तद्वय सत्कर्मका अनुष्ठान करता है एवम् तुम्हारा हस्तद्वय यजमानको धन दान करता है। हे इन्द्र, तुम्हारी स्थिति क्या है? क्यों तुम हम लोगोंको हृष्ट नहीं करते हो? क्यों तुम हम लोगोंको धन देनेके लिये हृष्ट नहीं होते हो?

१० इस प्रकार स्तुत होकर सत्यवान्, धनेश्वर और वृत्रहन्ता इन्द्र यजमानोंको धन देते हैं। हे बहुस्तुत, हम लोगोंको स्तुतिके लिये तुम हमें धन दो। जिससे हम दिव्य अन्नका भक्षण कर सकें।

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥



२२ सूक्त

३ अनुवाक । इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान् करति शुष्म्याचित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्थायो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१॥
वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत् प्रभूम ॥ ३ ॥

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

---

१ महान् बलवान् इन्द्र हम लोगोंके हविरन्नका सेवन करते हैं। वे धनवान् हैं। वे वज्र धारण करके बलसे युक्त होकर आगमन करते हैं। इन्द्र हव्य, स्तोम, सोम और उक्थको स्वीकार करते हैं ।

२ अभीष्टवर्षी इन्द्र दोनों बाहुओंसे वृष्टिकारी चतुर्धाराविशिष्ट वज्रको शत्रुओंके ऊपर फेंकते हैं। वे उग्र, नेतृश्रेष्ठ और कर्मवान् होकर आच्छादनकारिणी परुष्णी नदीकी, आश्रयके लिये, सेवा करते हैं। इन्द्रने परुष्णीके भिन्न-भिन्न प्रदेशको सखिकर्मके लिये संवृत किया था ।

३ जो दीप्तिमान्, जो दातृश्रेष्ठ और जो उत्पन्न होते ही प्रभूत अन्न तथा महाबलसे युक्त हुए थे, वे दोनों बाहुओंमें कामयमान वज्र धारण करके बल द्वारा द्युलोक और भूलोकको प्रकम्पित करते थे ।

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्नेजत क्षा: ।
आमातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत् परिज्मन्नोनुवन्त वाता: ॥ ४ ॥
ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित् सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसा विवेषी: ॥ ५ ॥
ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनव: सिस्रते वृष्ण ऊध्न ।
अधाह त्वद्वृपमणोभियाना: प्रसिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ६ ॥
अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्रस्तवन्त स्वसार: ।
यत् सीमनु प्रमुचो वद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥ ७ ॥
पिपीले अंशुर्मद्यो न सिन्धुरात्वा शमी शशमानस्य शक्ति ।
अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥ ८ ॥

४ महान् इन्द्रके जन्म होनेपर समस्त पर्वत, अनेक समुद्र, द्युलोक और पृथिवी उनके भयसे कम्पित हुई थी। बलवान् इन्द्र गतिशील सूर्यके माता-पिता द्यावापृथ्वीको धारण करते हैं। इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर वायु मनुष्यकी तरह शब्द करती है।

५ हे इन्द्र, तुम महान् हो, तुम्हारा कर्म महान् है और तुम समस्त सवनमें स्तुतियोग्य हो। हे प्रगल्भ, शूर, इन्द्र, तुमने सम्पूर्ण लोकको धारण करके, धर्षणशील वज्र द्वारा, बलपूर्वक, अहिको विनष्ट किया था।

६ हे अधिकबलशाली इन्द्र, तुम्हारे वे सकल कर्म निश्चय ही सत्य हैं। हे इन्द्र, तुम अभीष्टवर्षी हो। तुम्हारे भयसे गौएँ अपने ऊधःप्रदेशोंमें क्षीरकी रक्षा करती हैं। हे हर्षणशील, नदियाँ तुम्हारे भयसे वेगपूर्वक प्रवाहित होती हैं।

७ हे हरिवान् इन्द्र, जब तुमने वृत्र द्वारा बद्ध इन नदियोंको, दीर्घकालिक बन्धनके अनन्तर, प्रवाहित होनेके लिये मुक्त किया था, तब उसी समय वे प्रसिद्ध, द्युतिमती नदियाँ, तुम्हारे द्वारा रक्षित होनेके लिये, तुम्हारा स्तवन करती थीं।

८ हर्षजनक सोम निष्पीड़ित हुआ है, स्यन्दमान होकर वह तुम्हारे निकट आगमन करे। शीघ्रगामी, आरोही गमनशील अश्वकी दृढ़ वल्गा (लगाम) धारण करके जैसे अश्वको प्रेरित करता है, उसी तरह तुम दीप्तिमान् स्तोताकी स्तुतिको हमारे निकट प्रेरित करो।

अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥
अस्माकमित् सुशृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यञ्चित्राँ उपमाहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सुमघवन् बोधि गोदाः ॥ १० ॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥



२३ सूक्त

इन्द्र देवता। अथवा ८, ९, १०के ऋत देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

कथा महामवृधत् कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभिसोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥

---

९ हे सहनशील इन्द्र, तुम सर्वदा शत्रुओंको अभिनव करनेवाला, प्रवृद्ध और प्रशस्त बल हम लोगोंको दो; बधयोग्य शत्रुओंको हमारे वशीभूत करो। हिंसक मनुष्योंके अस्त्रोंको नष्ट करो।

१० हे इन्द्र, तुम हम लोगोंकी स्तुति श्रवण करो। हम लोगोंको विविध प्रकारका अन्न दो। हमारे लिये समस्त बुद्धि प्रेरित करो। हमारे लिये तुम गौदाता होओ।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

---

१ हम लोगोंकी स्तुति महान् इन्द्रको किस प्रकारसे वर्द्धित करेगी? वे किस होताके यज्ञमें प्रीत होकर आगमन करते हैं? महान् इन्द्र सोमरसका आस्वादन करते हुए तथा अन्नकी कामना और सेवा करते हुए किस यजमानको देनेके लिये प्रदीप्त धनको धारण करते हैं।

को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकितेकदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥
कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथेनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥३॥
कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभिद्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदाम ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥४॥
कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्रे ॥५॥
किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्रब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आगोः ॥६॥

२ कौन वीर इन्द्रके साथ सोमपान करने पाता है? कौन व्यक्ति इन्द्रके अनुग्रहको प्राप्त करता है? कब इनके विचित्र धन वितरित होंगे? कब ये स्तोता यजमानको वर्द्धित करनेके लिये रक्षायुक्त होंगे?

३ हे इन्द्र, परमैश्वर्यसे युक्त होकर तुम होताको कथाको क्योंकर श्रवण करते हो? स्तोत्रोंको सुनकर स्तुति करनेवाले होताकी रक्षण-कथाको क्योंकर जानते हो? इन्द्रके पुरातन दान कौन हैं? वे दान इन्द्रको स्तोताओंकी अभिलाषाके पूरक क्यों कहते हैं?

४ जो यजमान पीड़ायुक्त होकर इन्द्रकी स्तुति करते हैं और यज्ञ द्वारा दीप्तियुक्त होते हैं, वे किस प्रकारसे इन्द्रसम्बन्धी धन प्राप्त करते हैं? जब द्युतिमान् इन्द्र हव्य ग्रहण करके हमारे ऊपर प्रसन्न होते है, तब वे हमारी स्तुतिको विशेष रूपसे ज्ञात करते हैं।

५ द्योतमान इन्द्र, उषाके प्रारम्भमें (प्रभातमें) किस प्रकार और कब मनुष्योंके बन्धुत्वकी सेवा करते हैं? जो होता इन्द्रके उद्देशसे सुयोग तथा कमनीय हव्यको विस्तारित करते हैं, उन बन्धुओंके प्रति कब और किस प्रकारसे, अपने बन्धुत्वको इन्द्र प्रकाशित करते हैं?

६ हे इन्द्र, हम यजमान तुम्हारे शत्रुपराभवकारी सख्यको, स्तोताओंके निकट, किस प्रकारसे, भली भाँति, कहेंगे? कब हम तुम्हारे भ्रातृत्वका प्रचार करेंगे? सुदर्शन इन्द्रका उद्योग स्तोताओंके कल्याणके लिये होता है। सूर्यकी तरह गतिशील इन्द्रका अतिशय दर्शनीय शरीर सबके द्वारा अभिलषित है।

द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रान्तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका।
ऋणाचिद्यत्र ऋणयान उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७॥
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८॥
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमाविवेशुः ॥९॥
ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥



७ द्रोह करनेवाली, हिंसा करनेवाली तथा इन्द्रको नहीं जाननेवाली राक्षसीको मारनेके लिये पहलेसे ही तीक्ष्ण आयुधोंको अत्यन्त तीक्ष्ण करते हैं। ऋण भी हम लोगोंको उषाकालमें बाधित करता है, ऋणविनाशक बलवान् इन्द्र उन उषाओंको दूरसे ही, अज्ञातभावसे पीड़ित करते हैं।

८ ऋत (सत्य, आदित्य अथवा यज्ञ) देवको बहुत जल है। ऋतदेवकी स्तुति पापको नष्ट करती है। ऋतदेवका बोधयोग्य तथा दीप्तिमान् स्तुतिवाक्य मनुष्योंके बधिर कर्णमें भी प्रवेश पाता है।

९ वपुष्मान् ऋतदेवके दृढ़, धारक, आह्लादक आदि अनेक रूप हैं। लोग ऋतदेवके निकट प्रभूत अन्नकी इच्छा करते है। ऋतदेव द्वारा गौएँ, दक्षिणारूपसे, यज्ञमें प्रवेश करती हैं।

१० स्तोता लोग ऋतदेवको वशीभूत करनेके लिये सम्भजन करते हैं। ऋतदेवका बल शीघ्र ही जलकामना करता है। विस्तीर्णा तथा दुरवगाहा द्यावापृथिवी ऋतदेवकी है। प्रीतिदायिका तथा उत्कृष्टा द्यावापृथिवी ऋतदेवके लिये दुग्ध दोहन करती है।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर, तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो। हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर स्तुति द्वारा सदा तुम्हारी सेवा करते रहें।

२४ सूक्त

इन्द्र देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द।

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आववर्तत्।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधान्नो जनासः ॥१॥
स वृत्र हत्ये हव्यः स ईड्यः ससुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥२॥
तमिन्नरो विह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम्।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥३॥
क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ।
संयद्विशोववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥

---

१ हम लोगोंको धन देनेके लिये, हम लोगोंके अभिमुख, किस प्रकारसे सुन्दर स्तुति बलके पुत्र इन्द्रको आवर्तित करे। हे यजमानो, वीर तथा पशुपालक इन्द्र हम लोगोंको, शत्रुओंका धन दें। हम लोग उनकी स्तुति करते हैं।

२ वृत्रको मारनेके लिये इन्द्र संग्राममें आहूत होते हैं। वे स्तुतियोग्य हैं। वे सुन्दर रूपसे स्तुत होनेपर यजमानोंको धन देनेके लिये, सत्यधन होते हैं। धनवान् इन्द्र स्तोत्राभिलाषी तथा सोमाभिलाषी यजमानको धन दान करते हैं।

३ मनुष्यगण युद्धमें इन्द्रका ही आह्वान करते हैं। यजमान लोग शरीरको तपस्या द्वारा क्षीण करके उन्हींको त्राणकर्ता करते हैं। यजमान तथा स्तोता दोनों ही परस्पर संगत होकर पुत्र पौत्र लाभके लिये इन्द्रके निकट गमन करते हैं।

४ हे बलवान् इन्द्र, चतुर्दिक्‌में व्याप्त मनुष्य जल लाभके लिये एकत्र होकर यज्ञ करते हैं। जब युद्धकारी लोग युद्धमें एकत्र होते हैं, तब कौन इन्द्रकी अभिलाषा करता है।

आदिद्धनेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात् ।
आदित् सोमो विपपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥ ५ ॥
कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसा विवेनन्तमित् सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥
य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तोरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृपणं शुष्ममिन्द्रः ॥७॥
यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद्वृपणं पत्न्यच्छा दुरोण आनिशितं सोमसुद्भिः ॥८॥
भूयसा वस्नमचरत् कनीयोविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा विदुहन्ति प्रवाणम् ॥९॥

५ उस समय युद्धमें कोई योद्धा बलवान् इन्द्रकी पूजा करते हैं । अनन्तर कोई पुरोडाश प्रस्तुत करके इन्द्रको देते हैं । उस समय सोमाभिषव करनेवाले यजमान अनभिषुत सोमवाले यजमानको धनसे पृथक् कर देते हैं । उस समय कोई अभीष्टवर्षी इन्द्रके उद्देशसे यज्ञ करनेकी अभिलाषा करते हैं ।

६ जो सोमाभिलाषी स्वर्गलोकस्थित इन्द्रके उद्देशसे अभिषव करते हैं, उन्हें इन्द्र धन दान करते हैं। एकान्त चित्तसे इन्द्रकी अभिलाषा करनेवाले तथा सोमाभिषव करनेवाले यजमानके साथ संग्राममें इन्द्र सखिता करते हैं ।

७ जो आज इन्द्रके लिये सोमाभिषव करते है, जो पुरोडाश प्रस्तुत करते हैं और जो भर्जन योग्य जौको भूँनते हैं, उसी स्तोत्रकारीके स्तोत्रको स्वीकार करके इन्द्र, यजमानकी अभिलाषाके पूरक, बलको धारण करते है ।

८ जब शत्रुओंके हिंसक स्वामी इन्द्र शत्रुओंको जानते है, जब वे दीर्घ संग्राममें व्याप्त रहते हैं, तब उनकी पत्नी, सोमाभिषवकारी ऋत्विक् द्वारा तीक्ष्णीकृत अर्थात् सोमपान करनेसे उत्साहवान् तथा अभीष्टवर्षी इन्द्रका, यज्ञगृहमें, आह्वान करती हैं ।

९ कोई बहुत पण्य द्वारा अल्प धन प्राप्त करता है, फिर क्रेताके निकट गमन करके 'हमने विक्रय नहीं किया है' कहकर अवशिष्ट मूल्यकी प्रार्थना करता है । विक्रेता 'बहुत दिया है' कहकर अल्प मूल्यका अतिक्रम नहीं करता है । 'समर्थ या असमर्थ होओ विक्रय कालमें जो वचन हुआ है, वही रहेगा ।'

———

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥



२५ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥१॥
को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२॥

१० कौन हमारे इन्द्रको प्रीणयित्री दस धेनुओं द्वारा, खरीदेगा ? जब इन्द्र शत्रुओंका वध करेंगे, तब इन्द्रको फिर मुझे देना ।

११ हे इन्द्र, तुम पूर्ववर्ती ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हम लोगोंके द्वारा स्तूयमान होकर, जैसे जल नदीको पूर्ण करता है, उसी तरह स्तोताओंके अन्नको प्रवृद्ध करते हो । हे हरिविशिष्ट इन्द्र, हम तुम्हारे उद्देशसे अभिनव स्तोत्र करते हैं, जिससे हम लोग रथवान् होकर सदा तुम्हारी सेवा करते रहें ।

---

१ आज कौन मनुष्य हितकर, देवताभिलाषी, कामयमान व्यक्ति इन्द्रके साथ मैत्री चाहता है ? सोमाभिषवकारी कौन व्यक्ति, अग्निके प्रज्वलित होनेपर, महान् तथा पारगामी आश्रय लाभके लिये, इन्द्रका स्तव करता है ?

२ कौन यजमान स्तुतिवाक्य द्वारा सोमार्ह इन्द्रके निकट अवनत होता है ? कौन इन्द्रकी स्तुतिकामना करता है ? कौन इन्द्र द्वारा प्रदत्त गौओंका धारण करता है ? कौन इन्द्रके साहाय्यकी इच्छा करता है ? कौन इन्द्रके साथ मैत्रीकी इच्छा करता है ? कौन इन्द्रके भ्रातृत्वकी इच्छा करता है ? कौन कान्तदर्शी इन्द्रसे आश्रय-प्राथना करता है ?

को देवानाम वो अद्या वृणीते कः आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३॥
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक् पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥४॥
न तं जिनन्ति बहवोन दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥५॥
सुप्राव्यः प्राशुषालेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्यो बहन्तेदवाचः ॥ ६
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः संगृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत ॥७॥

३ आज कौन यजमान इन्द्र आदि देवताओंकी, रक्षाके लिये, प्रार्थना करता है? कौन आदित्य, अदिति तथा उदककी प्रार्थना करता है? अश्विद्वय, इन्द्र और अग्नि स्तुतिसे प्रसन्न हो कर, किस यजमानके अभिषुत सोमका यथेच्छ पान करते हैं?

४ जो यजमान कहते हैं कि, नेता, मनुष्योंके बन्धु एवम् नेताओंके मध्यमें श्रेष्ठ नेता इन्द्रके लिये सोमाभिषव करेंगे, उन यजमानोंको हविर्भर्ता अग्नि सुख प्रदान करें तथा चिर कालसे उदित सूर्यको देख।

५ अल्प अथवा अधिक शत्रु उन यजमानोंको हिंसित नहीं करें। जो यजमान इन्द्रके लिये सोमाभिषव करते है। इन्द्र-माता अदिति उन यजमानोंको अधिक सुख प्रदान करें। शोभन यज्ञ-याग करनेवाले यजमान इन्द्रके प्रिय हों। जो इन्द्रकी स्तुति-कामना करते है, वे इन्द्रके प्रिय हों। जो इन्द्रके निकट साधुभावसे गमन करते हैं, वे इन्द्रके प्रिय हों। सोमवान् यजमान इन्द्र-के प्रिय हों।

६ जो व्यक्ति इन्द्रके निकट गमन करता है और सोमाभिषव करता है, उसके पाक-कार्यको, शीघ्र अभिनवकारी तथा विक्रान्त इन्द्र स्वीकार करते हैं। जो यजमान सोमाभिषव नहीं करता है, उसके लिये इन्द्र व्याप्त नहीं होते हैं, सखा नहीं होते है और बन्धु भी नहीं होते है। जो व्यक्ति इन्द्रके निकट गमन नहीं करता है और उनकी स्तुति नहीं करता है, इन्द्र उसकी हिंसा करते हैं।

७ अभिषुतसोमपायी इन्द्र सोमाभिषव-कर्मरहित, धनवान्, लोभी बनियोंके साथ मैत्री संस्थापित नहीं करते हैं। वे उनके निरर्थक धनको उद्धरित करते हैं और नष्ट करते हैं। वे सोमाभिषवकारी तथा हव्यपाककारी यजमानके असाधारण बन्धु होते हैं।

इन्द्रं परेवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ ॥

२६ सूक्त

प्रथम तीन मन्त्रों द्वारा वामदेवने इन्द्ररूपसे आत्माकी स्तुति की है अथवा इन्द्रने ही आत्माकी स्तुति की है; अतएव वामदेवके वाक्यके पक्षमें वामदेव ऋषि, इन्द्र देवता अथवा इन्द्रके वाक्यके पक्षमें इन्द्र ऋषि परमात्मा देवता । अवशिष्ट ऋचाओंके वामदेव ऋषि । सुपर्णात्मक परब्रह्म देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयन्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकन्नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥

८ उत्कृष्ट तथा निकृष्ट व्यक्ति इन्द्रका आह्वान करते हैं एवम् मध्यम व्यक्ति भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । चलनेवाले लोग इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा उपविष्ट लोग भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । गृहवासी लोग इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा युद्ध करनेवाले भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं । अन्नकी इच्छा करनेवाले लोग भी इन्द्रका ही आह्वान करते हैं ।

१ हम प्रजापति हैं, हम सबके प्रेरक सविता हैं, हम ही दीर्घतमाके पुत्र मेधावी कक्षीवान् ऋषि हैं, हमने ही अर्जुनीपुत्र कुत्सको भली भाँति अलङ्कृत किया था, हम ही उशना नामक कवि हैं । हे मनुष्यो, हमें अच्छी तरहसे देखो ।

२ हमने आर्यको पृथिवी दान किया था । हमने हव्यदाता मनुष्यको शस्यकी अभिवृद्धिके लिये वृष्टि दान किया था । हमने शब्दायमान जलका आनयन किया था । देवगण हमारे सङ्कल्पका अनुगमन करते हैं ।

३ हमने सोमपानसे मत्त होकर शम्बरके ९९ नगरोंको एक कालमें ही ध्वस्त किया था । जिस समय हम यज्ञमें अतिथियोंके अभिगन्ता राजर्षि दिवोदासका पालन कर रहे थे, उस समय हमने दिवोदासको सौ नगर, निवास करनेके लिये, दिये थे ।

प्र सु षविभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥
भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोतश्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥
ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥
आदाय श्येनो अभरत् सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥७॥

२७ सूक्त

श्येन देवता। वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१॥

४ हे मरुद्गण, श्येन पक्षी पक्षियोंके मध्यमें प्रधान हो । अन्य श्येनोंकी अपेक्षा शीघ्रगामी श्येन प्रधान हो । जिस लिये कि, देवों द्वारा सेवित सोमरूप हव्यको, मनुष्योंके लिये, स्वर्गलोकसे चक्ररहित रथ द्वारा, सुपर्ण लाया था ।

५ जब भयभीत होकर श्येन पक्षी द्युलोकसे सोम लाया था, तब वह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष मार्गमें मनकी तरह वेगयुक्त होकर उड़ा था एवम् सोममय मधुर अन्नके साथ वह शीघ्र गया था; और, सोम लानेके कारण सुपर्णने इस लोकमें यशोलाभ किया था ।

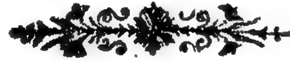
६ देवोंके साथ होकर ऋजुगामी और प्रशंसित-गमन श्येन पक्षीने दूरसे सोमको धारण करके एवम् स्तुतियोग्य तथा मदकर सोमको, उन्नत द्युलोकसे, ग्रहण करके दृढ़भावसे उसका आनयन किया था ।

७ श्येन पक्षीने सहस्र और अयुत संख्यक यज्ञके साथ सोमको ग्रहण करके, उस अन्नका आनयन किया था । उस सोमके लाये जानेपर बहुकर्मविशिष्ट प्राज्ञ इन्द्रने, सोमसम्बन्धी हर्षके उत्पन्न होनेपर, मूढ़ शत्रुओंका वध किया था ।

---

१ गर्भमें विद्यमान होकर ही हम (वामदेव) ने इन्द्र आदि समस्त देवोंके जन्मको यथाक्रमसे जाना था । अर्थात् परमात्माके समीपसे सब देव उत्पन्न हुए हैं । बहुतेरे लौहमय शरीरोंने हमारा पालन किया था । अभी हम श्येनकी तरह स्थित होकर आवरणरहित आत्माको जानते हुए, शरीरसे निर्गत होते हैं ।

न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥२॥
अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३॥
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधिष्णोः ।
अन्तः पतत् पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४॥
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रतिधत् पिबध्यै
शूरो मदाय प्रतिधत् पिबध्यै ॥५॥



२ उस गर्भने हमारा पर्याप्तरूपसे अपहरण नहीं किया था अर्थात् गर्भमें निवास करते समय हमें मोह नहीं हुआ था । हमने गर्भस्थ दुःखको तीक्ष्ण वीर्य द्वारा अर्थात् ज्ञानसामर्थ्यसे पराभूत किया था । सबके प्रेरक परमात्माने गर्भस्थित शत्रुओंका वध किया था और वर्द्धमान होकर गर्भमें क्लेशकारक वायुको अतिक्रान्त किया था ।

३ सोमाहरणकालमें जब श्येनने द्युलोकसे अधोमुख होकर शब्द किया था, जब सोमपालोंने श्येनके निकटसे सोम छीन लिया था, जब शरप्रक्षेपक सोमपाल कृशानुने मनोवेगसे जानेकी इच्छा करके धनुषकी कोटिपर प्रत्याञ्चा चढ़ायी थी और श्येनके प्रति शरक्षेपण किया था, तब श्येनने सोमका आनयन किया था ।

४ अश्विद्वयने जिस प्रकार सामर्थ्यवान् इन्द्रविशिष्ट देशसे भुज्युनामक राजाका आहरण किया था, उसी प्रकार ऋजुगामी श्येनने इन्द्ररक्षित महान् द्युलोकसे सोमका आहरण किया था । उस समय युद्धमें कृशानुके अस्त्रोंसे विद्ध होनेपर उस गमनशील पक्षीका एक मध्यस्थित तथा पतनशील पक्ष गिर पड़ा था ।

५ इस समय विक्रमवान् इन्द्र शुभ, पात्रस्थित गव्यमिश्रित, तृप्तिकर, सारसमन्वित प्रथम अध्वर्युओं द्वारा प्रदत्त सोम लक्षण अन्नका और मधुर सोमरसका, हर्षके लिये पहले ही, पान करें ।



२८ सूक्त

इन्द्र और सोम देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१॥
त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्द्रो ।
अधिष्णुना बृहता वर्तमानं महोद्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२॥
अहन्निन्द्रो अदहदग्निरन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्त्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत ॥३॥
विश्वस्मात् सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥४॥
एवासत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥५॥

---

१ हे सोम, इन्द्रके साथ तुम्हारी मैत्री होनेपर इन्द्रने तुम्हारी सहायतासे मनुष्योंके लिये सरणशील जलको प्रवाहित किया था, वृत्रका बध किया था, सर्पणशील जलको प्रेरित किया था और वृत्र द्वारा तिरोहित जल-द्वारको उद्घाटित किया था।

२ हे सोम, इन्द्रने तुम्हारी सहायतासे, क्षण-भरमें, प्रेरक सूर्यके रथके ऊपर स्थित बृहत् अन्तरिक्षमें वर्तमान द्विचक्र रथके एक चक्रको बलपूर्वक तोड़ डाला था। प्रभूत द्रोहकारी सूर्यके सर्वतोगामी चक्रको इन्द्रने अपहृत किया था।

३ हे सोम, तुम्हारे पानसे बलवान् इन्द्रने, मध्याह्नकालके पहले ही, संग्राममें शत्रुओंको मार डाला था और अग्निने भी कितने शत्रुओंको जला डाला था। किसी कार्यसे रक्षाशून्य दुर्गम स्थानसे आनेवाले व्यक्तिको जैसे चोर मार डालता है, उसी तरह इन्द्रने बहु सहस्र सेनाओंका बध किया है।

४ हे इन्द्र, तुम इन दस्युओंको सकल सद्गुणोंसे रहित करते हो। तुम कर्महीन मनुष्यों (दासों) को गर्हित (निन्दित) बनाते हो। हे इन्द्र और सोम, तुम दोनों शत्रुओंको बाधा दान करो और उनका बध करो। उन्हें मारनेके लिये लोगोंसे पूजा ग्रहण करो।

५ हे सोम, तुम और इन्द्रने महान् अश्वसमूह और गोसमूहको दान किया था एवम् पणियों द्वारा आच्छादित गोवृन्द और भूमिको बल द्वारा विमुक्त किया था। हे धनयुक्त इन्द्र और सोम, तुम दोनों शत्रुओंके हिंसक हो। तुम दोनोंने इस प्रकारसे जो कुछ किया है, वह सत्य है।

---

२६ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥१॥
आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान् हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२॥
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान् करन्नइन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥३॥
अच्छायो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उपत्मनि दधानो धुर्या शून्तसहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४॥

१ हे इन्द्र, तुम स्तुत होकर हम लोगोंको रक्षित करनेके लिये, हम लोगोंके अन्नयुक्त अनेक यज्ञोंमें, अश्वोंके साथ, आगमन करो। तुम मोदमान, स्वामी, स्तोत्रों दुवारा स्तूयमान और सत्यधन हो।

२ मनुष्योंके हितकारी, सर्ववेत्ता इन्द्र सोमाभिषवकारियों दुवारा आहूत होकर यज्ञके उद्देशसे आगमन करें। वे सुन्दर अश्वोंसे युक्त हैं, वे निर्भय हैं, वे सोमाभिषवकारियों दुवारा स्तुत होते हैं एवम् वीर मरुतोंके साथ हृष्ट होते हैं।

३ हे स्तोता, तुम इन्द्रके कर्णद्वयमें, इन्द्रको बली करनेके लिये और सब दिशाओंमें अतिशय हृष्ट करनेके लिये, स्तोत्रोंको सुनाओ। सोमरससे सिक्त बलवान् इन्द्र हम लोगोंके धनके लिये शोभन तीर्थोंको भयरहित करें।

४ वज्रबाहु इन्द्र अपने वशीभूत सहस्रसंख्यक तथा शतसंख्यक शीघ्रगामी अश्वोंको रथवहन प्रदेशमें संस्थापित करते हैं एवम् रक्षा करनेके लिये याचक, मेधावी आह्लादकारी और स्तवकारी यजमानके निकट गमन करते हैं।

त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयन्ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५॥



३० सूक्त

इन्द्र देवता । नवमके उषा और इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥१॥
सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रामहाँ असिश्रुतः ॥२॥
विश्वेचनेदनात्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥३॥
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥४॥
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥५॥

---

५ हे धनवान् इन्द्र, हम लोग तुम्हारे स्तोता हैं। हम लोग तुम्हारे द्वारा रक्षित हैं, मेधावी और स्तुतिकारी हैं। तुम दीप्तिविशिष्ट, स्तुतियोग्य और अन्नविशिष्ट हो। धनदान-कालमें हम लोग तुम्हारा सम्भजन कर सकें।

---

१ हे वृत्रनाशक इन्द्र, लोकमें तुम्हारी अपेक्षा कोई भी उत्कृष्टतर नहीं है, तुम्हारी अपेक्षा कोई भी प्रशस्यतर नहीं है। हे इन्द्र, तुम जिस तरह लोकमें प्रसिद्ध हो, उस तरह कोई भी नहीं है।

२ सर्वत्र व्याप्त चक्र जिस तरह शकटका अनुवर्तन करता है, उसी तरह प्रजागण तुम्हारा अनुवर्तन करते हैं। हे इन्द्र, तुम सचमुच महान् और गुण द्वारा प्रख्यात हो।

३ जयाभिलाषी सब देवोंने बलरूपसे तुम्हारी सहायता प्राप्त करके, असुरोंके साथ युद्ध किया था। जिस लिये कि, तुमने अहर्निश शत्रुओंका बध किया था।

४ हे इन्द्र, जिस युद्धमें तुमने युद्धकारी कुत्स एवम् उसके सहायकोंके लिये सूर्यके रथचक्रको अपहृत किया था।

५ हे इन्द्र, जिस युद्धमें तुमने एकाकी होकर देवोंके बाधक सकल राक्षसोंके साथ युद्ध किया था तथा उन हिंसकोंका बध किया था

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥६॥
किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः । अत्राहदानुमातिरः ॥७॥
एतद्घेदुतवीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८॥
दिवश्चिद्घा दुहितरं महान् महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥९॥
अपोषा अनसः सरत् सम्पिष्टादह विभ्युषी ।
नि यत् सीं शिश्नथद्वृषा ॥१०॥
एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥११॥
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधिक्षमि । परिष्ठा इन्द्र मायया ॥१२॥
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य सम्पिणक् ।१३।

---

६ हे इन्द्र, जिस संग्राममें तुमने एतश ऋषिके लिये सूर्यकी हिंसा की थी, उस समय युद्धकर्म द्वारा तुमने एतशकी रक्षा की थी।

७ हे आवरक अन्धकारके हननकर्ता धनवान् इन्द्र, उसके बाद क्या तुम अत्यन्त क्रोधवान् हुए थे? इस अन्तरिक्षमें और दिवसमें तुमने दानुपुत्र वृत्रका बध किया था।

८ हे इन्द्र, तुमने बलको इस प्रकारसे सामर्थ्ययुक्त किया था। तुमने हननाभिलाषिणी तथा द्युलोककी दुहिता उषाका बध किया।

९ हे महान् इन्द्र, तुमने द्युलोककी दुहिता तथा पूजनीया उषाको सम्पिष्ट किया था।

१० अभीष्टवर्षी इन्द्रने जब उषाके शकटको भग्न किया था, तब उषा भीत होकरके इन्द्र द्वारा भग्न शकटके ऊपरसे अवतीर्ण हुई थी।

११ इन्द्र द्वारा विचूर्णित उषा देवीका शकट विपाशा नदीके तीरपर गिर पड़ा। शकटके टूट जानेपर उषादेवी दूर देशमें अपसृत हो गयीं।

१२ हे इन्द्र, तुमने सम्पूर्णजला तथा तिष्ठमाना नदीको पृथ्वीके ऊपर, बुद्धिबलसे, सर्वत्र संस्थापित किया था।

१३ हे इन्द्र, तुम वर्षणकारी हो। जिस समय तुमने शुष्णके नगरोंको सम्पिष्ट किया था, उस समय तुमने उसके धनको लूटा था।

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शाम्बरम् ॥१४॥
उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥१५॥
उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥१६॥
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७॥
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥
अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९॥
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥२०॥
अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया ॥२१॥
सघेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः ।
यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥२२॥

१४ हे इन्द्र, तुमने कुलितरके पुत्र दास शम्बरको, बृहत् पर्वतके ऊपर निम्न मुख करके मारा था।

१५ हे इन्द्र, चक्रके चतुर्दिक् स्थित शङ्कु (हिंसक) की तरह वर्चि नामक दासके चतुर्दिक् स्थित पञ्चशत-संख्यक और सहस्र-संख्यक अनुचरोंको तुमने विशेष रूपसे मारा था।

१६ शतकर्मा इन्द्रने अग्रुके पुत्र परावृक्तको स्तोत्र-भागी किया था।

१७ ययातिके शापसे अनभिषिक्त प्रसिद्ध राजा यदु और तुर्वशको शचीपति विद्वान् इन्द्रने अभिषेक-योग्य बनाया था।

१८ हे इन्द्र, तुमने तत्क्षण सरयू नदीके पारमें रहनेवाले आर्यत्वाभिमानी अर्ण और चित्ररथ नामक राजाका बध किया था।

१९ हे वृत्रहन्ता, तुमने बन्धुओं द्वारा त्यक्त अन्ध और पङ्गुको अनुनीत किया था अर्थात् उनके अन्धत्व और पङ्गुत्वको विनष्ट किया था। तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुखको अतिक्रमण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है।

२० इन्द्रने हव्यदाता यजमान दिवोदासको, शम्बरके पाषाणनिर्मित शतसंख्यक नगर दिये।

२१ इन्द्रने दभीतिके लिये अपनी शक्तिसे त्रिंशत्-सहस्र-संख्यक राक्षसोंको हनन-साधन आयुधोंके द्वारा सुला दिया था।

२२ हे इन्द्र, तुमने इन समस्त शत्रुओंको प्रच्युत किया है। हे शत्रुओंके हिंसक इन्द्र, तुम गौओंके पालक हो। तुम सम्पूर्ण यजमानोंके लिये समान रूपसे प्रख्यात हो।

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।
अद्या नकिष्टदामिनत् ॥२३॥
वामं वामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूलती ॥२४॥

३१ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

कयानश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृह्लाचिदारुजेवसु ॥२॥
अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥३॥
अभीन आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥४॥
प्रवता हि क्रतूनामाहा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ॥५॥

२३ हे इन्द्र, जिस लिये तुमने अपने बलको सामर्थ्योपेत किया है; उसी लिये आज भी कोई व्यक्ति उसकी हिंसा नहीं कर सकता है।

२४ हे शत्रुविनाशक इन्द्र, अर्यमादेव तुम्हें वह मनोहर धन दान करें, दन्तहीन पूषा वह मनोहर धन दान करें और भग वह मनोहर धन दान करें।

---

१ सर्वदा वर्द्धमान, पूजनीय और मित्रभूत इन्द्र किस तर्पण द्वारा हमारे अभिमुख आगमन करेंगे? किस प्रज्ञायुक्त श्रेष्ठ कर्म द्वारा हम लोगोंके अभिमुख आगमन करेंगे।

२ हे इन्द्र, पूजनीय, सत्यभूत और हर्षकर सोमरसोंके मध्यमें कौन सोमरस शत्रुओंके धनको विनष्ट करनेके लिये तुम्हें हृष्ट करेगा?

३ हे इन्द्र, तुम सखा-स्वरूप स्तोताओंके रक्षक हो। तुम बहुत प्रकारकी रक्षाके साथ हमारे अभिमुख आगमन करो।

४ हे इन्द्र, हम लोग तुम्हारे उपगन्ता हैं। तुम हम मनुष्योंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमारे निकट वृत्ताकार चक्रकी तरह प्रत्यागत होओ।

५ हे इन्द्र, तुम यज्ञके प्रवण-प्रदेशमें अपने स्थानको जानकर आगमन करते हो। हे इन्द्र, हम सूर्यके साथ तुम्हारा सम्भजन करते हैं।

सं यत्त इन्द्रमन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे। अध त्वे अध सूर्ये ॥६॥
उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते। दातारमविदीधयुम् ॥७॥
उत स्मा सद्य इत् परि शशमानाय सुन्वते। पुरूचिन्मंहसे वसु ॥८॥
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः। न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥९॥
अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥१०॥
अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये। महो राये दिवित्मते ॥११॥
अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥
अस्मभ्यं ताँ अपावृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३॥

---

६ हे इन्द्र, तुम्हारे लिये सम्पादित स्तुति और कर्म जब हम लोगोंके द्वारा अनुमन्यमान होते हैं, तब वे पहले तुम्हारे होते हैं और उसके बाद सूर्यके होते हैं।

७ हे कर्मपालक इन्द्र, तुम्हें लोग धनवान्, स्तोताओंके अभीष्टप्रद और दीप्तिमान् कहते हैं।

८ हे इन्द्र, तुम क्षणभरमें ही स्तुतिकारी तथा सोमाभिषवकारी यजमानको बहुत धन प्रदान करते हो।

९ हे इन्द्र, बाधक राक्षस आदि तुम्हारे शतपरिमित धनका निवारण नहीं कर सकते हैं। शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले तुम्हारे बलका निवारण, वे नहीं कर सकते हैं।

१० हे इन्द्र, तुम्हारी शतसंख्यक रक्षा हम लोगोंकी रक्षा करे। तुम्हारी सहस्रसंख्यक रक्षा हम लोगोंकी रक्षा करे। तुम्हारा समस्त अभिगमन हम लोगोंकी रक्षा करे।

११ हे इन्द्र, इस यज्ञमें तुम हम यजमानोंको सखा, अविनाशी तथा दीप्तियुक्त धनका भागी बनाओ।

१२ हे इन्द्र, तुम प्रतिदिन हम लोगोंकी, महान् धन द्वारा, रक्षा करो और समस्त रक्षा द्वारा रक्षा करो।

१३ हे इन्द्र, तुम शूरकी तरह, नूतन रक्षा द्वारा, हम लोगोंके लिये गोविशिष्ट गोव्रज (गौओंके निवासस्थान) का उद्धार करो।

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमां इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४॥

अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठन्द्यामिवोपरि ॥१५॥

३२ सूक्त

इन्द्र देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमागहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१॥

भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥२॥

दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा ।
सखिभिर्ये त्वे सचा ॥३॥

वयमिन्द्र त्वे सचा वयन्त्वाभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥४॥

स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरागहि ॥५॥

---

१४ हे इन्द्र, हम लोगोंका शत्रुधर्षक, दीप्तिमान्, विनाशरहित, गोयुक्त और अश्वयुक्त रथ सर्वत्र गमन करे। उस रथके साथ हम लोगोंकी रक्षा करो।

१५ हे सबके प्रेरक आदित्य, तुमने जिस प्रकारसे सेचन-समर्थ द्युलोकको ऊपरमें स्थापित किया है, उसी प्रकारसे देवोंके मध्यमें हम लोगोंके यशको उत्कृष्ट करो।

---

१ हे शत्रुहिंसक इन्द्र, तुम शीघ्र ही हम लोगोंके निकट आगमन करो। तुम महान् हो। महान् रक्षाके साथ तुम हमारे निकट आगमन करो।

२ हे पूजनीय इन्द्र, तुम भ्रमणशील और हम लोगोंके अभीष्ट-दाता हो। चित्रकर्मयुक्त प्रजाको-तुम रक्षाके लिये, धन दान करते हो।

३ हे इन्द्र, जो यजमान तुम्हारे साथ सङ्गत होते हैं, उन थोड़ेसे भी यजमानोंके साथ तुम उत्प्लवमान तथा वर्द्धमान शत्रुओंको अपने बलसे विनष्ट करते हो।

४ हे इन्द्र, हम यजमान तुमसे सङ्गत हुए हैं। हम अधिक परिमाणमें तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम सबकी विशेष रूपसे रक्षा करो।

५ हे वज्रधर, तुम मनोहर, अनिन्दित और शत्रुओंके द्वारा अप्रहर्षित अर्थात् अनाक्रयमणी रक्षाओंके साथ हमारे निकट आगमन करो।

भूयामोषु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः। युजो वाजाय घृष्वये ॥६॥

त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः। सनो यन्धि महीमिषम् ॥७॥

न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम्।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८॥

अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्रदावने।
इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९॥

प्र ते वोचाम वीर्या या मन्दसान आरुजः।
पुरोदासीरभीत्य ॥१०॥

ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या।
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११॥

अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः।
एषु धा वीरवद्यशः ॥१२॥

६ हे इन्द्र, हम तुम्हारे सदृश गोयुक्त देवताके सखा हैं। प्रभूत अन्नके लिये तुम्हारे साथ संयुक्त होते हैं।

७ हे इन्द्र, जिस कारण तुम ही एक गोयुक्त अन्नके स्वामी हो; इसलिये तुम हमें प्रभूत अन्न दान करो।

८ हे स्तुतियोग्य इन्द्र, जब तुम स्तुत होकर स्तोताओंको धन दान करनेकी इच्छा करते हो, तब कोई भी उसे अन्यथा नहीं कर सकता है।

९ हे इन्द्र, तुम्हें लक्ष्य करके गोतम नामवाले ऋषि धन और प्रभूत अन्नके लिये, स्तुति वाक्य द्वारा, तुम्हारी स्तुति करते हैं।

१० हे इन्द्र, सोमपानसे हृष्ट होकरके तुम क्षेपक असुरोंके सम्पूर्ण नगरोंमें अभिगमन करके उन्हें भग्न कर देते हो। हे इन्द्र, हम स्तोता तुम्हारे उसी वीर्यका कीर्तन करते हैं।

११ हे इन्द्र, तुम स्तुतियोग्य हो। तुमने जिन बलोंको प्रदर्शित किया है, हे इन्द्र, प्राज्ञगण सोमाभिषव होनेपर तुम्हारे उन्हीं बलका संकीर्तन करते हैं।

१२ हे इन्द्र, स्तोत्रवाहक गोतमगण तुम्हें स्तोत्र द्वारा वर्द्धित करते हैं। तुम इन्हें पुत्र-पौत्रयुक्त अन्न दान करो।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधरणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥१३॥
अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४॥
अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥१५॥
पुरोलाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्चनः । वधूयुरिव योषणाम् ॥१६॥
सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७॥
सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८॥
दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९॥
भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२०॥
भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥२१॥

---

१३ हे इन्द्र, यद्यपि तुम सब यजमानोंके साधारण देवता हो; तथापि हम स्तोता तुम्हारा आह्वान करते हैं ।

१४ हे निवासप्रद इन्द्र, तुम हम यजमानोंके अभिमुख आगमन करो । हे सोमपा, तुम सोमरूप अन्न द्वारा हृष्ट होओ ।

१५ हे इन्द्र, हम तुम्हारे स्तोता हैं । हमारा स्तोत्र तुम्हें हमारे निकट ले आवे । तुम अश्वद्वयको हमारे अभिमुख परिवर्तित करो ।

१६ हे इन्द्र, तुम हमारे पुरोडाश रूप अन्नका भक्षण करो । स्त्रीकामी पुरुष जैसे स्त्रियोंके वचनकी सेवा करता है, उसी तरह तुम हमारे स्तुतिवाक्यका सेवन करो ।

१७ हम स्तोता इन्द्रके निकट शिक्षित, शीघ्रगामी, सहस्रसंख्यक अश्वोंकी याचना करते हैं एवम् शतसंख्यक सोम-कलशकी याचना करते हैं अर्थात् अपरिमित कलशवाले यज्ञकी याचना करते हैं ।

१८ हे इन्द्र, हम तुम्हारी शतसंख्यक और सहस्रसंख्यक गौओंको अपने अभिमुख करते हैं । हम लोगोंका धन तुम्हारे निकटसे आवे ।

१९ हे इन्द्र, हम तुम्हारे समीपसे दश कुम्भ-परिमित सुवर्ण धारण करते हैं । हे शत्रु-हिंसक इन्द्र, तुम सहस्रप्रद होते हो ।

२० हे इन्द्र, तुम बहुप्रद हो । तुम हम लोगोंको बहुत धन दान करो । अल्प धन मत दो । तुम बहुत धन हम लोगोंके लिये लाओ; क्योंकि तुम हम लोगोंको प्रभूत धन देनेकी इच्छा करते हो ।

२१ हे वृत्रहिंसक विभ्रान्त इन्द्र, तुम बहुप्रद रूपसे बहुतेरे यजमानोंके निकट विख्यात हो । तुम हम लोगोंको धनका भागी करो ।

प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात्।
माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥२२॥
कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके ।
बभ्रू यामेषु शोभेते ॥२३॥
अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे ।
बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४॥

२२ हे प्राज्ञ इन्द्र, हम तुम्हारे पिङ्गलवर्ण अश्वद्वयकी प्रशंसा करते हैं। हे गोप्रद, तुम स्तोताओंका विनाश नहीं करते हो। तुम इस अश्वद्वय द्वारा हमारी गौओंको विनष्ट नहीं करना।

२३ हे इन्द्र, दृढ़, नव और क्षुद्र द्रुमाख्य स्थानमें स्थित कमनीय शाल-भञ्जिका-द्वय (पुत्तलिका) की तरह तुम्हारे पिङ्गलवर्ण दोनो घोड़े यज्ञमें शोभा पाते हैं।

२४ हे इन्द्र, हम जब वृषभयुक्त रथ द्वारा गमन करें अथवा जब पद द्वारा गमन करें, तब तुम्हारा अहिंसक तथा पिङ्गलवर्ण अश्वद्वय हमारा पर्याप्तकारी हो।

षष्ठ अध्याय समाप्त



सप्तम अध्याय

३३ सूक्त

४ अनुवाक । ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीन्धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१॥
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२॥
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥
यत् संवत्समृभवो गामरक्षन्यत् संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत् संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४॥

---

१ हम यजमान ऋभुओंके निकट, दूतकी तरह, स्तुतिवाक्य प्रेरित करते हैं। हम उनके निकट सोम-उपस्तरणके लिये पयोयुक्त धेनुकी याचना करते हैं। ऋभुगण वायुके समान गमनवाले हैं। वे जगत्‌के उपकार-जनक कर्मका करनेवाले हैं। वे वेगसे आनेवाले घोड़ों द्वारा अन्तरिक्षका क्षणमात्रमें परिव्याप्त करते हैं।

२ जब ऋभुओंने माता-पिताको परिचर्या द्वारा युवा किया था एवम् चमस-निर्माणादि अन्य कार्य करके वे अलङ्कृत हुए थे, तब इन्द्रादि देवोंके साथ उन्होंने उसी समय सख्य लाभ किया था। धीर ऋभुगण प्रकृष्ट मनस्वी हैं। वे यजमानोंके लिये पुष्टि धारण करते हैं।

३ ऋभुओंने यूपकाष्ठकी तरह जीर्ण और शयनशील माता-पिताको नित्य तरुण किया था। वाज, विभु और ऋभु इन्द्रके साथ सोम पान करके हम लोगोंके यज्ञकी रक्षा करें।

४ ऋभुओंने संवत्सर-पर्यन्त मृतक गौका पालन किया था। ऋभुओंने उस गौके मांसको संवत्सर-पर्यन्त अवयवयुक्त किया था एवम् संवत्सर पर्यन्त उसके शरीरके सौन्दर्यकी रक्षा की थी। इन सकल कार्यों द्वारा उन्होंने देवत्व प्राप्त किया था।

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन् कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत् पनयद्वचो वः ॥५॥
सत्यमूचुर्नर एवाहि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानाँश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६॥
द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आतक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥
अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत् सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९॥

५ ज्येष्ठ ऋभुने कहा, "एक चमसको दो करेंगे।" उनके अवरज विभुने कहा, "तीन करेंगे।" उसके कनिष्ठ वाजने कहा, "चार प्रकारसे करेंगे।" हे ऋभुओ, तुम्हारे गुरु त्वष्टाने इस चतुष्करण-रूप तुम्हारे वचनको अङ्गीकार किया था।

६ मनुष्य-रूप ऋभुओंने सत्य कहा था; क्योंकि उन्होंने जैसा कहा, वैसा किया था। इसके अनन्तर वे ऋभुगण तृतीय सवनगत स्वधाके भागी हुए थे। दिवसकी तरह दीप्तिमान् चार चमसोंको देखकर त्वष्टाने उसकी कामना की थी—उसे अङ्गीकार किया था।

७ अगोपनीय सूर्यके गृहमें जब ऋभुगण आर्द्रासे लेकर वृष्टिकारक बारह नक्षत्रोंतक अतिथिरूपसे [सत्कृत होकर] सुखपूर्वक निवास करते हैं, तब वे वृष्टि द्वारा खेतोंको शस्य-सम्पन्न करते और नदियोंको प्रेरित करते हैं। जलविहीन स्थानमें ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं; और, नीचेकी तरफ जल जमा होता है। *

८ हे ऋभुओ, जिन्होंने सुचक्र और चक्रविशिष्ट रथका निर्माण किया था, जिन्होंने विश्वकी प्रेरयित्री और बहुरूपा धेनुको उत्पन्न किया था, वे सुकर्मा, सुन्दर, अन्नयुक्त और सुहस्त ऋभु हम लोगोंके धनका निष्पादन करें।

९ इन्द्र आदि देवोंने वरप्रदान-रूप कर्म द्वारा एवम् प्रसन्न अन्तःकरण द्वारा देदीप्यमान होकर इन ऋभुओंके अश्व, रथ आदि निर्माण रूप कर्मको स्वीकार किया था। शोभन व्यापारवाले कनिष्ठ वाज सब देवोंके सम्बन्धी हुए, ज्येष्ठ ऋभु इन्द्रके सम्बन्धी हुए और मध्यम विभु वरुणके सम्बन्धी हुए।

* इस ऋचामें सूर्यरश्मिरूपसे ऋभुओंकी स्तुति की गयी है।—सायण।

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०॥
इदाह्नः पीतिमुत वो मदन्धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११॥



३४ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदाहि वो धिषणा देव्यह्नामधात् पीतिं सम्मदा अग्मता वः ॥१॥
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥

---

१० हे ऋभुओ, जिन्होंने अश्वद्वयको प्रज्ञा तथा स्तुति द्वारा हृष्ट किया था, जिन्होंने उस अश्वद्वयको इन्द्रके लिये सुयोजमान किया था, वही ऋभुगण हम लोगोंको, मङ्गलाकांक्षी मित्रकी तरह, धन, पुष्टि, गौ आदि धन तथा सुख दान करें।

११ चमस आदि निर्माणके अनन्तर तृतीय सवनमें देवोंने तुम लोगोंको सोमपान तथा तदुत्पन्न हर्ष प्रदान किया था। तपोयुक्त व्यक्तिको छोड़कर दूसरेके सखा देवगण नहीं होते हैं। हे ऋभुओ, इस तृतीय सवनमें तुम निश्चय ही हम लोगोंको धन दान करो।

---

१ हे ऋभु, विभु, वाज और इन्द्र, रत्न दान करनेके लिये तुम लोग हमारे इस यज्ञमें आओ; क्योंकि अभी दिनमें वाक्देवी तुम लोगोंको सोमाभिषव-सम्बन्धी प्रीति दान करती है। इसलिये सोमजनित हर्ष तुम लोगोंके साथ सङ्गत हो।

२ हे अन्न द्वारा शोभमान ऋभुगण, पहले तुम लोगोंका जन्म मनुष्योंमें हुआ था, अब देवत्व-प्राप्तिको जान करके तुम लोग देवोंके साथ हृष्ट होओ। हर्षकर सोम और स्तुति तुम लोगोंके लिये एकत्र हुए हैं। तुम लोग हमारे लिये पुत्र-पौत्र-विशिष्ट धन प्रेरित करो।

अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत् प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३॥
अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो माह तृतीयं सवनं मदाय ॥४॥
आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५॥
आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६॥
सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७॥

---

३ हे ऋभुओ, तुम लोगोंके लिये यह यज्ञ किया गया है। मनुष्यकी तरह दीप्तिशाली होकर तुम लोग इसे धारण करो। सेवमान सोम तुम लोगोंके निकट रहता है। हे वाजगण, तुम लोग ही प्रथम उपास्य हो।

४ हे नेतृगण, तुम्हारे अनुग्रहसे अभी इस तृतीय सवनमें दानयोग्य रत्न परिचर्याकारी, हव्यदाता यजमानके लिये हो। हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग पान करो। तृतीय सवनमें हर्षके लिये प्रभूत सोम हम तुम लोगोंके लिये दान करते हैं।

५ हे वाजो, हे ऋभुक्षाओ, तुम लोग नेता हो। महान् धनकी स्तुति करते हुए तुम लोग हमारे निकट आगमन करो। दिवसकी समाप्तिमें अर्थात् तृतीय सवनमें जैसे नवप्रसवा गौएँ गृहके प्रति आगमन करती हैं, उसी तरह यह सोम-रसका पान तुम लोगोंके निकट आगमन करता है।

६ हे बलपुत्रो या बलवानो, स्तोत्र द्वारा आहूत होकर तुम लोग इस यज्ञमें आगमन करो। तुम लोग इन्द्रके साथ प्रीत होते हो और मेधावी हो; क्योंकि तुम लोग इन्द्रके सम्बन्धी हो। तुम लोग इन्द्रके साथ रत्न दान करते हुए मधुर सोमरसका पान करो।

७ हे इन्द्र, तुम रात्र्यभिमानी वरुणदेवके साथ समान-प्रीतियुक्त होकर सोम पान करो। हे स्तुतियोग्य इन्द्र, तुम मरुतोंके साथ सङ्गत होकर सोमपान करो। प्रथम पानकारी ऋतुओंके साथ, देवपत्नियोंके साथ और रत्न देनेवाले ऋतुओंके साथ सोम पान करो।

सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८॥
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०॥
नापाभूत न वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः संराजभी रत्नधेयाय देवाः ॥११॥

---

८ हे ऋभुओ, आदित्योंके साथ सङ्गत होकर तुम हृष्ट होओ, पर्वमें अर्चमान देवविशेषके साथ सङ्गत होकर तुम हृष्ट होओ, देवोंके हितकर सविता देवके साथ सङ्गत होकर हृष्ट होओ और रत्नदाता नद्यभिमानी देवोंके साथ सङ्गत होकर हृष्ट होओ ।

९ हे ऋभुओ, जिन्होंने अश्विद्वयको रथनिर्माणादि कार्य द्वारा प्रीत किया था, जिन्होंने जीर्ण पिता-माताको युवा किया था, जिन्होंने धेनु और अश्वका निर्माण किया था, जिन्होंने देवोंके लिये अंसत्रा कवच निर्माण किया था, जिन्होंने द्यावापृथिवीको पृथक् किया था, जो व्याप्त एवम् नेता हैं और जिन्होंने सुन्दर अपत्य-प्राप्ति-साधन रूप कार्य किया था, वे प्रथम पानकारी हैं।

१० हे ऋभुओ, जो गोविशिष्ट, अन्नविशिष्ट, पुत्रपौत्रादिविशिष्ट निवासयोग्य गृह आदि धनोंसे युक्त तथा बहुत अन्नवाले धनको धारण करते हैं एवम् जो धनकी प्रशंसा करते हैं, वह प्रथम पानकारी ऋभुगण हृष्ट होकर हम लोगोंको धन दान करें।

११ हे ऋभुओ, तुम लोग चले नहीं जाना। हम तुमलोगोंको अत्यन्त तृषित नहीं करेंगे। हे देवो (ऋभुओ), तुम लोग अनिन्दित होकर रमणीय धन दान करनेके लिये इस यज्ञमें इन्द्रके साथ हृष्ट होओ, मरुतोंके साथ हृष्ट होओ और अन्यान्य दीप्तिमान् देवोंके साथ हृष्ट होओ।



३५ सूक्त

ऋभुगण देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत।
अस्मिन् हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१॥
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत् सोमस्य सुषुतस्य पीतिः।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२॥
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३॥
किं मयस्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४॥
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम्।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५॥

---

१ हे बलके पुत्र, सुधन्वाके पुत्र, ऋभुओ, तुम सब इस तृतीय सवनमें आओ, अपगत मत होओ। इस सवनमें मदकर सोम, रत्नदाता इन्द्रके अनन्तर, तुम लोगोंके निकट गमन करे।

२ ऋभुओंका रत्नदान इस तृतीय सवनमें मेरे निकट आवे; क्योंकि तुम लोगोंने शोभन हस्त-व्यापार द्वारा और कर्मकी इच्छा द्वारा एक चमसको चतुर्धा किया था एवम् अभिषुत सोमपान किया था।

३ हे ऋभुओ, तुम लोगोंने चमसको चतुर्धा किया था एवम् कहा था कि, "हे सखा अग्नि, अनुग्रह करो।" अग्निने तुम लोगोंसे कहा—"हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग कुशलहस्त हो। तुम लोग अमरत्वपथमें अर्थात् स्वर्गमार्गमें गमन करो।"

४ जिस चमसको कौशल-पूर्वक चार किया था, वह चमस किस प्रकारका था? हे ऋत्विको, तुम लोग हर्षके लिये सोमाभिषव करो। हे ऋभुओ, तुम लोग मधुर सोमरसका पान करो।

५ हे रमणीय सोमवाले ऋभुओ, तुम लोगोंने कर्म द्वारा माता-पिताको युवा किया था, कर्म द्वारा चमसको देवपानके योग्य चतुर्धा किया था और कर्म द्वारा शीघ्रगामी इन्द्रके वाहक अश्वद्वयको सम्पादित किया था।

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमातक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥६॥
प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँर्याँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७॥
ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८॥
यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत् सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९॥

३६ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप्, जगती छन्द ।

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥

---

६ हे ऋभुओ, तुम लोग अन्नवान् हो । जो यजमान तुम लोगोंके उद्देशसे, हर्षके लिये, दिवावसानमें तीव्र सोमका अभिषव करता है, हे फलवर्षी ऋभुओ, तुम लोग हृष्ट होकर, उस यजमानके लिये बहु-पुत्रयुक्त धनका सम्पादन करो ।

७ हे हरिविशिष्ट इन्द्र, तुम प्रातः सवनमें अभिषुत सोम पान करो। माध्यन्दिन सवन केवल तुम्हारा ही है । हे इन्द्र, तुमने शोभन कर्म द्वारा जिसके साथ मैत्री की है, उस रत्नदाता ऋभुओं के साथ तुम तृतीय सवनमें पान करो ।

८ हे ऋभुओ, तुम लोग सुकर्म द्वारा देवता हुए थे । हे बलके पुत्रो, तुम लोग श्येन [गृद्ध-विशेष] की तरह द्युलोकमें निषण्ण हो । तुम लोग धन दान करो । हे सुधन्वाके पुत्रो, तुम लोग अमर हुए थे ।

९ हे सुहस्त ऋभुओ, चूँकि तुम लोग रमणीय सोमदानयुक्त तृतीय सवनको शोभन कर्मकी इच्छासे प्रयुक्त और प्रसाधित करते हो; इसलिये तुम लोग हृष्ट इन्द्रियोंके साथ अभिषुत सोम पान करो ।

---

१ हे ऋभुओ, तुम लोगोंका कर्म स्तुतियोग्य है । तुम लोगों द्वारा प्रदत्त अश्विनीकुमारका त्रिचक्र रथ अश्वके विना और प्रग्रहके विना अन्तरिक्षमें परिभ्रमण करता है । जिसके द्वारा तुम लोग द्यावा-पृथिवीका पोषण करते हो, वह रथनिर्माण-रूप महान् कर्म तुम लोगोंके देवत्वको प्रख्यात करता है ।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसो विह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँऊन्व स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ।२।
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन् महित्वनम् ।
जिव्री यत् सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ।३।
एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ।।४।।
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ।।५।।
सवाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ।६।

२ हे सुन्दरान्तःकरण ऋभुओ, तुम लोगोंने मानसिक ध्यान द्वारा सुवर्तन चक्रवाला अकुटिल रथ निर्माण किया था । हे वाजगण और हे ऋभुगण, हम सोमपानके लिये तुम लोगोंको आवेदित करते हैं ।

३ हे वाजगण, हे ऋभुगण और हे विभुगण, तुम लोगोंने जो वृद्ध और जीर्ण पिता माताको नित्य तरुण और सर्वदा विचरणक्षम किया था, तुम लोगोंका वही माहात्म्य देवोंके मध्यमें प्रख्यात है ।

४ हे ऋभुओ, तुम लोगोंने एक चमसको चार भागोंमें विभक्त किया था, कर्म द्वारा गौको चर्मसे परिवृत किया था; अतएव तुम लोगोंने देवोंके बीच अमरत्व पाया है । हे वाजगण, ऋभुगण, तुम लोगोंका यह कर्म प्रशंसाके योग्य है ।

५ वाजोंके साथ विख्यात नेता ऋभुओंने जिस धनको उत्पन्न किया था, प्रधान और प्रभूत वह अन्नविशिष्ट धन ऋभुओंके निकटसे हमारे निकट आवे। यज्ञमें ऋभुओं द्वारा सम्पन्न रथ विशेष रूपसे प्रशंसाके योग्य है । हे दीप्तिविशिष्ट ऋभुओ, तुम लोग जिसकी रक्षा करते हो, वह दर्शन-योग्य होता है ।

६ वाज, विभु और ऋभु जिस पुरुषकी रक्षा करते हैं, वह बलवान् होकर रणकुशल होता है, वह ऋषि होकर स्तुतियुक्त होता है, वह शूर होकर शत्रुओंका प्रक्षेपक होता है, वह युद्धमें उद्धर्ष होता है, वह धनपुष्टि और पुत्र-पौत्रादि धारण करता है ।

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७॥
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥८॥
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददानः ॥९॥



३७ सूक्त

ऋभुगण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥१॥

७ हे वाजगण, हे ऋभुगण, तुम लोग अत्युत्कृष्ट और दर्शनीय रूप धारण करते हो। हम लोगोंने तुम्हारे लिये यह उचित स्तोत्र किया है । तुम लोग इसका सेवन करो । तुम लोग धीमान्, कवि और ज्ञानवान् हो। स्तोत्र द्वारा हम तुम लोगोंको आवेदित करते हैं।

८ हे ऋभुओ, हमारी स्तुतिके लिये, मनुष्योंकी हितकारिणी समस्त भोग्य वस्तुओंको जानकर, तुम उनको समाप्ति करो एवम् हमारे लिये दीप्तिमान्, बलकारक और बलवान् शत्रुओंके शोषक धन और अन्नका सम्पादन करो।

९ हे ऋभुओ, तुम लोग हमारे इस यज्ञमें प्रीत होकर पुत्र-पौत्रादिका सम्पादन करो, इस यज्ञमें धन सम्पादन करो और इस यज्ञमें भृत्यादि-युक्त यश सम्पादन करो। हम लोग जिस अन्नके द्वारा दूसरोंका अतिक्रमण कर सकें, उस तरहका रमणीय अन्न हम लोगोंको दो।

---

१ हे रमणीय ऋभुओ, तुम लोग जिस तरहसे दिवसोंको सुदिन करनेके लिये मनुष्योंके यज्ञको धारण करते हो, हे वाजगण, हे ऋभुगण, उसी तरहसे तुम लोग देवमार्ग द्वारा हमारे यज्ञमें आगमन करो।

ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२॥
त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३॥
पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४॥
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५॥
सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥६॥

---

२ आज यह सारे यज्ञ तुम्हारे हृदय और मनमें प्रीतिदायक हों, घृतमिश्रित पर्याप्त सोमरस तुम्हारे हृदयमें गमन करे। चमसपूर्ण अभिषुत सोमरस तुम्हारी कामना करता है । वह प्रीत होकर तुम्हें सुकर्मके लिये हृष्ट करे ।

३ हे वाजगण, हे ऋभुगण, जो लोग सवनत्रयोपेत, देवोंके हितकर सोमको, तुम लोगोंके उद्देशसे, धारण करते हैं अथवा सोमको तुम लोगोंके उद्देशसे धारण करते हैं, उन समवेत प्रजाओंके मध्यमें हम मनुकी तरह प्रभूत-दीप्तियुक्त होकर तुम्हारे उद्देशसे सोम प्रदान करते हैं।

४ हे ऋभुओ, तुम्हारे अश्व पीन हैं, तुम्हारे रथ दीप्तिशाली हैं, तुम्हारा हनुद्वय लोहेकी तरह सारवान् है । तुम अन्नवान् और शोभन निष्क ※ (दान) वाले हो । हे इन्द्रके पुत्रो और बलके पुत्रो, तुम लोगोंके हर्षके लिये यह प्रथम सवन अनुष्ठित हुआ है।

५ हे ऋभुओ, हम अत्यन्त असमान धनका आह्वान करते है, संग्राममें अत्यन्त बलवान् रक्षकका आह्वान करते हैं और सर्वदा दानशोल, अश्ववान् तथा इन्द्रवान् या इन्द्रियवान् आपके गणका आह्वान करते हैं ।

६ ऋभुओ, तुम और इन्द्र जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, वही श्रेष्ठ होता है। वह कर्म द्वारा धनभागी हो। वह यज्ञमें अश्वयुक्त हो।

※ ऋग्वेदके अनेक स्थानोंमें "निष्क" शब्द प्रयुक्त हुआ है । यह उस समयकी स्वर्ण-मुद्रा था।

वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥७॥
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८॥

३८ सूक्त

प्रथमके द्यावापृथिवी और अवशिष्टके दधिक्रा देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥१॥
उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥२॥
यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥३॥

७ हे वाजगण, हे ऋभुगण, हम लोगोंको यज्ञमार्ग प्रज्ञापित करो । हे मेधावियो, तुम लोग स्तुत होनेपर समस्त दिशाओंको उत्तीर्ण करनेकी सामर्थ्यको वितरित करो ।

८ हे वाजगण हे ऋभुगण, हे इन्द्र, हे अश्विद्वय, तुम लोग हम स्तुति करनेवाले मनुष्योंके लिये, धन-दानार्थ, प्रभूत धन और अश्वके दानकी आज्ञा करो ।

———

१ हे द्यावापृथिवी, दाता त्रसदस्यु राजाने तुम्हारे समीपसे बहुत धन पा करके याचक मनुष्योंको दिया था, तुमने उन्हें अश्व और पुत्र दिया था एवम् दस्युओंको मारनेके लिये अभिभव-समर्थ उग्र अस्त्र दिया था ।

२ गमनशील, अनेक शत्रुओंके निषेधक, समस्त मनुष्योंके रक्षक, सुन्दर-गमन, दीप्ति-विशिष्ट, शीघ्रगामी एवम् बलवान् राजाकी तरह शत्रु-विनाशक दधिक्रा (अश्वरूपी अग्नि) देवको तुम दोनों (द्यावापृथिवी) धारण करती हो ।

३ सब मनुष्य हृष्ट होकर जिस दधिक्रा देवकी स्तुति करते हैं, वे निम्नगामी जलकी तरह गमनशील संग्रामाभिलाषी शूरकी तरह पद द्वारा दिशाओंके लङ्घनाभिलाषी, रथगामी और वायुकी तरह शीघ्रगामी हैं ।

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४॥
उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५॥
उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत् किरणं ददश्वान् ॥६॥
उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥७॥
उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभिषीमयोधीद् दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८॥

४ जो संग्राममें एकत्रीभूत पदार्थोंको निरुद्ध करते हुए अत्यन्त-भोगवासनासे समस्त दिशाओंमें गमन करते और वेगसे विचरण करते हैं, जिनकी शक्ति आविर्भूत रहती हैं, वे ज्ञातव्य कर्मोंको जानते हुए स्तुतिकारी यजमानोंके शत्रुओंको तिरस्कृत करते हैं।

५ मनुष्य जैसे वस्त्रापहारक तस्करको देखकर चीत्कार करता है, वैसे ही संग्राममें शत्रुगण दधिक्रा देवको देखकर चीत्कार करते हैं। पक्षिगण जिस प्रकार नीचेकी ओर आनेवाले क्षुधार्त्त श्येन पक्षीको देख कर पलायन करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य अन्न और पशु-यूथके उद्देशसे गमन करनेवाले दधिक्रा देवको देखकर चीत्कार करते हैं।

६ वे असुर-सेनाओंमें जानेकी अभिलाषा करके रथपङ्क्तियोंसे युक्त होकर गमन करते हैं। वे अलङ्कृत हैं। वे मनुष्योंके हितकर अश्वकी तरह शोभायमान हैं। वे मुखस्थित लौह-दण्ड या लगामका दंशन करते और अपने पदाघातसे उद्भूत धूलिका लेहन करते हैं।

७ इस प्रकारका वह अश्व सहनशील, अन्नवान् स्व-शरीर द्वारा समरमें कार्य साधन करता है। वह ऋजुगामी और वेगगामी है। शत्रु-सेनाओंके मध्यमें वह वेगसे गमन करता है। वह धूलिको उत्थित करके भ्रूदेशके ऊपर विक्षिप्त करता है।

८ युद्धाभिलाषी लोग दीप्तिमान् शब्दकारी वज्रकी तरह हिंसाकारी दधिक्रा देवसे भीत होते हैं। जब वे चारों तरफ हजारोंके ऊपर प्रहार करते हैं, तब वे उत्तेजित होकर भीम और दुर्वार हो जाते हैं।

उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत् सहस्रैः ॥९॥
आदधिक्राः शवसा पञ्चकृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषा पस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१०॥



३९ सूक्त

दधिक्रा देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

आशुं दधिक्रान्तमु नुष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१॥
महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसन्नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२॥

---

९ मनुष्योंकी अभिलाषाके पूरक एवम् वेगवान् दधिक्रा देवके अभिभवकारक वेगकी स्तुति मनुष्यगण करते और कहते हैं कि, शत्रुगण पराभूत होंगे । दधिक्रा देव सहस्र सेनाके साथ गमन करते हैं ।

१० सूर्य जिस प्रकारसे तेज द्वारा जल दान करते हैं, उसी तरहसे दधिक्रादेव, बल द्वारा, पञ्चकृष्टि (देव, मनुष्य, असुर, राक्षस और पितृगण अथवा चारों वर्ण और निषाद) को विस्तृत करते हैं। शत-सहस्रदाता, वेगवान् [दधिक्रा देव] हमारे स्तुतिवाक्यको मधुर फल द्वारा संयोजित करें ।

---

१ हम लोग शीघ्रगामी उसी दधिक्रा देवकी शीघ्र स्तुति करेंगे। द्यावापृथिवीके समीपसे उनके सम्मुख घास विक्षेप करेंगे। तमोनिवारिणी उषा देवी हमारी रक्षा करें एवम् समस्त दुरितोंसे हमें पार करें ।

२ हम यज्ञके सम्पादक हैं। हम बहुतों द्वारा वरणीय, महान् और अभीष्टवर्षी दधिक्रादेवकी स्तुति करेंगे । हे मित्रावरुण, तुम दोनों दीप्तिमान् अग्निकी तरह स्थित, त्राणकर्ता दधिक्रा देवको, मनुष्योंके उपकारके लिये, धारण करते हो ।

यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत् समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसन्तमदितिः कृणोतु समित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३॥
दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४॥
इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

४० सूक्त

दधिक्रा देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

दधिक्राव्ण इदुनु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्ने रुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१॥

---

३ जो यजमान उषाके प्रकाशित होनेपर अर्थात् प्रभात होनेपर और अग्निके समिद्ध होनेपर अश्वरूप दधिक्राकी स्तुति करते हैं, मित्र, वरुण और अदितिके साथ दधिक्रादेव उस यजमानको निष्पाप करें।

४ हम अन्नसाधक, बलसाधक, महान् और स्तोताओंके कल्याणकारक दधिक्राके नामकी स्तुति करते हैं। कल्याणके लिये हम वरुण, मित्र, अग्नि और वज्रबाहु इन्द्रका आह्वान करते हैं।

५ जो युद्धके लिये उद्योग करते हैं और जो यज्ञ आरम्भ करते हैं, वे दोनों ही इन्द्रकी तरह दधिक्राका आह्वान करते हैं। हे मित्रावरुण, तुम मनुष्योंके प्रेरक अश्वस्वरूप दधिक्राको हमारे लिये धारण करो।

६ हम जयशील, व्यापक और वेगवान् दधिक्रा देवकी स्तुति करते हैं। वे हमारी चक्षु आदि इन्द्रियोंको सुगन्ध-विशिष्ट करें। वे हमारी आयुको वर्द्धित करें।

---

१ हम बारम्बार दधिक्रा देवकी स्तुति करेंगे। सम्पूर्ण उषा हमें कर्ममें प्रेरित करें। हम जल, अग्नि, उषा, सूर्य, बृहस्पति और अङ्गिरो-गोत्रोत्पन्न जिष्णुकी स्तुति करेंगे।

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उपसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रा वेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२॥
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसम्परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३॥
उत स्य वाजो क्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनुसन्तवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥४॥
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥



२ गमनशील, भरणकुशल, गौओंके प्रेरक और परिचारकोंके साथ निवास करनेवाले दधिक्रा देव अभिलषणीय उषाकालमें अन्नकी इच्छा करें। शीघ्रगामी, सत्यगमनशील, वेगवान् और उत्प्लवन द्वारा गमनशील दधिक्रा देव अन्न, बल और स्वर्ग उत्पादन करे ।

३ पक्षिगण जिस तरहसे पक्षियोंकी गतिका अनुसरण करते हैं, उसी तरहसे सब वेगवान् लोग त्वरायुक्त और आकाङ्क्षावान् दधिक्रा देवकी गतिका अनुसरण करते है । श्येन पक्षीकी तरह द्रुतगामी और त्राणकारी दधिक्राके उरुप्रदेशके चारो तरफ एकत्र होकर अन्नके लिये सब गमन करते है ।

४ वह अश्व-रूप देव कण्ठप्रदेशमें, कक्षप्रदेशमें, मुखप्रदेशमें बद्ध होते हैं एवम् बद्ध होकर पैदल शीघ्र गमन करते हैं। दधिक्रा देव अधिक बलवान् होकर यज्ञाभिमुख कुटिल मार्गों का अनुसरण करके सर्वत्र गमन करते हैं ।

५ हंस [आदित्य] दीप्त आकाशमें अवस्थित रहते हैं। वसु [वायु] अन्तरिक्षमें अवस्थिति करते हैं । होता [वेदिकाग्नि] वेदीस्थलपर गार्हपत्यादि रूपसे अवस्थिति करते हैं एवम् अतिथिवत् पूज्य होकर गृहमें [पाकादिसाधन रूपसे] अवस्थिति करते हैं। ऋत [सत्य, ब्रह्म, यज्ञ] मनुष्योंके मध्यमें अवस्थान करते हैं, वरणीय स्थानमें अवस्थान करते हैं, यज्ञस्थलमें अवस्थान करते हैं एवम् अन्तरिक्ष-स्थलमें अवस्थान करते हैं । वे जलमें उत्पन्न हुए हैं, रश्मियोंमें उत्पन्न हुए हैं, सत्यमें उत्पन्न हुए है और पर्वतोंमें उत्पन्न हुए हैं।

४१ सूक्त

इन्द्र और वरुण देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रा वरुणा नमस्वान् ॥१॥
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२॥
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३॥
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४॥
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५॥

१ हे इन्द्र, हे वरुण, अमर होता अग्निकी तरह कौन हवियुक्त स्तोम [स्तोत्र] तुम दोनोंका अनुग्रह लाभ करेगा ? हे इन्द्र, हे वरुण, वह स्तोम [प्रशंसा] हम लोगोंके द्वारा अभिहित होकर एवम् प्रज्ञोपेत और हवियुक्त होकर तुम दोनोंके हृदयङ्गम हो ।

२ हे प्रसिद्ध इन्द्र और वरुणदेव, जो मनुष्य हविलक्षण अन्नवान् होकर सख्यके लिये तुम दोनोंसे बन्धुत्व करता है, वह मनुष्य पाप नाश करता है, संग्राममें शत्रुका विनाश करता है और महती रक्षा द्वारा प्रख्यात होता है ।

३ हे प्रसिद्ध इन्द्र और वरुण, तुम दोनों देव हम स्तोत्र करनेवाले मनुष्योंके लिये रमणीय धन देनेवाले होओ । यदि तुम दोनों परस्पर [यजमानके] सखा हो और सख्य-कर्मके लिये अभिषुत सोम द्वारा अन्नवान् और हृष्ट हो, तो धन देने वाले होओ ।

४ हे उग्र इन्द्र और वरुण, तुम दोनों इस शत्रुके ऊपर दीप्त और अतिशय तेजोविशिष्ट वज्र प्रक्षेप करो । जो शत्रु हम लोगोंके द्वारा दुर्दमनीय, अत्यन्त अदाता और हिंसक है, उस शत्रुके विरुद्ध तुम दोनों अभिभवकर बलका प्रयोग करो ।

५ हे इन्द्र और वरुण, वृषभ जिस तरहसे धेनुको प्रीत करता है, उसी तरहसे तुम दोनों स्तुतियोंके प्रीणयिता होओ । तृणादिका भक्षण करके सहस्रधारा महती गौ जिस तरहसे दुग्ध दोहन करती है, उसी तरहसे स्तुतिरूपा धेनु हम लोगोंकी अभिलाषाका दोहन करे ।

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६॥
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७॥
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८॥
इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९॥
अश्वस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०॥

---

६ हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों रात्रिमें रक्षायुक्त होकर शत्रुओंकी हिंसा करनेके किये लिये अवस्थान करो, जिससे हम लोग पुत्र, पौत्र और उर्वरा भूमि लाभ कर सकें एवम् चिर कालपर्यन्त सूर्यको देख सकें अर्थात् चिरजीवी हों तथा सन्तानोत्पादन शक्ति प्राप्त कर सकें।

७ हे इन्द्र और वरुण, हम लोग धेनु-लाभकी अभिलाषासे तुम लोगोंके निकट प्राचीन रक्षाकी प्रार्थना करते हैं। तुम दोनों क्षमताशाली, बन्धुस्वरूप, शूर एवम् अतिशय पूज्य हो। हम लोग तुम दोनोंके निकट सुखदायक पिताकी तरह सख्य और स्नेहकी प्रार्थना करते हैं।

८ हे शोभन फलके देनेवाले देवद्वय, योद्धा जिस तरहसे संग्रामकी कामना करता है, उसी तरहसे हम लोगोंकी रत्नाभिलाषिणी स्तुतियाँ तुम दोनोंकी कामना करती हुई रक्षा-लाभके लिये तुम दोनोंके निकट गमन करती हैं। दध्यादि द्वारा शोभन करनेके लिये जैसे गौएं सोमके निकट रहती हैं, वैसे ही हमारी आन्तरिक स्तुतियाँ इन्द्र और वरुणके निकट गमन करती हैं।

९ धन-लाभके लिये जैसे सेवक धनियोंके निकट गमन करते हैं, उसी तरह हमारी स्तुतियाँ सम्पित्त-लाभकी इच्छासे इन्द्र और वरुणके निकट गमन करें। भिक्षुक स्त्रियोंकी तरह अन्नकी भिक्षा माँगते हुए इन्द्रके निकट गमन करें।

१० हम लोग विना प्रयत्नके अश्वसमूह, रथ-समूह, पुष्टि एवम् अविचल धनके स्वामी होंगे। वे दोनों देव गमन-शील हों एवम् नूतन रक्षाके साथ हम लोगोंके अभिमुख अश्व और धन नियुक्त करें।

आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीलान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥११॥



सूक्त ४२

१-६ ऋचाओंके पुरुकुत्स-तनय राजर्षि त्रसदस्यु देवता । अवशिष्टके-इन्द्र और वरुण देवता ।
त्रसदस्यु ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥१॥
अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२॥
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयञ्च ॥३॥

---

११ हे महान् इन्द्र और वरुण, तुम दोनों महान् रक्षाके साथ आगमन करो। जिस अन्नप्रापक युद्धमें शत्रुसेनाके आयुध क्रीड़ा करते हैं, उस युद्धमें हम लोग तुम दोनोंके अनुग्रहसे जयलाभ कर सकें।

---

१ हम क्षत्रिय-जात्युत्पन्न [अतिशय बलवान्] और सम्पूर्ण मनुष्योंके अधीश हैं । हमारा राज्य दो प्रकारका है। सम्पूर्ण देवगण जैसे हमारे हैं, वैसे ही सारी प्रजा भी हमारी ही है। हम रूपवान् और अन्तिकस्थ वरुण हैं। देवगण हमारे यज्ञकी सेवा करते हैं। हम मनुष्यके भी राजा हैं।

२ हम राजा वरुण हैं। देवगण हमारे लिये ही असुर-विघातक श्रेष्ठ बल धारण करते हैं। हम रूपवान् और अन्तिकस्थ वरुण हैं। देवगण हमारे यज्ञकी सेवा करते हैं हम मनुष्यके भी है

३ हम इन्द्र और वरुण हैं। महत्ताके कारण विस्तीर्ण, दुरवगाहा, सुरूपा, द्यावापृथिवी हम ही हैं। हम विद्वान् हैं । हम सकल भूतजातको, प्रजापतिकी तरह, प्रेरित करते हैं। हम द्यावापृथिवीको धारण करते हैं।

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेऋर्तावोत त्रिधातु प्रथयद्विभूम ॥४॥
मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभि भूत्योजाः ॥५॥
अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६॥
विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७॥
अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥८॥

---

४ हमने ही सिञ्चमान जलका सेचन किया है, उदक या आदित्यके स्थानभूत द्युलोकका धारण किया है अथवा आकाशमें आदित्यका धारण किया है। जलके निमित्तसे हम अदित-पुत्र ऋतावा [यज्ञवान्] हुए हैं। हमने व्याप्त आकाशको तीन प्रकारसे प्रथित किया है अर्थात् परमेश्वरने हमारे लिये ही क्षिति आदि तीन लोकोंको बनाया है।

५ सुन्दर अश्ववाले और संग्रामेच्छु नेता हमारा ही अनुगमन करते हैं। वे सब वृत होकर युद्धके लिये संग्राममें हमारा ही आह्वान करते हैं। हम धनवान् इन्द्र होकर युद्ध करते हैं। हम अभिभव करने वाले बलसे युक्त हैं। हम संग्राममें धूलि उत्थित करते हैं।

६ हमने उन सकल कार्योंका किया है। हम अप्रतिहत-देवबलसे युक्त हैं। कोई भी हमारा निवारण नहीं कर सकता। जब सोमरस हमें हृष्ट करता है एवम् उक्थ-समूह हमें हृष्ट करता है, तब अपार और उभय द्यावापृथिवी चलित हो जाती है।

७ हे वरुण, तुम्हारे कर्मको सकल भूतजात जानता है। हे स्तोता, वरुणके लिये बोलो अर्थात् वरुणकी स्तुति करो। हे इन्द्र, तुमने वैरियोंका बध किया है—यह तुम्हारी प्रसिद्धि है। हे इन्द्र, तुमने आच्छन्न नदियोंको उन्मुक्त किया है।

८ दुर्गहके पुत्र पुरुकुत्सके बन्दी होनेपर इस देश या पृथिवीके पालयिता सप्तर्षि हुए थे। उन्होंने इन्द्र और वरुणके अनुग्रहसे पुरुकुत्सकी स्त्रीके लिये यज्ञ करके त्रसदस्युका लाभ किया था। त्रसदस्यु इन्द्रकी तरह शत्रु-विनाशक और अर्द्ध देव देवताओंके समीपमें वर्तमान या देवताओंके अर्द्धभूत इन्द्रकी तरह थे।*

* दुर्गह राजाके पुत्र पुरुकुत्स एक बार कारागारमें रुद्ध हो गये। उनकी महिषीने राज्यमें अराजकता देखकर पुत्र-लाभके लिये स्वेच्छागत सप्तर्षिकी पूजा की। उन्होंने प्रसन्न होकर इन्द्र और वरुणका विशेष रूपसे यज्ञ किया। अनन्तर राज्ञीने त्रसदस्युको प्राप्त किया। —सायण।

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥९॥
राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवन्नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०॥



४३ सूक्त

अश्विद्वय देवता । सुहोत्रके पुत्र पुरुमीह्ल और अजमीह्ल ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

क उ श्रवत् कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१॥
को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥२॥

---

९ हे इन्द्र और वरुण, ऋषि द्वारा प्रेरित होनेपर पुरुकुत्सकी पत्नीने तुम दोनोंको, हव्य और स्तुति द्वारा, प्रसन्न किया था। अनन्तर तुम दोनोंने उसे शत्रुनाशक अर्द्धदेव राजा त्रसदस्युको दान दिया था।

१० हम लोग तुम दोनोंकी स्तुति करके धन द्वारा परितृप्त होंगे। देवगण हव्य द्वारा तृप्त हों और गौएँ तृणादि द्वारा परितृप्त हों । हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों विश्वके हन्ता हो । तुम दोनों हम लोगोंको सदा अहिंसित धन दान करो।

---

१ यज्ञार्ह देवोंके मध्यमें कौन देव इसे सुनेंगे ? कौन देव इस वन्दनशील स्तोत्रका सेवन करेंगे ? देवताओंके मध्य किस देवके हृदयमें हम इस प्रियतरा, द्योतमाना, हव्ययुक्ता शोभन स्तुतिको सुनावें अर्थात् अश्विद्वयके अतिरिक्त स्तुतिके स्वामी कौन देव होंगे ?

२ कौन देवता हम लोगोंको सुखी करेंगे ? कौन देवता हमारे यज्ञमें सबकी अपेक्षा अधिक आगमन करते हैं ? देवोंके मध्यमें कौन देवता हम लोगोंको सबकी अपेक्षा अधिक सुखी करते हैं ? इस तरह उपर्युक्त गुणोंसे विशिष्ट अश्विद्वय ही हैं । कौन रथ वेगवान् अश्वयुक्त और शीघ्रगामी है, जिसका सूर्यकी पुत्रीने सम्भजन किया था ?

मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३॥
का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥४॥
उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्काः ॥५॥
सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोरुषासः परि ग्मन् ।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥६॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥



३ रात्रिके व्यतीत होनेपर इन्द्र जिस तरहसे अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हैं, हे गमनशील अश्विद्वय तुम दोनों भी उसी तरहसे अभिषवण-कालमें गमन करो । तुम दोनोंने द्युलोकसे आगमन किया है। तुम दोनों दिव्य और शोभन गतिसे विशिष्ट हो । तुम दोनोंके कर्मोंके मध्यमें कौन कर्म सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है ?

४ कौन स्तुति तुम दोनोंके समान हो सकती है? किस स्तुति द्वारा आहूयमान होनेपर तुम दोनों हमारे निकट आगमन करोगे ? कौन तुम दोनोंके महान् क्रोधका सहन कर सकता है ? हे मधुर जलके सृष्टिकर्त्ता शत्रुविनाशक अश्विद्वय, तुम दोनों हम लोगोंको, आश्रय-दान द्वारा, रक्षित करो ।

५ हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका रथ द्युलोककी चारो तरफ विस्तृत भावसे गमन करता है । वह समुद्रसे तुम दोनोंके अभिमुख गमन करता है। तुम दोनोंके लिये पके जौके साथ सोमरस संयोजित हुआ है। हे मधुर जलके सृष्टिकर्ता, शत्रु-विनाशक अश्विद्वय, अध्वर्युगण मधुर दुग्धके साथ सोमरसको मिश्रित कर रहे हैं ।

६ मेघ या उदक-रस द्वारा तुम दोनोंके अश्वोंका सेचन हुआ है। पक्षिसदृश अश्वगण दीप्ति द्वारा दीप्यमान होकर गमन करते हैं । जिस रथ द्वारा तुम दोनों सूर्याके पालयिता हुए थे, तुम दोनोंका वह शीघ्रगामी रथ प्रसिद्ध है ।

७ हे अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम दोनों समान मनवाले अर्थात् सदृश हो । हम स्तुति द्वारा तुम दोनोंको संयुक्त करते हैं। वह शोभन स्तुति हम लोगोंके लिये फलवती हो । हे रमणीय अन्नवाले अश्विद्वय, तुम दोनों स्तोताकी रक्षा करो । हे नासत्यद्वय, हमारी अभिलाषा तुम दोनोंके निकट जानेसे पूर्ण होती है ।

४४ सूक्त

अश्विद्वय देवता । पुरुमीह्ल और अजमीह्ल ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१॥
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥२॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोमस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४॥
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्दे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

---

१ अश्विनीकुमारो, हम आज तुम्हारे विख्यात वेगवाले और गोसङ्गत या गोप्रद रथका आह्वान करते हैं। वह रथ सूर्याको धारण करता है। उसके निवासाधारभूत (बैठनेकी जगहका) काष्ठ बन्धुर हैं। वह रथ स्तुतिवाहक, प्रभूत और धनवान् है।

२ हे आदित्य या द्युलोकके पुत्रस्थानीय अश्विनीकुमारो, तुम दोनों देवता हो। तुम दोनों कर्म द्वारा प्रसिद्ध शोभाका सम्भोग करते हो। तुम दोनोंके शरीरको सोमरस प्राप्त करता है। महान् अश्व (या स्तुतियाँ) तुम दोनोंके रथका वहन करते हैं।

३ कौन सोमदाता यजमान, आज, रक्षाके लिये, सोमपानके लिये यज्ञकी पूर्त्तिके लिये अथवा सम्भजनके लिये तुम दोनोंकी स्तुति करता है? हे अश्विद्वय, कौन नमस्कार करनेवाला तुम दोनोंको यज्ञके प्रति आवर्तित करता है।

४ हे नासत्यद्वय, तुम दोनों बहुविध हो। इस यज्ञमें हिरणमय रथ द्वारा तुम दोनों आओ। मधुर सोमरसका पान करो एवम् परिचर्या करनेवालेको अर्थात् हमें रमणीय धन दान करो।

५ शोभन आवर्तनवाले हिरणमय रथ द्वारा तुम दोनों द्युलोक या पृथिवीसे हमारे अभिमुख आगमन करते हो। तुम दोनोंकी इच्छा करनेवाले दूसरे यजमान तुम दोनोंको नहीं रोक रखें, अतएव हमने पूर्वमें ही स्तुति अर्पित की है।

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीह्लासो अग्मन् ॥६॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥



४५ सूक्त

अश्विद्वय देवता । वामदेव ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

एषस्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो विरप्शते ॥१॥
उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२॥

६ हे दस्रद्वय, तुम लोग हम दोनों (पुरुमीहूल और अजमीहूल) को शीघ्र ही बहुपुत्रयुक्त प्रभूत धन दान करो । हे अश्विद्वय, पुरुमीहूलके ऋत्विकोंने तुम दोनोंको स्तोत्र द्वारा प्राप्त किया है एवम् अजमीहूलके ऋत्विकोंकी स्तुति भी उसीके साथ सङ्गत हुई हैं ।

७ अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम दोनों समान मनवाले हो अर्थात् सदृश हो । हम जिस स्तुति द्वारा तुम दोनोंको संयुक्त करते हैं, वह शोभन स्तुति हम लोगोंके लिये फलवती हो । हे रमणीय अन्नवाले अश्विद्वय, तुम दोनों स्तोताकी रक्षा करो । हे नासत्यद्वय, हमारी अभिलाषा तुम दोनोंके निकट जानेसे पूर्ण होती है ।

---

१ यह दीप्तिमान् आदित्य उदित होते हैं । हे अश्विद्वय, तुम दोनोंका रथ चारों तरफ गमन करता है । वह द्युतिमान् आदित्यके साथ समुच्छ्रित प्रदेशमें मिलित होता है । इस रथके ऊपरी भागमें मिथुनीभूत त्रिविध (अशन, पान, खाद) अन्न है एवम् सोमरसपूर्ण चर्ममय पात्र चतुर्थ रूपमें शोभा पाता है ।

२ उषाके आरम्भ—कालमें तुम दोनोंका त्रिविधान्नवान्, सोमरसोपेत, अश्वयुक्त रथ चारो तरफ व्याप्त अन्धकारको दूर करता हुआ और सूर्यकी तरह दीप्त तेजको विस्तारित करता हुआ उन्मुख होकर गमन करता है ।

मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३॥
हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुवः उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥४॥
स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नयः उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५॥
आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६॥
प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७॥

---

३ सोमपान करने योग्य मुख द्वारा तुम दोनों सोमरसका पान करो । सोमरसके लाभके लिये प्रिय रथकी योजना करो एवम् यजमानके गृहमें आगमन करो । गमनमार्गको सोम द्वारा प्रीत करो । तुम दोनों सोमपूर्ण चर्ममय पात्र धारण करो ।

४ तुम दोनोंको शीघ्रगामी, माधुर्ययुक्त, द्रोहरहित, हिरण्मय (रमणीय) पक्षविशिष्ट, वहन-शील, उषाकालमें जागरणकारी, जलप्रेरक, हर्षयुक्त एवम् सोमस्पर्शी अश्व हैं, जिनके द्वारा तुम लोग हमलोगोंके सवनोंमें आगमन करते हो, जैसे मधुमक्षिका मधुके समीप गमन करती है ।

५ जब कर्म करनेवाले अध्वर्युगण अभिमन्त्रित जलसे हस्त शोधन करते हुए, प्रस्तर-खण्ड द्वारा, मधुयुक्त सोम अभिषव करते हैं, तब यज्ञके साधनभूत, सोमवान् गार्हपत्यादि अग्नि एकत्र निवासकारी अश्विद्वयको, प्रत्यह, स्तुति करते हैं ।

६ समीपमें निपतित होनेवाली रश्मियाँ दिवस द्वारा अन्धकारको ध्वंस करती हुई सूर्यकी तरह दीप्त तेजको विस्तारित करता हैं । सूर्य अश्वयोजना करके गमन करते हैं । हे अश्विद्वय, तुम दोनों सोमरसके साथ, उनका अनुगमन करके, समस्त पथ प्रज्ञापित करो ।

७ हे अश्विनीकुमारो, यज्ञ करनेवाले हम तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं । तुम दोनोंका सुन्दर अश्वयुक्त, नित्य तरुण जो रथ है एवम् जिस रथ द्वारा तुम दोनों क्षण मात्रमें लोक-त्रयका परिभ्रमण करते हो, उसी रथ द्वारा तुम दोनों हव्य-युक्त, शीघ्र अतिवाही एवम् भोगप्रद यज्ञमें आगमन करो ।

---

४६ सूक्त

५ अनुवाक । प्रथम ऋचाके वायु देवता, अवशिष्टके इन्द्र और वायु देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु। त्वं हि पूर्वपा असि ॥१॥

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः । वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥२॥

आ वाँ सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभिप्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३॥

रथं हिरण्ययन्वधुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आहिस्थाथो दिविस्पृशम् ॥४॥

रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसं समुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५॥

इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ॥६॥

इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥७॥

---

१ हे वायु, स्वर्ग-प्रापक यज्ञमें तुम सर्वप्रथम अभिषुत सोमरसका पान करो; क्योंकि तुम पूर्वपा हो ।

२ हे वायु, तुम नियुद्वान् हो और इन्द्र तुम्हारे सारथि हैं। तुम अपरिमित कामनाको पूर्ण करनेके लिये आगमन करो। तुम अभिषुत सोमका पान करो।

३ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनोंका, सहस्रसंख्यक अश्व, त्वरायुक्त होकर, सोमपानके लिये ले आवें।

४ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनो हिरणमय निवासाधार काष्ठसे युक्त, द्युलोकस्पर्शी और शोभन यज्ञशाली रथपर आरोहण करो।

५ हे इन्द्र और वायु, तुम दोनों प्रभूत बलसम्पन्न रथ द्वारा हव्यदाता यजमानके निकट आगमन करो एवम् उसी लिये इस यज्ञमें आगमन करो।

६ हे इन्द्र और वायु, यह सोम अभिषुत हुआ है, तुम दोनों देवोंके साथ समान प्रीतियुक्त होकर हव्यदाता यजमानकी यज्ञशालामें उसका पान करो।

७ हे इन्द्र और वायु, इस यज्ञमें तुम दोनोंका आगमन हो। इस यज्ञमें तुम लोगोंके सोमपानके लिये अश्व विमुक्त हों

४७ सूक्त

इन्द्र और वायु देवता। वामदेव ऋषि। अनुष्टुप् छन्द।

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२॥
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४॥



१ हे वायु, व्रतचर्यादिके द्वारा दीप्त (पवित्र) होकर हम द्युलोक जानेकी अभिलाषासे तुम्हारे लिये मधुर सोमरसका प्रथम आनयन करते हैं। हे वायुदेव, तुम स्पृहणीय हो। तुम अपने नियुद् (अश्व) वाहन द्वारा सोमपानके लिये आगमन करो।

२ हे वायु, तुम और इन्द्र इस गृहीत सोमके पानयोग्य हो, तुम दोनों ही सोमको प्राप्त करते हो; क्योंकि जल जिस तरहसे गर्तकी ओर गमन करता है, उसी तरहसे सकल सोमरस तुम दोनोंके अभिमुख गमन करते हैं।

३ हे वायु, तुम इन्द्र हो। तुम दोनों बलके स्वामी हो। तुम दोनों पराक्रमशाली और नियुद्गणसे युक्त हो। तुम दोनों एक ही रथपर आरोहण करके, हम लोगोंको आश्रय प्रदान करनेके लिये और सोमपान करनेके लिये यहाँ आओ।

४ हे नेता तथा यज्ञवाहक इन्द्र और वायु, तुम दोनोंको जो बहुतेरे लोगों द्वारा स्पृहणीय नियुद्गण हैं, उन्हें हमें दे दो। हम तुम दोनोंको हवि देनेवाले यजमान हैं।

४८ सूक्त

वायु देवता। वामदेव ऋषि।

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१॥
निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥२॥
अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३॥
वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४॥
वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम्।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५॥



१ हे वायु, शत्रुओंके प्रकम्पक राजाकी तरह तुम पूर्वमें हो दूसरेके द्वारा अपीत सोमका पान करो एवम् स्तोताओंके धनका सम्पादन करो। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

२ हे वायु तुम अभिशस्तिका निःशेष नियोग करते हो। तुम नियुद्गणसे युक्त हो और इन्द्र तुम्हारे सारथि हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

३ हे वायु, कृष्णवर्ण, वसुओकी धात्री, विश्वरूपा द्यावापृथिवी तुम्हारा अनुगमन करती हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

४ हे वायु, मनकी तरह वेगवान्, परस्पर संयुक्त, नव-नवतिसंख्यक (९९) अश्व तुम्हारा आनयन करते हैं। हे वायु, तुम सोमपानके लिये आह्लादकर रथ द्वारा आगमन करो।

५ हे वायु, तुम शतसंख्यक पोषणीय अश्वोंको रथमें योजित करो अथवा सहस्रसंख्यक अश्वोंको रथमें योजित करो। उनसे युक्त होकर तुम्हारा रथ वेगपूर्वक आवे।

४९ सूक्त

इन्द्र और बृहस्पति देवता । वामदेव ऋषि गायत्री छन्द ।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥१॥
अयं वां परिषिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥२॥
आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥३॥
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥४॥
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५॥
सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥६॥

५० सूक्त

१—९ ऋचाओंके बृहस्पति देवता, १०—११ के इन्द्र और बृहस्पति देवता । वामदेव ऋषि ।

त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरोविप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥

---

१ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनोंके मुँहमें हम इस प्रिय सोमरूप हविका प्रक्षेप करते हैं । हम तुम दोनोको उक्थ (शस्त्र) और मदजनक सोमरस प्रदान करते हैं ।

२ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनोंके मुँहमें पानके लिये और हर्षके लिये यह मनोहर सोम भली भाँतिसे दिया जाता है ।

३ हे सोमपा इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों सोमपानके लिये हमारे यज्ञ-गृहमें आगमन करो ।

४ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों हमें शतसंख्यक गोयुक्त और सहस्रसंख्यक अश्वयुक्त धन दान करो ।

५ हे इन्द्र और बृहस्पति, सोमके अभिषुत होनेपर हम, स्तुति द्वारा, तुम दोनोका सोमपानके लिये आह्वान करते हैं ।

६ हे इन्द्र और बृहस्पति, तुम दोनों हव्यदाता यजमानके गृहमें सोम पान करो और उसके गृहमें निवास करके हृष्ट होओ ।

---

१ वेद या यज्ञके पालयिता बृहस्पति देवने बलपूर्वक पृथिवीकी दसो दिशाओ को स्तम्भित किया था । वे शब्द द्वारा तीनो स्थानोंमें वर्तमान हैं । उन आह्लादक जिह्वाविशिष्ट बृहस्पति देवको पुरातन, द्युतिमान् मेधावियोंने पुरोभागमें स्थापित किया है ।

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२॥
बृहस्पते या परमा परावदत आत ऋतस्पृशो निषेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्य स्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन बलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

२ हे प्रभूत प्रज्ञावान् बृहस्पति, जिनकी गति शत्रुओंको कँपानेवाली है, जो तुम्हें हृष्ट करते हैं और जो तुम्हारी स्तुति करते हैं, उनके लिये तुम फलप्रद, वर्द्धनशील और अहिंसित होते हो एवम् तुम उनके विस्तीर्ण यज्ञकी रक्षा करते हो।

३ हे बृहस्पति, जो अत्यन्त दूरवर्ती स्वर्गनामक उत्कृष्ट स्थान है, उस स्थानसे तुम्हारे अश्व यज्ञमें आगमन करके निषण्ण होते हैं। खात कूपके चारो तरफसे जैसे जलस्राव होता है, उसी तरहसे तुम्हारे चारो तरफ, स्तुतियोंके साथ, प्रस्तर द्वारा, अभिषुत सोम मधुर रसका सिञ्चन करता है।

४ मन्त्राभिमानी बृहस्पतिदेव जब महान् आदित्यके निरतिशय आकाशमें प्रथम जायमान हुए थे, तब सप्त छन्दोमय मुख-विशिष्ट होकर और बहुप्रकारसे सम्भूत होकर तथा शब्दयुक्त एवम् गमनशील तेजोविशिष्ट होकर उन्होने अन्धकारका नाश किया था।

५ बृहस्पतिने दीप्तियुक्त और स्तुतिशाली अङ्गिरागणके साथ, शब्द द्वारा, बल नामक असुरको विनष्ट किया था। उन्होंने शब्द करके भोगप्रदात्री और हव्यप्रेरिका गौओंको बाहर किया था।

६ हम लोग इस प्रकारसे पालक, सर्वदेवतास्वरूप और अभीष्टवर्षी बृहस्पतिकी, यज्ञ द्वारा, हव्य द्वारा और स्तुति द्वारा, परिचर्या करेंगे। हे बृहस्पति, हम लोग जिससे सुपुत्रवान्, वीर्यशाली और धनके स्वामी हो सकें।

स इन्द्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७॥
स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इला पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८॥
अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९॥
इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१०॥
बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११॥

७ जो बृहस्पति (पुरोहित) को सुन्दर रूपसे पोषण करता है एवम् उन्हें प्रथम हव्यग्राही कहकर उनकी स्तुति करता है और नमस्कार करता है, वह राजा अपने वीर्य द्वारा शत्रुओंके बलको अभिभूत करके अवस्थिति करता है।

८ जिस राजाके निकट ब्रह्मा (ब्रह्मणस्पति) प्रथम गमन करते हैं, वह सुतृप्त होकर अपने गृहमें निवास करता है। पृथिवी उसके लिये सब कालमें फल प्रसव करती है। प्रजागण स्वयम् उसके निकट अवनत रहते हैं।

९ जो राजा रक्षणकुशल और धनरहित ब्राह्मण या बृहस्पतिको धन दान करता है, वह अप्रतिहत रूपसे शत्रुओं और प्रजाओंका धन जीतता है एवम् महान् होता है। देवगण उसीकी रक्षा करते हैं।

१० हे बृहस्पति, तुम और इन्द्र इस यज्ञमें हृष्ट होकर यजमानोंको धन दान करो। सर्वव्यापक सोम तुम दोनोंके शरीरमें प्रवेश करे। तुम दोनों हमलोगोंको पुत्र-पौत्रादियुक्त धन दान करो।

११ हे बृहस्पति और इन्द्र, तुम दोनों हम लोगोंको वर्द्धित करो। हम लोगोंके प्रति तुम दोनोंका अनुग्रह एक समयमें ही प्रयुक्त हो। तुम दोनों हमलोगोंके यज्ञकी रक्षा करो, हमारी स्तुतिसे जागरित होओ और स्तोताओंके शत्रुओंके साथ युद्ध करो।

सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टम अध्याय

५१ सूक्त

उषा देवता। वामदेव ऋषि। त्रिष्टुप् छन्द।

इदमुत्यत् पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१॥
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२॥
उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥
कुवित् स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥

---

१ हम लोगोंके द्वारा स्तुत, सर्वप्रसिद्ध, अत्यन्त प्रभूत और कान्तिशाली तेज पूर्व दिशासे, अन्धकारके मध्यसे उत्थित होता है। आदित्य-दुहिता और दीप्तिमती उषा यजमानोंके गमन-कार्यमें सचमुच सामर्थ्ययुक्ता हों।

२ यज्ञ-खातके यूपकाष्ठकी तरह शोभमाना होकर विचित्रा उषा पूर्व दिशाको व्याप्त कर अवस्थिति करती हैं। वे बाधाजनक अन्धकारके द्वारका उद्घाटन करके एवम् दीप्त और पवित्र हो करके प्रकाशित होती हैं।

३ आज तमोनिवारिका और धनवती उषा भोज्यदाता यजमानको, सोमादि धन प्रदान करनेके लिये, उत्साहित करती हैं। अत्यन्त गाढ़ अन्धकारके मध्यमें, बनियोंकी तरह अदातृगण अप्रबुद्धभावसे, निद्रित हों।

४ हे द्योतमान उषाओ, जिस रथ द्वारा तुम लोगोंने सप्तछन्दोयुक्त मुखवाले नवग्व और दशग्व अङ्गिराओंको धनशाली रूपसे प्रदीप्त किया था, हे धनवती उषाओ, तुम लोगोंका वही पुरातन अथवा नूतन रथ आज इस यज्ञ-गृहमें बहु बार आगमन करे।

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५॥
क स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६॥
ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७॥
ता आ चरन्ति समना पुरस्तात् समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥
ता इन्न्वेव समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥९॥

---

५ हे द्युतिमती उषाओ, तुम लोग निद्रित द्विपदों और चतुष्पदोंको अर्थात् मनुष्यों और गौओं आदिको अपने-अपने गमन आदि कार्योंमें प्रबोधित करके, यज्ञमें गमनकारी अश्वोंके द्वारा, भुवनोंका क्षण मात्रमें परिभ्रमण करो।

६ जिन उषाके लिये ऋभुओंने चमस आदिका निर्माण किया था, वह पुरातन उषा कहाँ हैं ? दीप्त, नित्य नूतन, समान रूपविशिष्ट उषाएँ जब दीप्ति प्रकाश करती हैं, तब वे विज्ञात नहीं होता हैं अर्थात् वे सब दिनोंमें एकरूप—सदृश—रहती हैं; इसलिये यह पुरातन और यह नूतन उषा हैं, इस तरहसे वे पहचानी नहीं जा सकती हैं।

७ यज्ञकारिगण जिन उषाओंका उक्थों द्वारा स्तुति करके एवम् स्तोत्रों और शस्त्रों द्वारा उच्चारण करके शीघ्र धन लाभ करते हैं, वे ही कल्याणकारिणी उषाएँ पुरातन कालसे ही अभिगमन करके धन दान करें। वे यज्ञके लिये उत्पन्न हुई हैं और सत्य फल प्रदान करती हैं।

८ एकरूप-विशिष्ट और समान विख्यात उषाएँ पूर्व दिशामें, एक मात्र अन्तरिक्ष देशसे, सर्वत्र विचरण करती हैं। द्युतिमती उषाएँ यज्ञगृहको प्रबोधित करके जलसृष्टिकारिणी रश्मियोंकी तरह स्तुत होती हैं।

९ उषाएं समान, एकरूपविशिष्ट, अपरिमित वर्णयुक्त, दीप्त, शुद्ध और कान्तिपूर्ण शरीर द्वारा दीप्तियुक्त हैं। वे अत्यन्त महान् अन्धकारका गोपन करके विचरण करती हैं।

रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादावः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम ॥१०॥
तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद्द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११॥



५२ सूक्त

उषा देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री छन्द ।

प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥
अश्वेव चित्रारुषी माता गवा मृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२॥
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥
यावयद्द्वेषसन्त्वा चिकित्वित् सूनृतावरि । प्रतिस्तोमैरभूत्स्महि ॥४॥

---

१० हे द्योतमान आदित्यकी दुहिताओ, तुम हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धन दान करो । हे देवियो हम लोग सुख लाभके लिये तुम लोगोंको प्रतिबोधित करते हैं, जिससे हम लोग पुत्र-पौत्रादिसे युक्त धनके पति हो सकें ।

११ हे द्योतमान आदित्यकी दुहिताओ, हम लोग यज्ञके प्रज्ञापक हैं । तुम्हारे निकट हम लोग प्रार्थना करते हैं, जिससे लोगोंके मध्यमें हम लोग कीर्ति और अन्नके स्वामी हो सकें । द्युलोक और द्युतिमती पृथिवी वह यश धारण करें ।

---

१ वह आदित्य-दुहिता उषा दृष्ट होती है । वह स्तुत है और प्राणियोंकी नेत्री है एवम् सुन्दर फलोंकी उत्पादयित्री है । वह भगिनीस्वरूपा रात्रिके पर्यवसानकालमें अन्धकारका विनाश करती है ।

२ अश्वकी तरह मनोहरा, दीप्तिमती, रश्मियोंकी माता और यज्ञवती उषा अश्विद्वयके साथ स्तूयमाना हो अर्थात् अश्विद्वयसे बन्धुत्व करे ।

३ तुम अश्विद्वयकी बन्धु और रश्मियोंकी माता हो । हे उषा, तुम धनकी ईश्वरी हो ।

४ हे सुनृता (सत्यवचन) उषा, तुम शत्रुओंको पृथक् कर दो, तुम संज्ञा दान करो । हम स्तुतियों द्वारा तुम्हें प्रबोधित करते हैं ।

प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः । ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥५॥

आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥६॥

आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् । उषः शुक्रेण शोचिषा ॥७॥



५३ सूक्त

सविता देवता । वामदेव ऋषि । जगती और साविश्री छन्द ।

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।

छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१॥

दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।

विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥२॥

---

५ स्तुतियोग्य रश्मियाँ दृष्ट होती हैं । उषाने जगत्‌को वर्षाकी धाराकी तरह महान् तेजसे परिपूर्ण किया है ।

६ हे कान्तिमती उषा, तुम जगत्‌को तेज द्वारा परिपूर्ण करो, तेज द्वारा अन्धकारको दूर करो उसके अनन्तर नियमानुसारसे हविर्लक्षण अन्नकी रक्षा करो ।

७ हे उषा, तुम दीप्त तेजोयुक्त होकरके रश्मि द्वारा द्युलोकको एवम् विस्तीर्ण और प्रिय अन्तरिक्षको व्याप्त करो ।

---

१ हम लोग असुर (बलवान्) और बुद्धिमान् प्रेरक सविता देवके उस वरणीय एवम् पूज्य धनकी प्रार्थना करते हैं, जिसे वे यजमान हव्यदाताको स्वेच्छापूर्वक देते हैं । महान् सविता हम लोगोंको वह धन सब दिनोंमें दें ।

२ द्युलोक एवम् समस्त लोकके धारक, प्रजाओंको प्रकाश-वृष्टि आदिके द्वारा पालन करनेवाले, कवि सविता, देव हिरण्मय कवच परिधान करते हैं । विचक्षण सविता प्रख्यात होकर भी जगत्‌को तेज द्वारा परिपूर्ण करते हैं और स्तुतियोग्य प्रभूत, सुख उत्पादन करते हैं ।

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥२॥
अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद्व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥३॥
त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥४॥
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥५॥
आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥६॥



३ सविता देव तेज द्वारा द्युलोक और पृथिवीलोकको परिपूर्ण करते हैं एवम् अपने कार्यकी प्रशंसा करते हैं। वे प्रतिदिन जगत्को अपने-अपने कार्यमें स्थापन करते हैं और प्रेरण करते हैं। वे सृजनकार्यके लिये बाहुको प्रसारित करते हैं।

४ सविता देव अहिंसित होकर भुवनोंको प्रदीप्त करते हैं और व्रतोंकी रक्षा करते हैं। वे भुवनस्थ प्रजाओंके लिये बाहु प्रसारण करते हैं। धृतव्रत सविता देव महान् जगत्के ईश्वर हैं।

५ सविता देव महिमा द्वारा परिभव करते हुए अन्तरिक्षत्रय (वायु, विद्युत् और वरुण नामक लोकत्रय अन्तरिक्षके भेद हैं)को व्याप्त करते हैं। वे लोकत्रयको व्याप्त करते हैं। वे दीप्तिमान् अग्नि, वायु और आदित्यको व्याप्त करते हैं। वे तीन द्युलोक (इन्द्र, प्रजापति, और सत्य नामक लोकत्रय)को व्याप्त करते हैं। वे तीन पृथिवीको व्याप्त करते हैं। वे तीन व्रतों (ग्रीष्म, वर्षा और हिम) द्वारा हम लोगोंका अनुग्रहपूर्वक पालन करें।

६ जिन्हें प्रभूत धन है, जो कर्मोंका प्रसव करते हैं, जो सबके लिये गन्तव्य हैं एवम् जो स्थावर और जङ्गम दोनोंको वशमें रखते हैं, वह सविता देव, हम लोगोंके पापक्षयके लिये, हम लोगोंको लोकत्रयस्थित सुख दान करें।

७ सविता देव ऋतुओंके साथ आगमन करें। हम लोगोंके गृहको वर्द्धित करें। हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादि युक्त अन्न दान करें। वे दिन और रात्रि दोनोंमें हम लोगोंके प्रति प्रीत हों। वे हम लोगोंको अपत्ययुक्त धन दान करें।

५४ सूक्त

सविता देवता। वामदेव ऋषि। सावित्री और त्रिष्टुप् छन्द।

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२॥
अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३॥
न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वंगुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥
इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५॥

---

१ सविता देव प्रादुर्भूत हुए हैं। हम शीघ्र ही उनकी वन्दना करेंगे। वे इस समय और तृतीय सवनमें होताओं द्वारा स्तुत हों। जो मानवोंको रत्न दान करते हैं, वह सविता देव हम लोगोंको इस यज्ञमें श्रेष्ठ धन दान करें।

२ तुम पहले यज्ञार्ह देवोंके लिये अमरत्वके साधनभूत सोमके उत्कृष्टतम भागको उत्पन्न करो। हे सविता, उसके अनन्तर तुम हव्यदाताको प्रकाशित करो एवम् पिता, पुत्र और पौत्रादि क्रमसे मनुष्योंको जीवन दान करो।

३ हे सविता देव, अज्ञानतावश अथवा दुर्बल वा बलशाली लोगोंके प्रमादवश अथवा ऐश्वर्यके गर्वसे या परिजनके गर्वसे तुम्हारे प्रति अथवा देव या मनुष्योंके प्रति हमने जो अपराध किया है, इस यज्ञमें तुम हमें उससे निष्पाप करो।

४ सविता देवका वह कर्म हिंसायोग्य नहीं है; क्योंकि वे विश्व भुवन धारण करते हैं। वे सुन्दर अङ्गुलिविशिष्ट होकर पृथ्वीको विस्तीर्ण होनेके लिये प्रेरित करते हैं एवम् द्युलोकको भी विस्तीर्ण होनेके लिये प्रेरित करते हैं। सविता देवका यह कर्म सचमुच अबध्य है।

५ हे सविता, परमैश्वर्यवान् इन्द्र हम लोगोंके मध्यमें पूजनीय हैं। तुम हम लोगोंको महान् पर्वतोंकी अपेक्षा भी उन्नत करो। इन सम्पूर्ण यजमानोंको गृहविशिष्ट निवास (ग्राम, नगर आदि) प्रदान करो। वे सब गमनकालमें जिससे तुम्हारे द्वारा नियत हों और तुम्हारी आज्ञाके अनुसार अवस्थिति करें।

ये ते त्रिरहन् सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥

५५ सूक्त

विश्वदेवगण देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द ।

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात् को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१॥
प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२॥
प्र पस्त्या मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३॥

---

६ हे सविता, जो यजमान तुम्हारे उद्देशसे प्रतिदिन तीन बार करके, सौभाग्यजनक सोमका अभिषव करता है, इन्द्र, द्यावापृथिवी, जलविशिष्ट सिन्धु, देवता और आदित्योंके साथ अदिति, उस यजमानको और हमें सुख दान करें।

---

१ हे वसुओ, तुम लोगोंके मध्यमें कौन त्राणकर्ता है? कौन दुःखोंका निवारक है? हे अखण्डनीया द्यावापृथिवी हम लोगोंकी रक्षा करो। हे वरुण, हे मित्र, तुम दोनों अभिभवकर मनुष्योंसे हम लोगोंकी रक्षा करो। हे देवो, यज्ञमें, तुम लोगोंके मध्यमें कौन देव धन दान करता है?

२ जो देव स्तोताओंको पुरातन स्थान प्रदान करते हैं, जो दुःखोंके अमिश्रयिता हैं, जो अमूढ़ हैं और जो अन्धकारका विनाश करते हैं, वही देव विधाता (सम्पूर्ण फलके कर्ता) हैं और नित्य अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। वे सत्यकर्मविशिष्ट और दर्शनीय होकर शोभा पाते हैं।

३ सबके द्वारा गन्तव्य देवमाता अदिति, सिन्धु और स्वस्ति (सुखसे निवास करनेवाली) देवीकी हम, मन्त्र द्वारा, सखिताके लिये स्तुति करते हैं, जिससे द्यावापृथिवी हम लोगोंको विशेष रूपसे पालन करें, उसीके लिये स्तुति करते हैं। उषा और अहोरात्राभिमानी देव हम लोगोंके अभिमतका सम्पादन करें।

त्यर्य्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदुषुस्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४॥
आ पर्व्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५॥
नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न सञ्चरणे सनिष्यवो घर्म्मस्वरसो नद्यो अपव्रन् ॥६॥
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७॥
अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्म्महः सौभगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ॥८॥
उषो मघोन्या वह सूनृते वार्य्या पुरु । अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९॥

---

४ अर्यमा और वरुणदेवने यज्ञमार्ग ज्ञापित कर दिया है । हविर्लक्षण अन्नके प्रति अग्निने सुखकर मार्ग दिखा दिया है । इन्द्र और विष्णु सुन्दर रूपसे स्तुत होकर हम लोगोंको पुत्र-पौत्रादियुक्त और बल-युक्त रमणीय सुख दान करें ।

५ इन्द्रके सखा पर्वत, मरुद्गण तथा भगदेवसे हम रक्षाकी याञ्चा करते हैं । स्वामी वरुणदेव जन-सम्बन्धियोंके पापसे हमारी रक्षा करें और मित्रदेव मित्रभावसे हम लोगोंकी रक्षा करें ।

६ हे द्यावापृथिवीरूप देवीद्वय, जैसे धनाभिलाषी व्यक्ति समुद्रके मध्यमें जानेके लिये समुद्रकी स्तुति करता है, उसी तरह हम भी अभिलषित कार्यलाभके लिये अहिबुध्न्य नामक देवताके साथ तुम दोनोंकी स्तुति करते हैं । वे देवगण दीप्त ध्वनियुक्त नदियोंको अपावृत करें ।

७ देवमाता अदिति देवी अन्य देवोंके साथ हम लोगोंका पालन करें । त्राता इन्द्र अप्रमत्त होकर हम लगोंका पालन करें । मित्र, वरुण और अग्निके सोमादिरूप समुच्छ्रित अन्नको हम लोग हिंसा नहीं कर सकते हैं, किन्तु अनुष्ठानोंके द्वारा संवर्द्धित कर सकते हैं ।

८ अग्नि धनके ईश्वर हैं और महान् सौभाग्यके ईश्वर हैं; अतएव वे हम लोगोंको धन और सौभाग्य प्रदान करें ।

९ हे धनवती, हे प्रिय सत्यरूप वचनकी अभिमानिनी और हे अन्नवती उषा, हम लोगोंको तुम बहुत रमणीय धन दान करो ।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥१०॥

५६ सूक्त

द्यावापृथिवी देवता । वामदेव ऋषि । गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द ।

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥१॥
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहो देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥२॥
स इत् स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३॥
नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४॥

---

१० जिस धनके साथ सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र आगमन करते हैं, उस धनको वे सब हमें दें ।

---

१ महती और श्रेष्ठा द्यावापृथिवी इस यज्ञमें दीप्तिकर मन्त्र और सोमादिसे युक्त होकर दीप्तिविशिष्ट हों । जिस लिये कि, सेचनकारी पर्जन्य विस्तीर्ण और महती द्यावापृथिवीको स्थापित करते हुए, प्रथमान और गमनशील मरुतोंके साथ सर्वत्र शब्द करते हैं ।

२ यजनयोग्य, अहिंसक, अभीष्टवर्षी, सत्यशील, द्रोहरहित, देवोंके उत्पादक और यज्ञोंके निर्वाहक द्यावापृथिवी रूप देवीद्वय यष्टव्य देवोंके साथ दीप्तिकर मन्त्रों या हविर्लक्षण अन्नोंसे युक्त हों ।

३ जिन्होंने इस द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया है; जिन धीमान्ने विस्तीर्ण, अविचला सुरूपा और आधाररहिता द्यावापृथिवीको, सम्यग्रूपसे कुशल कर्मद्वारा परिचालित किया है, वे ही भुवनोंके मध्यमें शोभनकर्मा हैं ।

४ हे द्यावापृथिवी, तुम दोनों हम लोगोंके लिये अन्न दानकी अभिलाषिणी और परस्पर सङ्गता हो । विस्तीर्णा, व्याप्ता एवम् यागयोग्या होकर तुम दोनों हमें पत्नीयुक्त महान् गृह दो एवम् हम लोगोंकी रक्षा करो । हम लोग कर्मबल द्वारा रथ और दास लाभ करें ।

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे। शुची उप प्रशस्तये ॥५॥
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः। ऊह्याथे सनादृतम् ॥६॥
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्। परि यज्ञं निषेदथुः ॥७॥

५७ सूक्त

प्रथम तीन ऋचाओंके क्षेत्रपति देवता, चतुर्थके शुन देवता, पञ्चम और अष्टमके शुनासीर देवता तथा षष्ठ और सप्तमके सीता देवता। वामदेव ऋषि। उष्णिक्, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द।

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥१॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥२॥

---

५ हे द्युतिमती द्यावापृथिवी, हम लोग तुम दोनोंके उद्देशसे महान् स्तोत्रका सम्पादन करेंगे। तुम दोनों विशुद्ध हो। हम लोग प्रशंसा करनेके लिये तुम्हारे निकट गमन करते हैं।

६ हे देवियो, तुम दोनों अपनी मूर्तियों और बल द्वारा परस्पर प्रत्येकको शोधित करके शोभमाना होओ एवम् सर्वदा यज्ञ वहन करो।

७ हे महती द्यावापृथिवी, तुम दोनों मित्रभूत स्तोताके अभिमतका साधन करो एवम् अन्नको विभक्त और पूर्ण करके यज्ञके चतुर्दिक् उपविष्ट होओ।

---

१ हम यजमान बन्धुसदृश क्षेत्रपति देवके साथ क्षेत्र जय करेंगे। वे हम लोगोंकी गौओं और अश्वोंको पुष्टि प्रदान कर। वे देव हम लोगोंको उक्त प्रकारसे दातव्य धन देकर सुखी करें।

२ हे क्षेत्रपति, धेनु जिस तरहसे दुग्ध दान करती है, उसी तरहसे तुम मधुस्रावी, सुपवित्र, घृततुल्य और माधुर्ययुक्त प्रभूत जल दान करो। यज्ञके या उदकके स्वामी हम लोगोंको सुखी करें।

मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्म्मधु मान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४॥
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५॥
अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगासति यथा नः सुफलासति ॥६॥
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७॥

३ व्रीहि और प्रियङ्गु आदि ओषधियाँ हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। तीनों द्युलोक, जलसमूह और अन्तरिक्ष हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। क्षेत्रपति हम लोगोंके लिये मधुयुक्त हों। हम लोग शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुसरण करें।

४ बलीवर्दगण सुखका वहन करें। मनुष्यगण सुखपूर्वक कृषि कार्य करें। लाङ्गल सुखपूर्वक कर्षण करे। प्रग्रहसमूह सुखपूर्वक बद्ध हों। प्रतोद सुख प्रेरण करें। *

५ हे शुन, हे सीर, तुम दोनों हमारी इस स्तुतिका सेवन करो। तुम दोनोंने द्युलोकमें जिस जलको सृष्ट किया है, उसीके द्वारा इस पृथिवीको सिक्त करो। †

६ हे सौभाग्यवती सीता, तुम अभिमुखी होओ। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हम लोगों-को सुन्दर धन प्रदान करो और सुन्दर फल करो। इसीसे हम तुम्हारी वन्दना करते हैं।

७ इन्द्रदेव सीता‡धार काष्ठको ग्रहण करें। पूषा उस सीताको नियमित करें। वह उदक-वती द्यौ संवत्सरके उत्तर संवत्सरमें शस्य दोहन करें।

* इस ऋचामें सुख शब्द "शुन" के अर्थमें आया है। इन्द्र या वायुके अन्यतम सुखकर देवताका नाम शुन है। उन्हींके अनुग्रहसे यह समस्त सुख सम्पन्न होता है। —सायण।

† शौनकके विचारसे "शुन" द्युदेवताका नाम है; अतः ये इन्द्र हुए। "सीर" वायुको कहते हैं। यास्क-के विचारसे "शुन" वायु और "सीर" आदित्य हैं।—सायण।

‡ सीता लाङ्गलपद्धतिः" (शुक्ल यजुर्वेद)-महीधर। हल द्वारा चिह्नित भूमिकी रेखाका नाम सीता है।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥



सूक्त ५८

अग्नि, सूर्य, जल, गो अथवा घृत देवता । वामदेव ऋषि । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥२॥
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥३॥

---

८ फाल (भूमिविदारक काष्ठ) सुख-पूवक भूमिकर्षण करे । रक्षकगण बलीवर्दोंके साथ अभिगमन करें । पर्जन्य मधुर जल द्वारा पृथिवीको सिक्त करें । हे शुन, सीर (इन्द्र- वायु या वायु-आदित्य), हम लोगोंको सुख प्रदान करो ।

---

१ समुद्र (अग्नि, अन्तरिक्ष, आदित्य अथवा गौओंके ऊधःप्रदेश)से मधुमान् उर्म उद्भूत होती है । मनुष्य किरण द्वारा अमृतत्व प्राप्त करते हैं । घृतका जो गोपनीय नाम है, वह देवोंकी जिह्वा और अमृतकी नाभि है ।

२ हम यजमान घृतके नामकी स्तुति करते हैं । इस यज्ञमें नमस्कार द्वारा उसे धारण करते हैं । परिवृद्ध देव इस स्तवका श्रवण करें । वेदचतुष्टय रूप शृङ्गविशिष्ट गौरवर्ण देव इस जगत्का निर्वाह करते हैं ।

३ इस यज्ञात्मक अग्निको चार शृङ्ग हैं अर्थात् शृङ्गस्थानीय चार वेद हैं । इसे सवनस्वरूप तीन पाद हैं । ब्रह्मोदन एवम् प्रवर्ग्य-स्वरूप दो मस्तक हैं । छन्दःस्वरूप सात हाथ हैं । ये अभीष्टवर्षी हैं । ये मन्त्र, कल्प एवम् ब्राह्मण द्वारा तीन प्रकारसे बद्ध हैं । ये अत्यन्त शब्द करते हैं । वह महान् देव मर्त्योंके मध्यमें प्रवेश करते हैं । *

---

* सायणने इस ऋचाका एक आदित्यात्मक अर्थ भी किया है । आदित्य-पक्षमें दिक्-चतुष्टय शृङ्ग, वेदत्रय पाद, अहोरात्र मस्तक, सप्त रश्मि हाथ एवम् ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त तीन बन्धन हैं ।

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४॥
एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धाराः अरुषो न वाजी काष्ठाः भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥

४ प्राणियोंने गौओंके मध्यमें तीन प्रकारके दीप्त पदार्थों (क्षीर, दधि और घृत)को छिपाकर रखा था । देवोंने उन्हें प्राप्त किया था । इन्द्रने एक क्षीरको उत्पन्न किया था। सूर्यने भी एकको उत्पन्न किया था । देवोंने कान्तिमान् अग्नि या गमनशील वायुको निकटसे अन्न द्वारा और एक पदार्थ घृतको निष्पन्न किया था ।

५ अपरिमित गतिविशिष्ट यह जल हृदयङ्गम अन्तरिक्षसे अधोदेशमें निपतित होता है। प्रतिबन्धकारी शत्रु उसे नहीं देख सकता है । उस सकल घृतधाराको हम देख सकते है । इसके मध्यमें अग्निको भी देख सकते हैं।

६ घृतकी धारा प्रीतिप्रद नदीकी तरह क्षरित होती है । यह सकल जल हृदयमध्यगत चित्तके द्वारा पूत होता है । घृतकी ऊर्मि प्रवाहित होती है । जैसे व्याधाके निकटसे मृग पलायित होता है।

७ नदीका जल जैसे निम्न देशकी तरफ शीघ्र गमन करता है, वैसे ही वायुकी तरह वेगशालिनी होकर महती घृत-धारा द्रुत वेगसे गमन करती है । यह घृत-राशि परिधि भेद करके ऊर्मि द्वारा वर्द्धित होती है, जैसे गर्ववान् अश्व गमन करता है ।

८ कल्याणी और हास्यवदना योषित जैसे एकचित्त होकर पतिके प्रति आसक्त होती है, उसी तरह घृतधारा अग्निके प्रति गमन करती है । वह सम्यग्रूपसे दीप्तिप्रद होकर सर्वत्र व्याप्त होती है। जातवेदा प्रीत होकर इस सकल धाराकी कामना करते हैं।

कन्याइव वहतुमेतवा ऊ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभितत् पवन्ते ॥९॥
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥१०॥
धामन्ते विश्वं भुवनमधिश्रितमन्तः समुद्रे हृद्यं तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥

९ कन्या (अनूढ़ा बालिका) जिस तरहसे पतिके निकट जानेके लिये वेश-विन्यास करती है, हम देखते हैं. यह सकल घृतधारा उसी तरहसे करती है। जिस स्थलमें सोम अभिषुत होता है अथवा जिस स्थलमें यज्ञ विस्तीर्ण होता है, उसीको लक्ष्य कर वह धारा गमन करती है।

१० हे हमारे ऋत्विको, गौओंके निकट गमन करो, उनकी शोभन स्तुति करो। हम यजमानोंके लिये वह स्तुतियोग्य धन धारण करें। हमारे इस यज्ञको देवोंके निकट ले जायँ। घृतकी धारा मधुर-भावसे गमन करती है।

११ तुम्हारा तेज समुद्रके मध्यमें वड़वाग्नि रूपमे, अन्तरिक्षके मध्यमें सूर्यमण्डल रूपसे हृदय-मध्यमें वैश्वानर रूपसे, अन्नमे आहार रूपसे, जलसमूहमें वैद्युताग्नि रूपसे और संग्राममें शौर्याग्नि रूपसे अवस्थित है। समस्त भूतजात उसके अधिश्रित है। उसमें जो घृतरूप रस स्थापित हुआ है, उस मधुर रसको हम व्याप्त करते हैं।

चतुर्थ मण्डल समाप्त

पञ्चम मण्डल

३ अष्टक । ५ मण्डल । ८ अध्याय । ६ अनुवाक ।

१ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिवंशीय बुध और गविष्ठिर ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१॥
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥

---

१ धेनुकी तरह आगमनकारिणी उषाके उपस्थित होनेपर अग्नि अध्वर्युओंके काष्ठ द्वारा प्रबुद्ध होते हैं। उनका शिखासमूह महान् है एवम् शाखा-विस्तारकारी वृक्षकी तरह वह अन्तरिक्षाभिमुख प्रसृत होता है।

२ होता अग्नि देवोंके यजनके लिये प्रबुद्ध होते हैं। अग्नि प्रातःकालमें प्रसन्न मनसे ऊर्द्ध्वाभिमुख उत्थित होते हैं। समिद्ध अग्निका दीप्तिमान् बल दृष्ट होता है। इस तरहके महान् देव अन्धकारसे मुक्त होते हैं।

३ जब अग्नि सङ्घात्मक जगत्के रज्जु रूप अन्धकारको ग्रहण करते हैं, तब वे प्रदीप्त होकरके दीप्त रश्मि द्वारा जगत्को प्रकाशित करते हैं। इसके अनन्तर वे प्रवृद्धा और अन्नाभिलाषिणी घृतधाराके साथ युक्त होते हैं एवम् उन्नत होकर ऊपरी भागमें विस्तृत उस घृतधाराको जुहू द्वारा पीते हैं।

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्यै सञ्चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४॥
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोग्निर्होता निषसादा यजीयान् ॥ ५ ॥
अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उलोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥
प्रणु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीलते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८॥

४ प्राणियोंका चक्षु जिस तरहसे सूर्यके अभिमुख सञ्चरण करता है, उसी तरहसे यजमानोंका मानस अग्निके अभिमुख सञ्चरण करता है। जब विरूपा द्यावापृथिवी उषाके साथ अग्निको उत्पन्न करती है, तब प्रकृष्ट वर्ण (श्वेत)से युक्त होकर वाजी स्वरूप (वेजनवान्) अग्नि, प्रातःकालमें, उत्पन्न-होते हैं।

५ उत्पादनीय अग्नि उदय कालमें प्रादुर्भूत होते हैं और दीप्तियुक्त होकर बन्धुभूत वनसमूहमें स्थापित होते हैं। इसके अनन्तर वे रमणीय सात ज्वाला (शिखा) धारण करके होता और यागयोग्य होकर प्रत्येक गृहमें उपवेशन करते हैं।

६ होता और यष्टव्य होकरके अग्नि माता पृथिवीकी गोदमें, आज्य आदिसे सुगन्ध युक्त वेदीरूप स्थानपर, उपविष्ट होते हैं। वे पुत्र, कवि, बहुस्थान-विशिष्ट यज्ञवान् और सबके धारक हैं। यजमानोंके मध्यमें समिद्ध होकरके रहते हैं।

७ जो द्यावापृथिवीको उदक द्वारा विस्तारित करते हैं, उन मेधावी, यज्ञफलसाधक और होता अग्निकी स्तुति द्वारा, यजमानगण शीघ्र स्तुति करते हैं। यजमानगण अन्नवान् अग्निकी, घृत द्वारा, नित्य परिचर्या करते है।

८ संमार्जनीय अग्नि अपने स्थानमें पूजित होते हैं। वे दान्त(प्रशान्त)मना हैं। कविगण उनकी स्तुति करते हैं। वे हम लोगोंके लिये अतिथिकी तरह पूज्य और सुखकर हैं। उन्हें अपरिमित शिखाएँ हैं। वे अभीष्टवर्षी और प्रसिद्ध बलशाली हैं। हे अग्नि, तुम अपनेसे अतिरिक्त अन्य सब लोगोंको बल द्वारा परिभूत करते हैं

प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९॥
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओतदूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०॥
आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान् पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान् हविरद्याय वक्षि ॥११॥
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥



९ हे अग्नि, तुम यज्ञको प्राप्त कर जिसके निकट चारुतम रूपसे आविर्भूत होते हो, उसके निकटसे तुम, शीघ्र हो, दूसरोंको अतिक्रान्त करके गमन करते हो। तुम स्तुतियोग्य, दीप्तिकर एवम् विशिष्ट दीप्तिमान् हो। तुम प्राणियोंके प्रिय और मनुष्योंके अतिथि (पूज्य) हो।

१० हे युवतम अग्नि, मनुष्यगण निकटसे और दूरसे तुम्हारी पूजा करते हैं। जो तुम्हारी अधिक स्तुति करता है, तुम उसीकी स्तुति ग्रहण करते हो। हे अग्नि, तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख बृहत्, महान् और स्तुतियोग्य है।

११ हे दीप्तिमान् अग्नि, तुम आज दीप्तिमान् और समीचीन प्रान्तयुक्त रथपर देवोंके साथ आरोहण करो। तुम्हें पथ अवगत है। प्रभूत अन्तरिक्ष प्रदेश होकर तुम देवोंको हव्य भक्षणके लिये इस स्थानमें ले आते हो।

१२ हम अत्रिवंशी लोग मेधावी, पवित्र, अभिष्टवर्षी और युवा अग्निके उद्देश्यसे वन्दनायोग्य स्तोत्रका उच्चारण करते हैं। गविष्ठिर ऋषि आकाशमें दीप्यमान, विस्तीर्ण गतिविशिष्ट, आदित्यके सदृश अग्निके उद्देशसे नमस्कारयुक्त स्तोत्रका उच्चारण करते हैं।

२ सूक्त

अग्नि देवता। अत्रिपुत्र कुमार ऋषि अथवा जरपुत्र वृश ऋषि अथवा इस सूक्तके ये दोनों ही ऋषि हैं। शक्वरी और त्रिष्टुप् छन्द।

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१॥
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यञ्जातं यदसूत माता ॥२॥

---

१ कुमारको उत्पन्न करनेवाली यौवनवती माताने मार्गमें सञ्चरण करनेवाले कुमारको, रथचक्र द्वारा निहत देखकर, गुहामध्यमें धारण किया, उसके जनकको नहीं दिया। लोग उसे हिंसित रूपमें नहीं देख सके; किन्तु अरणिस्थानमें स्थापित होनेपर उसे फिर देख सके। +

२ (उत्पाद्यमान होनेके कारण यहाँ कुमार शब्दसे अग्निका व्यवहार है) हे युवती, तुम पिशाची होकर किस कुमारको धारण करती हो ? पूजनीय अरणिने इसे उत्पन्न किया है। अनेक सवत्सर पर्यन्त अरणि-सम्बन्धी गर्भ वर्धित हुआ था। इसके अनन्तर माता अरणिने जिस पुत्रको उत्पन्न किया था, उसे हमने देखा था।

+ शाट्यायन-ब्राह्मणमें इस ऋचाके सम्बन्धमें इस तरहका इतिहास वर्णित हुआ है—इक्ष्वाकुवंशीय राजा त्र्यरुण पुरोहित वृशके साथ एक रथपर गमन कर रहे थे। रथका सञ्चालन वृश ही करते थे। रथचक्रके संघर्षसे मार्गमें खेलते हुए एक कुमारकी मृत्यु हो गयी। पुरोहित और राजामें यह विवाद होने लगा कि, कौन इस हत्याका अपराधी है; रथस्वामी राजा दोषी हैं या रथचालक पुरोहित। इस तरह लड़ते-झगड़ते वे दोनों वृद्ध इक्ष्वाकुओंके पास पूछने आये। उन दोनोंके पूछनेपर वृद्ध इक्ष्वाकुओंने कहा कि, रथचालक वृश ही इसके हन्ता हैं। पुरोहित वृशने वार्शसाम्नातके द्वारा उस कुमारको फिर जिला दिया, किन्तु उन्होंने इक्ष्वाकुवंशीयोंको पक्षपाती कहकर यह शाप भी दिया कि, तुम लोगोंके घरसे अग्निका तेज निर्गत हो जायगा। अग्निके विनष्ट हो जानेपर, पाकादिके अभावसे, इक्ष्वाकुवंशीयोंको जब बहुत कष्ट होने लगा, तब वे लोग पुरोहितको प्रसन्न करके अपने पापके अपनोदनकी चेष्टा करने लगे। वृशने आकर देखा कि, ब्रह्महत्याका पाप त्रसदस्यु राजाकी भार्या होकर, पिशाच वेशसे, अग्निके हरको अपहृत करके वस्त्र मध्यमें छिपाये हुआ है। ऋषिने नाना प्राकारसे प्रसन्न करके उसे फिर अग्निके मध्यमें स्थापित किया। पाकादि कार्य पूर्ववत् होने लगा। इसी तरहकी कथा ताण्ड-ब्राह्मणमें भी है।—सायण।

हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत् किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३॥
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ठ हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४॥
के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५॥
वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥
शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

३ हमने समीपवर्ती प्रदेशसे हिरण्यदन्त (हिरण्य सदृश ज्वालायुक्त), प्रदीप्त वर्ण और आयुधस्थानीय ज्वाला निर्माण करनेवाले अग्निको देखा था । हम (वृश) ने उन्हें सर्वतोव्याप्त और अविनाशी स्तोत्र प्रदान किया है । जो इन्द्र (परमेश्वर्ययुक्त अग्नि) को नहीं मानते हैं और जो उनकी स्तुति नहीं करते हैं, वे हमारा क्या कर लेंगे ?

४ हम (वृश) ने गोसमूहकी तरह क्षेत्रमें निगूढ़भावसे सञ्चरण करनेवाले एवम् अनेक प्रकारसे स्वयम् शोभमान अग्निको देखा है । पिशाचोंके आक्रमण-कालवाली निर्वीर्य ज्वालाको वे ग्रहण नहीं करते हैं । अग्नि पुनर्वार प्रादुर्भूत होते हैं एवम् उनकी वृद्धा ज्वाला युवती होती है ।

५ कौन हमारे राष्ट्रको गौओंके साथ नियुक्त करता है ? उन्हें क्या रक्षक नहीं था ? जो हमारे राष्ट्रसमूहपर आक्रमण करता है, वह विनष्ट हो । अग्नि हम लोगोंकी अभिलाषाको जानते हैं, वे हम लोगोंके पशुओंके निकट गमन करते हैं ।

६ प्राणियोंके स्वामी और लोगोंके आवासभूत अग्निको शत्रुगण मर्त्योंके मध्यमें छिपाकर रखते हैं । अत्रिगोत्रोत्पन्न वृशका स्तोत्र उन्हें मुक्त करे । निन्दक लोग निन्दनीय हों ।

७ हे अग्नि, तुमने अत्यन्त बद्ध शुनःशेप ऋषिको सहस्र यूपसे मुक्त किया था; क्योंकि उन्होंने तुम्हारा स्तव किया था । हे होता और विद्वान् अग्नि, तुम इस वेदीपर उपवेशन करो । इस तरह हम लोगोंको सकल पाशसे मुक्त करो ।

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अ नु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥९॥
उत स्वानासो दिविषन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवी ॥१०॥
एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११॥
तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोशत्र्वं र्यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन् बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते
मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥



८ हे अग्नि, तुम जब क्रुद्ध होते हो, तब हमारे निकटसे अपगत होते हो। देवोंके व्रतपालक इन्द्रने हमसे यह कहा था। वे विद्वान् हैं उन्होंने तुम्हें देखा है। हे अग्नि, उनके द्वारा अनुशिष्ट हो र हम तुम्हारे निकट आगमन करते हैं।

९ अग्नि महान् तेज द्वारा विशेष रीतिसे दीप्त होते हैं। वे अपनी महिमाके बलसे सकल पदार्थोंको प्रकट (प्रकाशित) करते हैं। अग्निदेव प्रबुद्ध होकरके दुःखजनक आसुरी मायाको पराभूत करते हैं। राक्षसोंको विनष्ट करनेके लिये वे शृङ्ग (ज्वाला) को तीक्ष्ण करते हैं।

१० अग्निकी शब्द करनेवाली ज्वाला, तीक्ष्ण आयुधकी तरह, राक्षसोंको विनष्ट करनेके लिये, द्युलोकमें प्रादुर्भूत होती है। हर्षके उत्पन्न होनेपर अग्निका क्रोध या दीप्तिसमूह राक्षसोंको पीड़ा देता है। बाधा देनेवाली आसुरी सेना उन्हें बाधा नहीं दे सकती।

११ हे बहुभाव-प्राप्त अग्नि, हम तुम्हारे स्तोता हैं। धीर और कर्मकुशल व्यक्ति जिस तरहसे रथ निर्माण करता है, उसी तरहसे हम तुम्हारे लिये इस स्तोत्रका निर्माण करते हैं। हे अग्निदेव, यदि तुम इस स्तोमको ग्रहण करो, तो हम बहु व्याप्त जय लाभ करें।

१२ बहु ज्वाला विशिष्ट, अभीष्टवर्षी, वर्द्धमान अग्नि निष्कण्टक भावसे शत्रुओंके धनका संग्रह करते हैं। इस बातको देवोंने अग्निसे कहा था कि, वे यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको सुख दान करें एवम् हव्य देनेवाले मनुष्यों (यजमानों) को भी सुख दान करें ?

३ सूक्त

अग्नि देवता । अत्रिवंशीय वसुश्रुत ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्धः ।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१॥
त्वमर्यमा भवसि यत् कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥२॥
तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जानम चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नामगोनाम् ॥३॥
तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरु दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो निषेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥ ४ ॥
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥ ५ ॥

---

१ हे अग्नि, तुम उत्पन्न होते हो वरुण (अन्धकारके निवारक रात्र्यभिमानी देव) होते हो। समिद्ध होकर तुम मित्र (हितकारी) होते हो। समस्त देवगण तब तुम्हारा अनुवर्तन करते हैं। हे बलपुत्र, तुम हव्य दाता यजमानके इन्द्र हो।

२ हे अग्नि, तुम कन्याओंके सम्बन्धमें अर्यमा (सबके नियामक) होते हो। हे हव्यवान् अग्नि, तुम गोपनीय नाम (वैश्वानर) धारण करते हो। जब तुम दम्पतीको एक मनवाले बना देते हो, तब वे तुम्हें बन्धुकी तरह, गव्य द्वारा, सिक्त करते हैं।

३ हे अग्नि, तुम्हारे आश्रयके लिये मरुद्गण अन्तरिक्षका मार्जन करते हैं। हे रुद्र, तुम्हारे लिये वैद्युत लक्षण, अति विचित्र और मनोहर जो विष्णु (व्यापन शील देव) का अगम्य पद (अन्तरिक्ष) है, वह स्थापित हुआ है। उसके द्वारा तुम उदकके गुह्य नामका पालन करो।

४ हे अग्निदेव, तुम्हारी समृद्धिके द्वारा इन्द्रादि देवगण दर्शनीय होते हैं। वे देवगण तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रीति धारण करके अमृतका स्पर्श करते हैं। ऋत्विग्गण फलाभिलाषी यजमानके लिये हव्य वितरण करते हुए होता अग्निकी परिचर्या करते है।

५ हे अग्नि, तुमसे भिन्न कोई अन्य होता नहीं है, यज्ञकारी नहीं है और कोई पुरातन भी नहीं है। हे अन्नवान्, भविष्यत्कालमें भी तुम्हारी अपेक्षा कोई स्तुतियोग्य नहीं होगा। हे देव, तुम जिस ऋत्विक्के अतिथि होते हो, वह यज्ञ द्वारा शत्रु मनुष्योंको विनष्ट करता है।

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥ ६ ॥
यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जहीचिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥ ७ ॥
त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८ ॥
अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस्ते सहसः सूनऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥ ९ ॥
भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥ १० ॥

---

६ हे अग्नि, हम तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर शत्रुओंको पीड़ा दान करेंगे । हम धनाभिलाषी हैं । हम लोग तुम्हें हव्य द्वारा प्रबुद्ध करते है । हम लोग युद्धमें जय लाभ करें और प्रतिदिन यज्ञमें बल प्राप्त करें । हे बलपुत्र, हम लोग धनके साथ पुत्र लाभ करें ।

७ जो मनुष्य हम लोगोंके प्रति अपराध या पाप करता है, उस पापकारी व्यक्तिके प्रति अग्नि पापावरण करें—उसे पापी बनावें । हे विद्वान् अग्नि, जो हम लोगोंको अपराध और पाप द्वारा बाधा देता है, उस पापकारीको विनष्ट करो ।

८ हे देव, पुरातन यजमान तुम्हें देवोंका दूत बना करके, उषाकालमें यज्ञ करते हैं । हे अग्नि, हव्य संग्रह होनेके अनन्तर तुम द्युतिमान् होकर भी निवासप्रद मनुष्यों द्वारा समिद्ध होकर गमन करते हो ।

९ हे बलपुत्र, तुम पिता हो । जो विद्वान् पुत्र तुम्हारे लिये हव्य वहन करता है, तुम उसे पार कर देते हो और उसे पापसे पृथक् करते हो । हे विद्वान् अग्नि, कब तुम हम लोगोंको देखोगे ? हे यज्ञके प्रेरक कब तुम हम लोगोंको सन्मार्गमें प्रेरित करोगे ?

१० हे निवासप्रद अग्नि, तुम पालक हो । यदि तुम उस हविका सेवन करते हो, तो तुम्हारे नामकी वन्दना करके, देनेके लिये, (पुत्र) प्रभूत हव्य धारण करता है । यजमानके बहुत हव्यकी अभिलाषा करनेवाले और बर्द्धमान अग्नि बलयुक्त होकर सुख दान करते हैं ।

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासो ज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥ ११ ॥
इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परादात् ॥१२ ॥

—*—* –

४ सूक्त

अग्नि देवता । वसुश्रुत ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभिष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥ १ ॥
हव्यवाड़ग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ॥ २ ॥

---

११ हे स्वामी, हे युवतम अग्नि, तुम स्तोताको अनुगृहीत करनेके लिये समस्त दुरितों (विघ्न) से पार कर देते हो । तस्करगण दृष्टि होते हैं । अपरिज्ञात चिह्नवाले शत्रुभूत मनुष्य हमारे द्वारा वर्जित होते हैं ।

१२ ये स्तोम तुम्हारे अभिमुख गमन करते हैं अथवा हम निवासप्रद अग्निके निकट उस याचमान अपराधका उच्चारण करते हैं । अग्नि हमारी स्तुति द्वारा वर्द्धित होकर हमें निन्दकों अथवा हिंसकोंके हाथमें नहीं सौंपें ।

------

१ हे धनसमूहके स्वामी अग्नि, हम तुम्हारे उद्देशसे यज्ञमें स्तुति करते हैं । हे राजा, हम अन्नाभिलाषी हैं । तुम्हारी अनुकूलतासे हम अन्न लाभ करें और मनुष्य सेनाको अभिभूत करें ।

२ हव्यवाहक अग्नि जरारहित होकर हम लोगोंके पालक हों । हम लोगोंके निकट वे सर्वव्याप्त दीप्तिमान् और दर्शनीय हों । हे अग्नि, तुम शोभन गार्हपत्ययुक्त अन्नको भली भाँतिसे प्रकाशित करो अथवा प्रदान करो । तुम हम लोगोंको प्रचुर परिमाणमें अन्न प्रदान करो ।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे सदेवेषु वनते वार्याणि ॥ ३ ॥
जुषस्वाग्न इलया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्य्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान् हविरद्याय वक्षि ॥ ४ ॥
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामाभरा भोजनानि ॥ ५ ॥
वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै ।
पिपर्षि यत् सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥ ६ ॥
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥ ७ ॥

---

३ हे ऋत्विको, तुम लोग मनुष्योंके स्वामी, मेधावी, विशुद्ध, दूसरोंको शुद्ध करनेवाले, घृतपृष्ठ, होमनिष्पादक और सर्वविद् अग्निको धारण करो। अग्निदेव देवोंके मध्यमें संग्रहणीय धनको, हम लोगोंके लिये सम्भक्त करते हैं।

४ हे अग्नि, इला (वेदीभूमि) के साथ समान प्रीतियुक्त होकर और सूर्यकी रश्मियों द्वारा यतमान होकर तुम (स्तुतिकी) सेवा करो। हे जातवेदा, हम लोगोंके काष्ठ (समिध्) की सेवा करो। हव्य भोजन करनेके लिये देवोंका आह्वान करो और हव्य वहन करो।

५ तुम पर्याप्त, दान्तमना और गृहागत अतिथिकी तरह पूज्य होकर हम लोगोंके इस यज्ञमें आगमन करो। हे विद्वान् अग्नि, तुम समस्त शत्रुओंको विनष्ट करो और शत्रुताचरण करनेवालोंका धन अपहरण करो ।

६ हे अग्नि, तुम अपने यजमानादिरूप पुत्रको अन्न दान करते हो और आयुध द्वारा दस्युओंको विनष्ट करते हो। हे बलपुत्र, जिस कारण तुम देवोंको तृप्त करते हो, उसी कारणसे हे नेतृश्रेष्ठ अग्नि, तुम हम लोगोंकी, संग्राममें, रक्षा करो।

७ हे अग्नि, हम लोग शस्त्र द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे। हम लोग हव्य द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे। हे शोधक, तथा हे कल्याणकर-दीप्तिविशिष्ट अग्नि, तुम हम लोगोंको सबके द्वारा वरणीय धन दो। हम लोगोंको समस्त धन प्रदान करो।

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥ ८ ॥
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरिताति पर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो स्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ९ ॥
यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यमर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥ १० ॥
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥ ११ ॥

५ सूक्त

आप्री देवता । वसुश्रुत ऋषि । गायत्री छन्द ।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ १ ॥

८ हे अग्नि, हम लोगोंके यज्ञकी सेवा करो। हे बलपुत्र, हे क्षिति आदि तीनों स्थानोंमें रहनेवाले अग्नि, तुम हव्यकी सेवा करो। हम लोग देवोंके मध्यमें सुकर्मकारी होंगे। तुम हम लोगोंकी, वाचिकादि भेदसे तीन प्रकारके सर्ववरणीय सुख द्वारा अथवा त्रितलविशिष्ट गृह द्वारा, रक्षा करो।

९ हे जातवेदा, नाविक नौका द्वारा जिस तरहसे नदी पार करता है, उसी तरहसे तुम हम लोगोंको समस्त दुःसह दुरितोंसे पार करो। हे अग्नि, अत्रिकी तरह हम लोगोंके स्तोत्रों द्वारा स्तुति होकर तुम हम लोगोंके शरीररक्षक रूपसे अवगत होओ।

१० हे अग्नि, हम मरणशील हैं और तुम अमर हो। हम स्तुतियुक्त हृदयसे स्तव करके तुम्हारा पुनः पुनः आह्वान करते हैं। हे जातवेदा, हम लोगोंको सन्तानदान करो। हम जिससे सन्ततियोंके अविच्छेदसे अमरत्व लाभ कर सकें।

११ हे जातवेदा अग्नि, तुम जिस सुकर्मकृत यजमानके प्रति सुखकर अनुग्रह करते हो, वह यजमान अश्वयुक्त, पुत्रयुक्त, वीर्ययुक्त और गोयुक्त होकर अक्षय धन लाभ करता है।

---

१ हे ऋत्विको, जातवेदा, दीप्तिमान् और सुसमिद्ध नामक अग्निके लिये तुम प्रभूत घृतसे हवन करो।

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥
ईलितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥ ३ ॥
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्यर्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्र प्र यज्ञं पृणीतन ॥ ५ ॥
सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥
वातस्य पत्मन्नीलिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७॥
इला सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥८॥
शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥ ९ ॥
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१०॥

२ नराशंस (मनुष्योंके द्वारा शंसनीय) नामक अग्नि इस यज्ञको प्रदीप्त करें। वे अहिंसनीय, मेधावी एवम् हस्त-विशिष्ट हैं।

३ हे अग्नि, तुम स्तुत हो। हम लोगोंकी रक्षाके लिये विचित्र एवम् प्रिय इन्द्रको सुखकर रथ द्वारा इस यज्ञमें लाओ।

४ हे बर्हि, तुम कम्बलकी तरह मृदुभावसे विस्तृत होओ। स्तोता लोग स्तुति करते हैं। हे दीप्त, तुम हम लोगोंके लिये धनप्रद होओ।

५ हे सुगमन-साधिका यज्ञद्वारकी अभिमानिनी देवियो, तुम सब विमुक्त होओ और हम लोगोंकी रक्षाके लिये यज्ञको सम्पूर्ण करो।

६ सुरूपा, अन्नवर्द्धयित्री, महती और यज्ञ या उदककी निर्मात्री रात्रि तथा उषा देवीकी हम लोग स्तुति करते हैं।

७ हे अग्नि-आदित्यसे समुद्भूत होतृद्वय, तुम दोनों स्तुत होकर वायुपथसे गमन करते हो। हम यजमानोंके इस यज्ञमें आगमन करो।

८ इला, सरस्वती और मही नामक तीनो देवियाँ सुख उत्पन्न करें। वे हिंसाशून्य होकरके हम यजमानोंके इस यज्ञमें आगमन करें।

९ हे त्वष्टृदेव, तुम सुखकर होकरके इस यज्ञमें आगमन करो। तुम पोषक रूपमें व्याप्त हो। सब यज्ञोंमें तुम हम लोगोंकी, उत्कृष्ट रूपसे, रक्षा करो।

१० हे वनस्पति (यूपाभिमानी देव), तुम जिस स्थानमें देवोंके गुप्त नामको जानते हो, उस स्थानमें हव्य प्रेरित करो।

स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥११॥

६ सूक्त

अग्नि देवता । वसुश्रुत ऋषि । पङ्क्ति छन्द ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥
सो अग्निर्यो वसु र्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

११ यह हव्य अग्नि और वरुणको स्वाहा (आहुत) रूपसे प्रदत्त है, इन्द्र और मरुतोंको स्वाहा रूपसे प्रदत्त है तथा देवोंको स्वाहा रूपसे प्रदत्त है ।

१ जो निवासप्रद हैं, जो सबके लिये गृहकी तरह आश्रयभूत हैं और जिन्हें गौएँ, शीघ्रगामी घोड़े तथा नित्य प्रवृत्त हव्य देनेवाले यजमान प्रसन्न करते हैं, हम उन अग्निकी स्तुति करते हैं। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

२ जो अग्नि निवासप्रद रूपसे स्तुत होते हैं, जिनके निकट गौएं होमार्थ समागत होती हैं, द्रुतागमी घोड़े समागत होते हैं और सत्कुलोत्पन्न मेधावी समागत होते हैं, वही अग्नि हैं । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

३ सबके कर्मोंके दर्शक अग्नि यजमानोंको अन्नयुक्त पुत्र प्रदान करते हैं । अग्नि प्रीत होकर सर्वत्र व्याप्त और सबके द्वारा वरणीय धन देनेके लिये गमन करते हैं । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

४ हे अग्निदेव, तुम दीप्तिमान् और जरारहित हो । तुम्हें हम सर्वतोभावसे प्रदीप्त करते हैं तुम्हारी यह स्तुतियोग्य दीप्ति द्युलोकमें दीप्त होती है । हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो ।

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ।
प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यंत्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६॥
तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भूरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥
नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८॥
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९॥

---

५ हे दीप्ति-समूहके स्वामी, आह्लादक, शत्रुओंके विनाशक, प्रजापालक और हव्यवाहक अग्नि, तुम दीप्त हो। तुम्हारे उद्देशसे मन्त्रोंके साथ हव्य हुत होता है। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

६ ये लौकिकाग्नि गार्हपत्यादि अग्निमें समस्त वरणीय या अपेक्षित धनका पोषण करते हैं। ये प्रीतिदान करते हैं, ये चारो तरफ व्याप्त होते हैं और ये अनवरत अन्नकी इच्छा करते हैं। हे अग्नि स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

७ हे अग्नि, तुम्हारी वे रश्मियाँ अत्यन्त अधिक अन्नयुक्त होकर वर्द्धित हो। वे रश्मियाँ, पतनके द्वारा, खुरयुक्त गोसमूहकी इच्छा करें अर्थात् होमकी आकाङ्क्षा करें। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

८ हे अग्नि, हम सब तुम्हारे स्तोता हैं। तुम हम लोगोंको नूतन गृहयुक्त अन्न दान करो। हम लोग जिससे तुम्हारी, प्रत्येक यज्ञ-गृहमें, अर्चना करके तुम्हें दूत रूपसे लाभ कर सकें। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

९ हे आह्लादक अग्नि, तुम घृतपूर्ण दर्वीद्वयको मुखमें ग्रहण करत हो। हे बलके पालयिता, तुम यज्ञमें हम लोगोंको फल द्वारा पूर्ण करो। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्य्यमुत्य यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥



७ सूक्त

अग्नि देवता । इष ऋषि । अनुष्टुप् और पङ्क्ति छन्द ।

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१॥
कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥२॥
सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवसा ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३॥
सः स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ॥४॥
आव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५॥

---

१० इस प्रकारसे लोग अनुषक्त अग्निके निकट स्तुति और यज्ञके साथ गमन करते हैं और उन्हें स्थापित करते हैं। वे हम लोगोंको शोभन पुत्र-पौत्रादि और वेगवान् अश्व दान करें। हे अग्नि, स्तोताओंके लिये अन्न आहरण करो।

---

१ हे सखिभूत ऋत्विको, तुम यजमानोंके लिये अत्यन्त प्रवृद्ध, बलके पुत्र और बलशाली अग्निके उद्देशसे अर्चना योग्य अन्न और स्तुति प्रदान करो।

२ जिन्हें प्राप्त करके ऋत्विग्गण प्रीत होते हैं, यज्ञगृहमें पूजा करके जिन्हें प्रदीप्त करते हैं एवम् जिनके लिये जन्तुओंका उत्पादन करते हैं, वह अग्नि कहाँ हैं ?

३ जब हम अग्निको अन्न प्रदान करते हैं और जब वे हम मनुष्योंके हव्यकी सेवा करते हैं, तब वे द्योतमान अन्नकी सामर्थ्यसे उदक-ग्राहक रश्मिको ग्रहण करते हैं।

४ जब पावक और जरारहित अग्नि वनस्पतियोंको दग्ध करते हैं, तब वे रात्रि कालमें भी दूरस्थित व्यक्तिको प्रज्ञापित करते हैं।

५ अग्निकी परिचर्याके कार्यमें क्षरित घृतोंको अध्वर्यु आदि ज्वालाओंके मध्यमें प्रक्षिप्त करते हैं। पुत्र जिस तरहसे पिताके अङ्कमें आरोहण करता है, उसी तरहसे घृतधारा इन अग्निके ऊपर आरोहण करती है।

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥
स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७॥
शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत् प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८॥
आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९॥
इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥१०॥



६ यजमान अग्निको जानते हैं। अग्नि अनेकों द्वारा स्पृहणाय, सबके धारक अन्नोंके आस्वादक और यजमानोंके निवासप्रद हैं ।

७ अग्नि तृणच्छेदक पशुओंकी तरह निर्जल एवम् तृणकाष्ठपूर्ण प्रदेशको छिन्न करते हैं। वे सुवर्ण-श्मश्रु विशिष्ट, उज्ज्वलदन्त, महान् और अप्रतिहत बल-सम्पन्न हैं।

८ जिनके निकट लोग अत्रिकी तरह गमन करता है, जो कुठारकी तरह वृक्षादिका विनाश करते हैं, वह अग्नि दीप्त हैं। जो अन्न ग्रहण करते हैं और जो जगत्के उपकारक हैं, माता अरणिने उन्हीं अग्निका प्रसव किया था।

९ हे हव्यभोजी अग्नि, तुम सबके धारक हो । हम लोगोंकी स्तुतियोंसे तुम्हें सुख हो । तुम स्तोताओंको धन दान करो, अन्न दान करो और अन्तःकरण दान करो ।

१० हे अग्नि, इसी प्रकारसे दूसरोंके द्वारा अकृत्य स्तोत्रोंके उच्चारणकारी ऋषि तुमसे पशु ग्रहण करते हैं। जो अग्निको हव्य दान नहीं करता है, उस दस्युको अत्रि पुनः पुनः अभिभूत करें और विरोधियोंको पुनः पुनः अभिभूत करें।

८ सूक्त

अग्नि देवता । इष ऋषि । जगती छन्द ।

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं निषेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२॥
त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३॥
त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्त्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४॥
त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५॥

---

१ हे बलकर्ता अग्नि, तुम पुरातन हो। पुरातन यज्ञकारी आश्रय लाभके लिये तुम्हें भली भाँतिसे प्रदीप्त करते हैं। तुम अत्यन्त प्रीतिदायक, यागयोग्य, बहु अन्न-विशिष्ट, गृहपति और वरणीय हो।

२ हे अग्नि, यजमानोने तुम्हें गृहस्वामीके रूपसे स्थापित किया है। तुम अतिथिकी तरह पूज्य हो। तुम पुरातन, दीप्तशिखाविशिष्ट, प्रभूत केतुविशिष्ट, बहुरूप, धनदाता, सुखप्रद, सुरक्षक और जीर्ण वृक्षोंके ध्वंसकारी हो।

३ हे सुन्दर धनविशिष्ट अग्नि मनुष्यगण तुम्हारी स्तुति करते है। तुम होमविद्, विवेचक, रत्न-दाताओंके मध्यमें श्रेष्ठ, गुहास्थित, सबके दर्शनयोग्य, प्रभूत ध्वनियुक्त यज्ञकारी और घृतग्राहक हो।

४ हे अग्नि, तुम सबके धारक हो। हम लोग बहुत प्रकारके स्तोत्र और नमस्कार द्वारा स्तुति करके तुम्हारे निकट उपस्थित होते हैं। तुम हम लोगोंको धन प्रदान करके प्रीत करो। हे अङ्गिराके पुत्र अग्नि देव, तुम भली भाँतिसे प्रदीप्त होकरके शिखाओंके साथ, यजमानोंके अन्न द्वारा प्रीत होओ।

५ हे अग्नि, तुम बहुरूपयुक्त होकरके समस्त यजमानोंको पुराकालकी तरह अन्न दान करते हो। हे बहुस्तुत, तुम अपने बलसे ही बहुत अन्नोंके स्वामी होते हो। तुम दीप्तिमान् हो। तुम्हारी दीप्ति दूसरोंके द्वारा अधृष्य है।

त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६॥
त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नयवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥६॥

६ हे युवतम अग्नि, तुम सम्यग्रूपसे प्रदीप्त हो। देवोंने तुम्हें हव्यवाहक किया था। देवों और मनुष्योंने प्रभूत वेगशाली, घृतयोनि और आहुत अग्निको बुद्धिप्रेरक, दीप्त और चक्षुः स्थानीय बनाकर धारण किया था ।

७ हे अग्नि, घृत द्वारा आहुत करके पुरातन, सुखाभिलाषी यजमान तुम्हें सुन्दर काष्ठों द्वारा प्रदीप्त करते हैं । तुम वर्द्धित होकरके, ओषधियों द्वारा सिक्त होकरके और पार्थिव अन्नोंको व्यक्त करके अवस्थिति करते हो ।

अष्टम अध्याय समाप्त

तृतीय अष्टक समाप्त

